

पञ्चभूत-विज्ञानम्

हिन्दीभाषाटीकोपेतम् ।



दी आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी तिब्बिया कालेज
देहली नामधेयमहाविद्यालयाध्यापक
काव्यतीर्थ-व्याकरणतीर्थ-सांख्यतीर्थ-सांख्यसागर
कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास भिषगाचार्येण
विरचितमनूदितं प्रकाशितं च ।



 [मूल्यं मुद्राद्वयम् २)

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्

प्रोफ़ेसर श्रीउपेन्द्रनाथ दास, सदर बाज़ार देहली।

बम्बे पुस्तक एजेन्सी, दरीबा कलां, देहली।

सूरि ब्रादर्स, लाहौर।



१६३६ खृष्टाब्दीय जुलाई मासे

फतेहपुरी देहलीस्थित

चन्द्र प्रिण्टिङ्गप्रेसाख्यमुद्रणालये

पण्डित श्रीमत् शंकरदेव पाठक काव्यतीर्थ,

महाशयस्य प्रबन्धेन मुद्रितम्।

श्रद्धाञ्जलिः

मदनमोहन विश्वतमो 'हरन्

शिवपुरे शिवतोऽपि विराजसे ।

ममकृति स्तवपादसमर्पिता

विलसतात् सुतरां तदनुग्रहात् ॥

देव त्वदीय करुणाऽमृतसिंचनेन

या पंचभूतपरिषल्लतिका प्रजाता ।

आद्यं तदीयकुसुमं मम पञ्चभूत-

विज्ञानमन्त्रभवते भवतूपहारः ॥

—उपेन्द्रस्य ।





भूतानामधिपं हित्वा भूतज्ञानी न निर्भ्रमः ।
प्रभूततत्त्वयुक्तोऽस्माद् भूताधारो विविच्यताम् ॥

 



द्वित्राः शब्दाः



(श्री विश्वनाथः शरणम्)

सप्तपंचाशदधिकाष्टादशशततमशकाब्दीयकार्त्तिकमासे भारतीयविद्यापीठनिकरशीर्षालंकारकल्पायां श्रीकाशिकायां हिन्दूविश्वविद्यालये निखिलभारतीयवैद्यमहासम्मेलनस्य वार्षिकाधिवेशनसभायां न्यायवैशेषिकाद्यनुमतपंचभूततत्त्वमधिकृत्य भारतीयाखिलप्रदेशेभ्यः प्रतिनिधितया समागम्य सम्मिलितानां गीर्वाणवाणीमयनानाशास्त्रीयप्रगाढपाण्डित्यभूषितानामायुर्वेदीयभिषक्प्रवराणां समजनि कोऽपि सहृदयहृदयाकर्षकः सुमहान् वादः। तत्र च सभाध्यक्षकार्यमनुतिष्ठता मया तस्मिन् वादे पाश्चात्यभूतविज्ञानशास्त्रपारदर्शिभिस्तथा प्राचीनतमभारतीयरीत्या सम्यगधीताध्यापितायुर्वेदन्यायसांख्यवेदान्तादिशास्त्रैः पण्डितकुलधुरीणैश्च प्रवर्तितस्य प्रतिक्षणं सौष्ठवेन नवतामुपेयुषो विचारस्य प्राचीनै रपेक्षितामपि नवीनैरुपेक्षितप्रायां दीर्घतरकालसमाप्यत्वेन सभायां निर्दिष्टाल्पतरसमयेन समवेततत्त्वबुभुत्सुजनानां सम्यङ्निर्णयमाधातुमपारयन्तीं रीतिं समवलोक्य उन्मनायमानेषु केषुचित् सदस्येषु, विनिवेदितम, एतादृशे खल्वतिदुरूहे विशेषप्रयोजनीये विषये तत्त्वनिर्णयाय ग्रन्थरचनमुद्रणप्रकाशनप्रचारणादिरूपः

किन्तु भित्तिभूतानां पञ्चभूतानां निर्णयमन्तरेण स्तम्भभूतानां दोषाणां निर्दोषो निर्णयो न सम्भवतीति तैरपि सम्यगुपलब्धम्। दार्शनिक-वैज्ञानिक-दक्षतर-वैद्यानां सम्मेलन एवैतादृशदुरूहविषयस्य समालोचनं सम्भवतीति विभाव्य पूजनीयैः श्रीमद्भिर्मदनमोहनमालवीययादवजी त्रिकम जी आचार्यवामनशास्त्रिदातारप्रभृतिभिर्महानुभावै वाराणसीस्थहिन्दुविश्व-विद्यालये १६३५ खृष्टाब्दीय नवम्बर-मासप्रारम्भे पञ्चभूतत्रिदोषचर्चार्थमखिलभारतीयविद्वत्सम्मेलनमनुष्ठितम्। एतादृशं सम्मेलनमितः पूर्व कदापि नाभवत्। तत्र बहवः प्रख्याता दार्शनिका, वैज्ञानिका, दक्षतरा वैद्याश्च सम्मिलिता आसन्। विभिन्नप्रान्तीयबहुविद्वत्सम्मतिनिर्धारिता विचार्यविषयसूची सम्मेलनदिवसात् सप्ताष्टमासपूर्वमेव सर्वत्र प्रचारिताऽसीत्। पांचभौतिक-त्रिदोषसिद्धान्तयोः समुपलभ्यमानानामाक्षेपाणां समालोचनाय, पंचभूतत्रिदोषस्वरूपादीनां विनिर्णयाय च तदनुकूलैवेयमासीन्निर्मिता विचार्यविषयसूची। पञ्चभूत विषयक विचार्य विषयेषु दिनत्रयं यावत् सम्भाषा समभवत्। तत्र सभापतेरासनं समलङ्कुर्वद्भिः श्रीमद्भिर्महामहोपाध्यायप्रमथनाथतर्कभूषण महोदयैरेवमुपदिष्टम्—परमगहनस्य विषयस्यास्य दिवसत्रयमात्रानुष्ठितया सम्भाषया सम्यक् सूक्ष्मनिर्णयो न सम्भवतीति सर्वसम्मतमेव। तस्मादस्मिन् सम्मेलने न वादपरिसमाप्तिरपितु वादारम्भ इति मनसि निधाय सर्वैरेव विद्वद्भिर्विचार्य विषयाणामालोचनं यथाशक्ति कार्यम्। वादमर्यादामनुल्लंघ्य पुस्तकलेखादिद्वारा विचार्य विषयाणामालोचनं सम्भवति,पुनः सम्मेलने संगत्य मौखिकविचार

विनिमयोऽपि कार्यः । विपश्चितां सामूहिकचेष्टया विचार्यविषयाणां तथा निर्णयो भविष्यति यत्र विश्ववासिनामैकमत्यं भविष्यतीति ।

सभापतिमहोदयानां तमुपदेशं गुरूणां शिवदमादेशमिव शिरसि निधाय सम्मेलनस्य पञ्चभूतविषयकविचार्यविषयानेवावलंब्य प्रकाशितं सानुवादं पुस्तकमिदं समालोचनार्थं विपश्चितां पावनेषु करेषु समर्प्यते ।† पञ्चभूतानां स्वरूपगुणधर्मादिविषये प्राच्यानां प्राचीनानामाचार्याणां सर्वत्र सर्वथैकमत्यं न दृश्यते । आध्यात्मिकविषय वर्णनपराणां दर्शनाचार्य्याणामानुषङ्गिकवर्णनीयेषु जडेषु भूतेषु न बह्वादर स्तस्मादपि परिस्थितिभेदवर्णनीयेषु भूतेषु कथञ्चिद् वैमत्यं सम्भवति । आधुनिक वैज्ञानिकानां विचारशैली प्राचीनशैलीतस्तथा भिद्यते यथा सर्वत्र प्राच्यात् पाश्चात्यः । दृश्यस्यास्य जगत आदिकारणविषये तन्त्रकाराणां सत्यपि वैमत्ये नादिकारणास्तित्वे कस्यचिद् वैमत्यं सम्भवति । एकस्मिन् विषये परस्पर विरुद्धा अनेकसिद्धान्ताः सत्या इति न केनचिद्वक्तुं शक्यते । कः खलु सत्यसिद्धान्तः के वा असत्या इत्यपि निश्चेतुमसमर्थाः सर्व एव वयमिति । सर्वेषामेव तन्त्रकाराणां सर्वाण्येव मतानि संरक्ष्य सर्वमतसामञ्जस्यकरणप्रयासो दक्षिणोत्तरमेर्वोः संयोग करणप्रयास इव व्यर्थ एव । तस्मात्प्राचीनानामर्वाचीनानाञ्च युक्ति

---

† त्रिदोष विषयक विचार्य विषयानवलम्ब्य त्रिदोषविज्ञाननामधेयमेतादृशमेव पुस्तकान्तरमपि प्रकाशितम् ।

प्राक्कथन

जगन्नियन्ता जगदीश्वर की कृपा से मित्र-वर्ग और विद्यार्थी-वृन्द का चिर वांछित "पञ्चभूत-विज्ञान" प्रकाशित किया जाता है। इस पुस्तक को प्रकाशित करने का प्रयोजन तो पञ्चभूत विचार प्रयोजन नामक ग्रन्थांश में ही लिखा जावेगा।

जब से आधुनिक जड़ विज्ञान की उन्नति हुई है और नानाविध यन्त्रों का आविष्कार हुआ है तब से प्राचीन ऋषियों द्वारा वर्णित पाञ्चभौतिक सिद्धान्त पर इतना कठोर आघात हुआ है कि जिससे प्राचीन शास्त्र में विश्वास रखने वाले भी पाञ्चभौतिक सिद्धान्त की सत्यता में सन्देह करने लग गये। भारतीय दर्शन शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय पञ्चभूत नहीं है उनका प्रतिपाद्य विषय है—ईश्वर, आत्मा आदि चेतन पदार्थ। आनुषङ्गिक रूप से दर्शन शास्त्रोंमें पञ्चभूत की आलोचना हुई है अतएव आनुषङ्गिक रूप से वर्णित पाञ्चभौतिक सिद्धान्त पर आधुनिक वैज्ञानिकों के घातक प्रहार होने पर भी उसके निराकरण के लिये दार्शनिकों ने कोई किसी प्रकार की चेष्टा नहीं की, जिस से साधारण मनुष्य पाञ्चभौतिक सिद्धान्त में और भी सन्देह-शील हो गये किन्तु फिर भी दार्शनिक समुदाय अबतक उस विषय में सम्पूर्ण नीरव ही है।

त्रिदोष-सिद्धान्त आयुर्वेद का जीवन-स्वरूप है, पाञ्चभौतिक

सिद्धान्त उसका मूल-स्वरूप है। त्रिदोष सिद्धान्त और पाञ्चभौतिक सिद्धान्त के असत्य सिद्ध हो जाने पर आयुर्वेद का स्वयं ही लोप हो जाता है। अतएव आयुर्वेद से तनिक भी प्रेम रखने वाला कोई भी विद्वान् त्रिदोष-सिद्धान्त और पाञ्चभौतिक सिद्धान्त पर होते हुए घातक आक्रमणों को देखकर चुप नहीं रह सकता, इसलिये महाराष्ट्र प्रान्त के कतिपय वैद्यों ने त्रिदोष-सिद्धान्त पर कुछ वाद-विचार किया भी था किन्तु त्रिदोष के मूलभूत पाञ्चभौतिक सिद्धान्त के सूक्ष्म निर्णय होने से पहले त्रिदोष विषयक वाद-विचार में सफलता प्राप्त करना ज़रा टेढ़ी खीर है—इस बात का अनुभव उन्होंने भी कर लिया।

केवल वैद्यों के ही वाद विचारमात्र से ऐसे दुरूह तत्वों का सूक्ष्म निर्णय असंभव समझ कर पूज्य महामना श्रीमान् पं० मदनमोहन मालवीयजी, श्रीमान् यादवजी आचार्य (बम्बई) श्रीमान् वामन शास्त्री दातार (नासिक) आदि महानुभावोंने गत नवम्बर १९३९में काशी हिन्दु विश्व-विद्यालयमें "पञ्चभूत और त्रिदोष चर्चा" के लिए एक अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन बुलाया, जिसमें भारत के सब ही प्रान्तों के प्रसिद्ध दार्शनिक, वैज्ञानिक डाक्टर और वैद्य निमन्त्रित थे। सब ही सम्प्रदायों के विद्वानों की उपस्थिति की दृष्टिसे यह सम्मेलन अपना ढंगका निराला पहला ही सम्मेलन था। पञ्चभूत चर्चा परिषत् और त्रिदोष चर्चा परिषत्के लिए क्रमशः २० और १० विषयों की मुद्रित विचार्य सूची सम्मेलन से ७-८ मास पूर्व ही विद्वानों के पास भेज दी गई थी। विभिन्न प्रान्तों के अनेक विद्वानों की सम्मति से ही पञ्चभूत और त्रिदोष सिद्धान्त के ऊपर किये हुए आक्षेप निराकरण पूर्वक प्रस्तुत विषय के विस्तृत वर्णन हो

सकने के अभिप्राय से ही विचार्य सूची बनाई गई थी। तीन २ दिनतक पञ्चभूतादि और त्रिदोषादि विषयोंपर मौखिक वाद विचार हुआ। किन्तु वाद निरीक्षक महोदयों ने पञ्चभूत चर्चा परिषत् के प्रत्येक विचार्य विषय पर अपनी सम्मति लिखने की भी कृपा नहीं की।

पञ्चभूत चर्चा परिषत् के विचार्य विषयों की स्थापना के लिये मैंने पञ्चभूत विज्ञान लिखा था किन्तु सम्मेलन में समयाभाव होने के कारण यह वहाँ न पढ़ा जा सका। सभा के अध्यक्ष पूज्यपाद महा-महोपाध्याय श्रीमान् प्रमथनाथ तर्कभूषण महोदय ने अपने भाषण में आदेश किया था कि केवल तीन दिन के मौखिक वाद विचार से ऐसे दुरूह तत्त्वों का सूक्ष्म निर्णय होना नितान्त कठिन ही नहीं वरन् असं-भव प्रतीत होता है अतएव इस सम्मेलन को कर्तव्य समापक न समझ कर केवल कार्यारम्भक ही समझना चाहिये। भविष्य में भी प्रबन्ध, पुस्तक आदि प्रकाशन द्वारा लेख-बद्ध वाद-विचार करना और कभी २ इसी प्रकार सम्मेलन में सम्मिलित होकर मौखिक विचार विनि-मय भी करना चाहिए। विद्वानों की इस प्रकार की सम्मिलित चेष्टा से ही पूर्व पश्चिम का भेद मिटानेवाला सत्य निर्णय हो सकता है।

पूज्य सभापति महोदय के उस आदेश को शिरोधार्य करके सरल हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित पञ्चभूत विज्ञान विचारार्थ विद्वानों के पवित्र करों में समर्पित किया जाता है।

उत्पत्ति-शील जगत् के आदि कारण का अस्तित्व तो सब ही शास्त्र-कार मानते हैं। किन्तु आदि कारण के स्वरूप गुण धर्मादि विषय में एक प्राचीन तन्त्रकार से दूसरे प्राचीन तन्त्रकार का मत-भेद स्पष्ट

ही है। आधुनिक विज्ञान वादियों का मत तो प्राचीन मतों से सर्वथा विपरीत ही हैं। किन्तु हमारे लिये प्राचीन या अर्वाचीन सब ही शास्त्र-कार माननीय हैं। हम किसी के सिद्धान्त को असत्य नहीं कह सकते और न एक ही विषय में परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तों को सर्वथा सत्य ही मान सकते हैं। किस सिद्धान्त का ग्रहण और किसका त्याग करना चाहिए इसका निर्णय भी बहुत कठिन है और सब तन्त्रकारों के सभी सिद्धान्तों की मर्यादा रखते हुए सब का सामञ्जस्य करना भी सर्वथा असंभव है, इसलिये इस ग्रन्थ में प्राचीन और आधुनिक तन्त्रकारों के युक्ति, तर्क-प्रयोगादि सिद्ध सिद्धान्तों को लेकर पञ्चभूत के विषय में सब मतों का सामञ्जस्य करने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध मतों को एक सूत्र में गूंथना कुछ साधारण कार्य नहीं है तदर्थ मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिए दुःसाहस करना भी अनुचित है तथापि गुरुस्थानीय विद्वानों की सहयोगिता से सत्य-सिद्धान्त निर्णयकी आशा से ऐसे दुरूहकार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ।

'मैंने जो कुछ लिखा है सब ही सत्य है" ऐसा मेरा दावा नहीं है। भ्रम और प्रमाद मनुष्य के धर्म हैं। विशेषतया मेरे जैसे अल्पज्ञों के लिये तो और भी अधिक भ्रम की सम्भावना है। इसलिये विद्वान पाठकों से मेरा नम्र-निवेदन है कि मेरी इस छोटी सी पुस्तक को आद्यो-पान्त मनोयोग से पढ़कर जहाँ कुछ भ्रम मालूम हो उस भ्रम को हेतु सहित मुझे समझाने का अनुग्रह और वहाँ कैसा परिवर्तन उचित होगा यह भी लिखने की कृपा करें और उस पर मेरा जो नम्र-निवेदन होगा उसे भी सुनने की कृपा करें। इस प्रकार विचार विनिमय के बाद यदि



ॐ

पञ्चभूत-विज्ञानम्

मंगलाचरणम् ।

गुरुश्रीवरदाकान्तं श्रीश्यामाकान्तसंयुतम् ।
नत्वोमाचरणं ध्येयं विघ्नध्वंसकरं शिवम् ॥ १ ॥
नानातन्त्रोक्तमाहत्य युक्तिप्रमाणसम्मतम् ।
अयुक्तं कल्पनामात्रं खण्डयित्वाऽद्दढं मतम् ॥ २ ॥

मंगलाचरण

गौरव युक्त लक्ष्मी और वर को देने वाले अत्यन्त सुन्दर श्री शिव जी के वक्षोपरि अवस्थित ध्यान करने के योग्य विघ्ननाशक और मंगलमय कालिका देवी के चरणों में तथा अपने गुरु श्रीमान् वरदाकान्त जी को श्रीमान् श्यामाकान्त जी को काशी प्राप्त होने के कारण केवल ध्यान गम्य शिवत्व प्राप्ति हेतु विघ्न-ध्वंसकर उमाचरणजी कविराज महाशय को प्रणाम करके नानाविध शास्त्रों से युक्ति प्रमाण सम्मत मत को ग्रहण करके तथा

सत्यसिद्धान्तकामानां बुधानां विनियोगतः ।
विज्ञानं पञ्चभूतानामुपेन्द्रेण प्रतन्यते ॥ ३ ॥

आचार्याणामपि मतखण्डने कारणम्—

आचार्याः खलु पूजनीयचरणा मान्यं हि तद्भाषितम्,
किन्त्वेषां विपरीतवाक्यमधुना शास्त्रे यदा दृश्यते।
तत्रायुक्तमतं विहाय सुतरां ग्राह्यं बुधैर्युक्तिमद्,
युक्तायुक्तपरीक्षणं निगदितं विद्याफलं कोविदैः ॥ ४ ॥

प्रार्थना—

प्राचीनमित्येव न साधु सर्वं पाश्चात्यमित्येव न सर्वसत्यम्।

युक्तिविरुद्ध काल्पनिक दुर्बल मत का खण्डन करके सत्यसिद्धान्त के इच्छुक विद्वानों के विनियोग से उपेन्द्रनाथ दास इस पञ्चभूत विज्ञान को विस्तृत रूप से वर्णन करता है।

आचार्यों के मत खण्डन में कारणः—

सभी प्राचीन आचार्य हमारे गुरुवत् पूज्यपाद हैं उनके वाक्य भी माननीय हैं। किन्तु जब हमारे सामने भिन्न भिन्न आचार्यों के एक ही विषय में विरुद्ध मत देखने में आते हैं तो वहां युक्ति-विरुद्ध मत को छोड़ कर युक्तिसिद्ध मत को ग्रहण करना ही विद्वानों का कर्तव्य है, क्योंकि विद्वानों की सम्मति में युक्त और अयुक्त की परीक्षा करना ही विद्या का फल है।

सन्तो विचार्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥५॥

प्रार्थना—

यह प्राचीन (पूर्व-देशीय अथवा पुरातन) मत है इसलिए ही सब अच्छा है ऐसा विचार करना अथवा यह पाश्चात्य (पश्चिमीय अथवा आधुनिक) मत है इसलिये सब सत्य है ऐसा निर्णय करना भी केवल भ्रम है। विद्वानों से प्रार्थना है कि आप परीक्षा करके जिस मत को अच्छा समझें उसको ग्रहण करें। केवल दूसरे की बात से किसी को सत्य या मिथ्या समझना मूर्ख का स्वभाव है।

प्रथमोऽध्यायः

पञ्चभूतविचारप्रयोजनम्—

यद्यपि विभिन्नानां शास्त्रकाराणामीश्वरात्मादिविषयेषु बहुधा सिद्धान्तभेदस्तेषां तत्तच्छास्त्रेष्ववलोक्यते तथापि क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमाख्यानि पञ्चभूतान्येव दृश्यस्य जगत उपादानकारणमिति सिद्धान्ते दार्शनिकपौराणिकादीनां प्रायशो मतभेदो न परिदृश्यते। "वाचारम्भणं विकार-नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् (छान्दोग्य ६–१–४)" इत्या-दिना श्रुतावपि भूतानामेव दृश्यजगदुपादानकारणत्वमभि-

---

पञ्चभूत विचार का प्रयोजनः—

ईश्वर, आत्मा आदि के स्वरूपादि में यद्यपि दार्शनिकों के अनेक प्रकार के सिद्धान्तभेद उनके शास्त्रों में मालूम पड़ते हैं तथापि पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांच भूत ही दृश्य जगत के उपादान कारण हैं, इस सिद्धान्त में दार्शनिक, पौराणिक किसीका भी मतभेद मालूम नहीं पड़ता है। (घट, पटादि) विकार वराये ;नाम हैं इनमें मृत्तिका ही सत्य है इत्यादि वाक्य से श्रुति में भी यही सिद्धान्त वर्णित हुआ है। पञ्चभूत केवल जड़

हितम्। न केवलं जडानामेव भूतोपादानकत्वं श्रुतावभिहितं किन्तु "विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यती" त्यादिश्रुतौ जीवशरीराणामपि भूतोपादानकत्वं स्पष्टमभिहितम्। अनादिकालमारभ्याधुनिकजडविज्ञान चतुराणामाविर्भावकालपर्यन्तमस्मिन् सिद्धान्ते कस्यचिदपि संदेहलेशोऽपि नासीत्। किंतु कियत्कालमर्वाक् केचिज्जडवैज्ञानिकाः स्वकीयप्रशंसनीयपुरुषकारेण यन्त्रादीनां साहाय्येन च स्थूलजलं हाईड्रोजन (Hydrogen) ओक्सिजन (Oxygen) नामधेयतत्त्व (Element) द्वयरूपेण परिणमयामासुः। विभिन्नदेशात्संगृहीता नानाकारप्रकारवती-

---

(अचेतन) पदार्थों के ही कारण नहीं अपितु जीव शरीर के भी कारण है जैसा कि श्रुति में विज्ञानघन इन भूतों से प्रकट होकर इन्हीं में लीन होता है। इन शब्दों में कहा है। अनादि काल से लेकर आधुनिक जड़ वैज्ञानिकों के आविर्भाव तक इस सिद्धान्त में किसी को लेश मात्र भी सन्देह नहीं था किन्तु कुछ दिन पहले कुछ जड़ वैज्ञानिकोंने अपने प्रशंसनीय पौरुष तथा यन्त्रादि की सहायता से स्थूल जल को हाईड्रोजन (Hydrogen) और औक्सिजन (Oxygen) नामक दो तत्त्वोंमें विभक्त कर दिया है। भिन्न भिन्न देशों से इकट्ठी की हुई नाना प्रकार की

मृत्तिका अपि सिलिकन् (Silicon) ओक्सिजन (Oxygen) कार्बन (Carbon) आदिद्वादशतत्त्व (Element) रूपेण विश्लेषयामासुः। स्थूलञ्च वायुं नाईट्रोजन (Nitrogen) ओक्सिजन (Oxygen) आदिरूपेण विवेचयामासुः। दृश्यमाने वन्हौ स्थूलभूतगुणानां गुरुत्वादीनामलाभादाकाशत्वेन कल्पिते रिक्तस्थाने रूपादीनां गुरुत्वादीनाञ्च सर्वथाऽभावदर्शनादेतयोर्द्रव्यत्वमेव निराचक्रुः। एवं पाश्चात्यवैज्ञानिकैर्दृश्यानां मृत्तिकाजलवायूनां यौगिकत्वे, दृश्यस्याग्नेः शक्ति (Energy) रूपत्वे, शून्यस्थानस्य चापदार्थत्वे, यंत्रादिना प्रमाणीकृते भारतीयविद्वद्वरेषु न कश्चिदपि पञ्चभूतानां स्वरूपलक्षणादिसमालोचनेन साधारणजनानां

मृत्तिका को विश्लेषण करके देखा कि उसमें सिलिकन (silicon) औक्सिजन (Oxygen) कार्बन (carbon) आदि बारह तत्त्व पाये जाते हैं। स्थूल वायु में भी नाइट्रोजन (Nitrogen) औक्सिजन आदि तत्त्व पाये गये हैं। इसलिये इन द्रव्यों को यौगिक (Compouud) समझा गया। दृश्य अग्निमें गुरुत्व आदि वस्तुधर्म नहीं है। जिसको आकाश या शून्य स्थान कहा जाता है उसमें भी वस्तुधर्म रूप और गुरुत्व आदि नहीं हैं, इसलिए इन दोनों को द्रव्य नहीं माना गया। किन्तु अग्नि को शक्ति (Ene-

भ्रमनिराकरणाय प्रयत्नमकरोत् । "पाश्चात्यवैज्ञानिकैर्भूतेषु त्रयाणां यौगिकत्वमेकस्य शक्ति (Energy) रूपत्वमेकस्य चालीकत्वमेव यंत्रादिना प्रमाणीकृतमतो भूतस्वरूपादौ संदेहो जायते स निराक्रियतामिति" सानुनयं प्रार्थिता अपि भारतीया अध्यापकाः सन्देहनिराकरणपरिश्रमं नांगीकुर्वन्ति ।

---

rgy) और आकाश को अलीक समझा गया है। इस प्रकार वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी, जल और वायु तो यौगिक-द्रव्य (Comqound) तेज केवल शक्तिमात्र और आकाश एक झूँठी कल्पना मात्र यन्त्रादि द्वारा प्रमाणित हुआ है । इस प्रकार वैज्ञानिकों के यन्त्रादि द्वारा स्थूल पृथ्वी आदि का भूतत्व अप्रमाणित सिद्ध होने के बाद भी भारतीय विद्वानों में से किसी ने पृथ्वी आदि भूतों के वास्तविक स्वरूपादि की आलोचना करके साधारण मनुष्यों के भ्रम को मिटाने का कुछ भी यत्न नहीं किया। शिष्य जब गुरु के पास जाकर प्रार्थना करता है कि अब पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने यन्त्रादि द्वारा प्रमाणित किया है कि पृथ्वी, जल और वायु तो यौगिक द्रव्य हैं, तेज शक्ति मात्र है और आकाश मिथ्या कल्पना मात्र है इनमें से एक भी भूत नहीं है इसलिए प्राचीनों के वर्णित भूतों के स्वरूपादि में हमें सन्देह है अतः आप कृपा करके भूतों के स्वरूपादि को समझा कर हमारे सन्देह को दूर कीजिये । शिष्यों की इस प्रकार विनीत प्रार्थना सुन कर भी

केवलं "पाश्चात्या नास्तिकाश्चञ्चलमतयश्चे"त्यादिकमुद्घोष्य स्वकर्तव्यं समापयन्ति। एतावन्मात्रेण जिज्ञासूनां कदाचिदपि तृप्तिर्न भवितुमर्हति। "पाश्चात्यवैज्ञानिकपरिकल्पनानां (Theory) नियतपरिवर्तनशीलत्वान्न काचिदपि परिकल्पना (Theory) विश्वासयोग्येति" न ततोपि जिज्ञासूनां तृप्तिरिति प्रत्यक्षसिद्धमेव।

यद्यपि यथार्थवैज्ञानिकाः स्वकीयपरिकल्पनां सर्वथा भ्रमरहितां न वदन्ति तथापि तदनुयायिनः परप्रत्ययनेयबुद्धयो

अध्यापक महोदय शिष्यों के सन्देह दूर करने का कोई यत्न न करके केवल पाश्चात्य वैज्ञानिकों को नास्तिक, चञ्चलमति आदि कह कर अपना कर्त्तव्य समाप्त कर देते हैं। केवल इतनी ही बात से जिज्ञासु की तृप्ति नहीं हो सकती। पाश्चात्य वैज्ञानिकों की परिकल्पना (Theory) भी निरन्तर परिवर्त्तनशील है इसलिये किसी भी कल्पना को सत्य सिद्धान्त मान कर विश्वास करना नितान्त अनुचित है। इतने से भी जिज्ञासु की तृप्ति नहीं होती यह तो सब को प्रत्यक्ष सिद्ध है।

यद्यपि बड़े बड़े वैज्ञानिक अपनी परिकल्पना को सम्पूर्ण सत्य मानने का साहस नहीं करते हैं तथापि उनके अनुयायी केवल दूसरे की बात का विश्वास करने वाले (विवेकहीन) कुछ मनुष्य

वैज्ञानिकपरिकल्पनामेव सर्वथा सत्यां मत्वा "भारतीयवेद दर्शनपुराणादिकं भ्रमपूर्णम्, ऋषयश्च शास्त्रकारा भ्रान्ताः सूक्ष्मदर्शकयन्त्रादिसाधनरहिताः स्थूलमात्रदर्शिनः कल्पनापरा अज्ञा एवासन्निति" प्रलपन्ति । "आयुर्वेदमूलभूतानां पञ्चभूतानामभूतत्वे सिद्धे सिध्यत्यायुर्वेदस्यापि भ्रमकल्पितताऽवैज्ञानिकता चेति" वदन्ति । आर्षसिद्धान्तविश्वासिनश्च केचिद्यन्त्रादिना प्रमाणीकृतमपि मृज्जलादीनां यौगिकत्वमाधुनिकानां भ्रमविजृम्भितमित्येव मन्यंते । एवमव्यवस्थायां संजातायां जिज्ञासूनां तत्वज्ञानार्थमज्ञानां

ऐसे हैं जो वैज्ञानिकों की परिकल्पना को सर्वथा सत्य समझते हैं और भारतीय वेद, दर्शन, पुराणादि को भ्रम-पूर्ण तथा शास्त्रकार ऋषियों को भी भ्रान्त, सूक्ष्मदर्शकयन्त्रादि साधन रहित, स्थूलमात्रदर्शी कल्पना परायण अज्ञ आदि कहते हैं। आयुर्वेद के मूल स्वरूप पञ्चभूत यदि अभूत सिद्ध हो जावें तो आयुर्वेद भी काल्पनिक और अवैज्ञानिक सिद्ध होता है । आर्ष सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं जो मिट्टी, जल आदि के यौगिकत्व को यन्त्रादि द्वारा प्रमाणित देख कर भी अधुनिक वैज्ञानिकों को ही भ्रान्त समझते हैं । इस प्रकार अव्यवस्था उपस्थित हो जाने से जिज्ञासु के तत्त्वज्ञान के लिये भ्रान्तों के भ्रम दूर कर सत्य

भ्रमापनोदनार्थं च सत्यसिद्धान्तख्यापनाय पञ्चभूतविचारस्य महत् प्रयोजनमुपस्थितमिति भूतपञ्चकमशेषविशेषरूपेण यथाशक्ति विचार्यते। यदुच्यते—

'पृथ्वीतोयहुताशवायुगगनैर्भूतैः स्थिरैः पञ्चभि-
र्दृश्यं विश्वमिदं प्रजातमिति' यद्वेदादिसंभाषितम्।
प्रत्यक्षादिविरुद्धकल्पितमिदं वैज्ञानिको भाषते
प्राच्या मौनमुपाश्रिता हि गुरवस्तस्मान्मदीयोद्यमः॥

तत्रादौ भूतलक्षणम्—

लक्षणमन्तरेण न सम्भवति वस्तुपरीक्षेति भूतलक्षण-

सिद्धान्तों को प्रकाशित करने के लिये पञ्चभूत विचार का महान् प्रयोजन उपस्थित हुआ है। इसलिये पांचों भूतोंके विषय में सब प्रकार से यथाशक्ति विचार किया जाता है। यहां के संग्रह श्लोक का अर्थ है कि—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पांच स्थिर भूतों से दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ इस प्रकार वेदादिकों में कहे हुए सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षादि विरुद्ध कल्पनामात्र कह दिया है फिर भी भारतीय गुरु स्थानीय प्राचीन विद्वान अभी चुपचाप बैठे हैं, अतः (अयोग्य होते हुए भी) मैं इस प्रकार उद्यम करने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

भूत लक्षण—

लक्षण के बिना वस्तु परीक्षा नहीं हो सकती अतः पहले भूतों

मेव प्रथमं निर्णीयते।

तत्र "बहिरिन्द्रियग्राह्यसजातीयविशेषगुणवत्त्वं भूतत्वमिति" प्राचीनकृतं भूतलक्षणमुपलभ्यते। एतल्लक्षणस्यायमभिप्रायः—बहिरिन्द्रियाणि खलु श्रोत्रत्वङ्नेत्ररसनघ्राणाख्यानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि तेषां ग्राह्या विशेषगुणा यथासंख्यं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः, तद्वन्ति भूतानीति कृत्वा शब्दवदाकाशम्, स्पर्शवान् वायु, रूपवत्तेजः रसवज्जलम्, गन्धवती च पृथिवीति पञ्चभूतानि।

के लक्षण का निर्णय किया जाता है।

प्राचीनों ने लिखा है कि "बहिरिन्द्रियग्राह्यसजातीय विशेष गुण युक्त" (बाह्य इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य विशेष गुण के सजातीय विशेष गुण से युक्त) को भूत कहना चाहिए जिसका अभिप्राय यह है कि—बहिरिन्द्रिय शब्द से श्रवणेन्द्रिय (कान) त्वगिन्द्रिय (त्वचा) चक्षुरिन्द्रिय, रसनेन्द्रिय (जिह्वा) और घ्राणेन्द्रिय (नाक) इन पांचों को समझना चाहिए, इनके ग्राह्य विशेष गुण शब्द से क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को समझना चाहिए, इन विशेष गुणों के आश्रय को भूत समझना चाहिए, इसलिए शब्दवान् आकाश, स्पर्शवान वायु, रूपवान् तेज, रसवान् जल और गन्धवती पृथिवी इन पांचों को भूत कहा

पृथिव्यारूपमेवेति वक्तुं शक्यते युक्तितर्कानुभवादिविरोधात्। स्वीकृते च घटादीनामपि भूतत्वे भूतसंख्यायाः पञ्चत्वं विहन्यते आनन्त्यं च प्रसज्यते, शब्दादिविशेषगुणवतामेव कथं भूतसंज्ञा भूतेति शङ्काऽपि न निराक्रियत इति। प्राचीनकृतभूतसमष्टिलक्षणमेवाति व्याप्तिदुष्टमिति न मन्तव्यं पृथिव्यादीनां पृथक् लक्षणमपि तथैवातिव्याप्तिदोषदुष्टमेव। तथाहि-गन्धवती पृथिवीति चेदङ्गीक्रियते घृतनारिकेलतैलादीनामपि पृथिवीत्वं प्रसज्यते

रूप ही है ऐसा कहना युक्ति तर्क और अनुभव के विरुद्ध हो जाता है। यदि शब्दादि के आश्रय सब ही द्रव्यों को भूत कहा जाये तो पांच ही भूत हैं यह नियम टूट जाता है और भूत असंख्य हैं ऐसा कहना पड़ता है। शब्दादि विशेष गुणों के आश्रय को भूत क्यों कहा गया इस शंका का समाधान भी नहीं होता है। प्राचीन टीकाकारों द्वारा बना हुआ भूतसमष्टि (पांचों भूत) के लक्षण के समान ही पृथिवी आदि पृथक् पृथक् भूतों के लक्षण भी अतिव्याप्ति दोष से दूषित हैं—जैसे कि—गन्धवती पृथिवी (अर्थात् जिसमें गन्ध है उसे पृथिवी कहते हैं) लक्षण करने से घृत, नारियल के तेल आदि में भी गन्ध है इसलिये इन्हें भी पृथिवी कहना पड़ता है।

तेषामपि पृथिवीत्वे स्नेहहीनतारूपमपि पृथिवीलक्षणं तत्र कथं नास्तीति वाच्यं स्यात्तथा घृतपयस्तैलादिषु पृथिव्या एव गन्धश्चेत् कथं गन्धभेद इति वाच्यं स्यात् घृतस्य गन्धोऽयमयं नारिकेलतैलस्यैवं यदि नांगीक्रियते ततो घृतनारिकेलतैलयोर्विवेक एव न स्यादिति 'गन्धवती पृथिवीति' लक्षणं गन्धवत्सु भौतिकद्रव्येष्वतिव्याप्तमेव। जलादीनामपि लक्षणानि नैव निर्दोषाणि न वा परीक्षासाधकानीति प्राचीनकृतमदुष्टं भूतलक्षणमधुना नोपलभ्यत इति सखेदं स्वीक्रियते। ननु यैः खलु शास्त्रकृद्भिर्भूतान्येव

यदि इनको भी पृथिवी कहा जाय तो "पृथिवीमें स्नेह नहीं है" यह लक्षण घृतादि में क्यों नहीं है यह भी कहना पड़ता है, औरभी–घृत, तैल, दूध आदि सब में यदि पृथिवी की गन्ध है तो सब की गध एक सी क्यों नहीं है इसका भी समाधान करना पड़ता है। यह घृत की गन्ध है, यह नारियल के तेल को गंध है इस प्रकार पृथक् पृथक् द्रव्य की पृथक् पृथक् गन्ध यदि स्वीकार न की जावे तो घी और नारियल के तैल का परस्पर भेदज्ञान नहीं हो सकता। गन्धवती पृथिवी यह पृथिवी भूत का लक्षण गन्ध वाले भौतिक द्रव्य में अतिव्याप्ति दोष दुष्ट है। जलादि का भी अदुष्ट और परीक्षा साधक लक्षण दिखाई नहीं देता इसलिए प्राचीनों का किया

जन्यजगत्कारणमित्यभिहितं तैरेव भूतलक्षणसूत्रमपि कथं न कृतमिति चेदुच्यते भूतशब्दस्यैव लक्षणज्ञापकत्वात्पृथक् सूत्रं न कृतमिति मन्यते। तथाहि 'भू सत्तायाम्'-मिति भू धातोर्भूतमिति रूपम्। भूतं सत्तावदित्यर्थः। अत्र सत्ताशब्देनास्तित्वमेवावगन्तव्यं यतो 'भू' धातोरस्तित्वार्थ एव प्रसिद्धः। यद्यप्यनुभवयोग्यानि सर्वाण्येव वस्तूनि सत्तावन्ति तथापि क्षणभंगुराणां सत्ता चिरकालं नावतिष्ठते। एवं कार्यापेक्षया कारणद्रव्यस्य पूर्वकालकार्यकालतदुत्तरकाल

हुआ भूतों का दोष रहित लक्षण अब नहीं मिलता इस बात को खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है। अब प्रश्न होता है कि जिन शास्त्रकारों ने भूतों को उत्पत्ति-शील जगत का कारण माना है उन्होंने भूतों का लक्षण-सूत्र क्यों नहीं बताया? इसका उत्तर यह है कि भूत शब्द ही लक्षण का ज्ञापक है, जहां नाम ही लक्षण बन जाता है वहां पृथक् लक्षण करना निरर्थक समझा जाता है। नाम ही लक्षण कैसे होगा इसका अभिप्राय यह है:—जिस भू— धातुसे भूत शब्द बना है उसका अर्थ है सत्ता। इसलिये भूत शब्द का अर्थ होगा सत्तावान्। यहां सत्ता शब्द से अस्तित्व अर्थ को समझना चाहिए क्योंकि अस्तित्वार्थ ही भू धातु का प्रसिद्ध अर्थ है। यद्यपि अनुभवके योग्य सब ही वस्तु सत्ता-युक्त हैं तथापि क्षण-भंगुर (शीघ्र विनाश शील) पदार्थों की सत्ता बहुत देर तक नहीं

स्थायित्वादापेक्षिकमधिकं कालं यावत्सत्तावत्त्वं तथापि वस्त्रमंचादिकारणानां सूत्रवेत्रादीनामुत्पत्तिशीलत्वादुत्पत्तेः प्राक्सूत्रादिरूपेण ते नावतिष्ठन्ते विनाशशीलत्वाच्च विनाशानन्तरमपि सूत्रादिरूपेण नावतिष्ठन्त इति सूत्रादीनां भूत संज्ञा न संगच्छते शाश्वतिकसत्ताविरहात् । उत्पद्यर्थेऽपि भूधातोः प्रयोगदर्शनात् शाश्वतिकसत्तावदपि यत् किंचित्कार्यरूपेण कदाचिदपि न परिणमते तस्य सत्संज्ञायामपि भूतसंज्ञा न संगच्छते अतएवेश्वरादीनां सत्संज्ञा प्रसिद्धा न भूतसंज्ञेति।

रहती है। क्योंकि उपादान कारण कार्य्य से पहले कार्य काल में और कार्य नष्ट होने के बाद भी रहता है, अतः कार्य से कारण द्रव्य की सत्ता अधिक देर तक रहती है। जिससे कार्य की अपेक्षा कारण को अधिक सत्तावान् कह सकते हैं। तथापि वस्त्र मंच आदि के कारण सूत्र वेत्रादि द्रव्य भी उत्पत्तिशील होने से उत्पत्ति से पूर्व और विनष्ट हो जाने के बाद सूत्रादि रूप में अवस्थित नहीं रहेंगे। क्योंकि सूत्रादि द्रव्य नित्य नहीं हैं इसलिये इनकी भी भूत संज्ञा नहीं हो सकती। भू—धातु का अर्थ उत्पत्ति भी है इसलिये जो द्रव्य सर्वदा सत्तावान् होकर भी कदाचित् किसी कार्य रूप में परिणत नहीं होता है उसकी सत् संज्ञा तो है अर्थात् उसको सत्तावान् तो कहा जाता है किन्तु भूत नहीं कहा जा सकता जिससे ईश्वरादि की सत् संज्ञा तो प्रसिद्ध

यत्तु कदाचिन्नोत्पद्यते न वा कदाचिद्विनश्यति नानाविधकार्यजातमुत्पाद्यापि स्वकीयां सत्तां न परित्यजति किञ्च कार्यमनुत्पाद्यापि स्वसत्तां नैव जहाति तस्य भूतसंज्ञा संज्ञार्थविश्लेषणादेवावगम्यते। एतेन "नित्यत्वे सति गुणवत्समवायिकारणत्वं भूतत्व"मिति भूत लक्षणं पर्यवस्यति। जन्यानां द्व्यणुकादीनां दृश्यानां च सूत्रवेत्रादीनां भूतत्ववारणाय नित्यत्वे सतीति विशेषणम्।

है किन्तु इनको भूत नहीं कहा जाता क्योंकि ये कभी कार्य रूप में परिणत नहीं होते।

भूत इस संज्ञा (नाम) के अर्थ को विश्लेषण करने से मालूम होता है कि जो कभी उत्पन्न या विनष्ट नहीं होता, अनेक प्रकार के कार्य समूह को उत्पन्न करता हुआ भी अपनी सत्ता को नहीं छोड़ता और कार्य को उत्पन्न न करने पर भी अपनी सत्ता नहीं छोड़ता उसे भूत कहते हैं अर्थात् भूत नाम से ऐसा नित्य उपादान कारण समझा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जो नित्य है और गुणवान् का समवायि करण है, वह भूत है। भूत का यह लक्षण होना चाहिए। उत्पत्ति शील द्व्यणुक (जो दो परमाणुओं से बनता है और भूत से उत्पन्न होनेके कारण भौतिक है) आदि तथा दृश्य कारण सूत्र वेत्रादि में भूत लक्षण की अतिव्याप्ति हो सकती थी इसलिए लक्षण में "नित्य होकर" इतना

कालदिगात्ममनसां द्रव्यत्वात्समवायिकारणत्वेऽपि न गुणवतां द्रव्याणां समवायिकारणत्वमिति तेषामपि भूतत्वमुत्तरार्धेनापास्यते । तस्मादाकाशवायुतेजोजलपृथिवी-परमाणव एव शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रापरपर्यायाः* पंचभूतानीति लक्षणार्थोऽवगम्यते कथमेषां पंचानामेव भूतत्वमित्यग्रे युक्त्या प्रतिपादयिष्यते ।

अंश रखा गया है । काल, दिक्, आत्मा और मन ये चार भी द्रव्य हैं अतः समवायि कारण भी हैं किन्तु गुणवान् द्रव्यों के समवायिकारण नहीं हैं इसलिए "गुणवान् का समवायिकारण" यह अंश लक्षणमें रखनेसे काल आदि चार द्रव्योंमें भूत लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं हुई । इस लक्षण के अनुसार आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी इन पांच महाभूतों के कारण पांच जातीय परमाणु जिनको सांख्य शास्त्र में शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूप-तन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र के नाम से वर्णन किया गया है (परमाणु और तन्मात्र का अभेद आगे सिद्ध किया जायगा) वे ही पांच भूत हैं । भूत लक्षण का ऐसा अर्थ समझना चाहिए । इन पांचों को ही क्यों भूत कहते हैं, इसका आगे युक्ति-युक्त प्रतिपादन किया जायगा ।

---

* परमाणुतन्मात्रयोरभेदोऽग्रे प्रतिपादयिष्यते ।

ननु 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' 'नेह नानास्ति किंचन' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादिश्रुतिबलात् सच्चिदानन्दस्वरूपं ब्रह्मैव जगतः कारणमिति सिध्यति नाकाशादिरिति चेत्-उच्यते अखण्डचैतन्यस्वरूपस्याशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययमि-

---

यहां आशंका होती है कि वेदान्त शास्त्र में एक मात्र ब्रह्म को ही जगत् का कारण कहा गया है। श्रुति में भी लिखा है कि 'सब एक ही अद्वितीय ब्रह्म है।' 'उसने इच्छा की थी कि बहु होकर उत्पन्न हो जाऊँ।' 'जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त नानाविध पदार्थ कुछ नहीं हैं।' 'जो इस को नानाविध देखता है वह मृत्यु के बाद भी मृत्यु को प्राप्त करता है अर्थात् उसके लिए मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है (वह मिथ्या ज्ञान के कारण जन्म और मृत्यु के फेर में पड़ा रहता है)।' इस प्रकार की श्रुतियों से सिद्ध होता है कि सत् चित् (ज्ञान-स्वरूप) और आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही जगत का कारण है। यदि ब्रह्म को जगत् का कारण माना जाय तो आकाशादि परमाणु भी नित्य और जगत् के कारण नहीं हो सकते क्योंकि परमाणु का कारण भी ब्रह्म को ही कहना पड़ेगा, इस शंका का उत्तर यह है कि वेदान्त में ब्रह्म को अखण्ड चैतन्य स्वरूप तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध रहित प्रमाणित किया गया है। चेतन और शब्दादि रहित ब्रह्म को जड़ तथा शब्दादि-युक्त

स्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्छब्दादीन्द्रियग्राह्यगुणरहितस्य ब्रह्मणो जगदुपादानत्वं युक्तिविरुद्धमेव । 'वाचारम्भणं विकारनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्', 'विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति' इत्यादिश्रुतिषु भूतानामपि जगत्कारणत्वं स्पष्टमेवाभिहितमतो मोदककारवन्नानारसस्य जगतः कर्तृत्वान्निमित्तकारणत्वं चेतनस्य ब्रह्मणो, दुग्धघृतशर्करादिवदुपादानकारणत्वं (समवायित्वं) तु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवतां परमाणुस्वरूपाणां जडानां भूतानामिति श्रुतियुक्तितर्कादिसिद्धमिति प्रतीयते । केवलं

जगत् का उपादान कारण मानना युक्तिविरुद्ध मालूम पड़ता है। 'घटादि विकार केवल नाम के लिये हैं इनमें मृत्तिका ही सत्य है।' 'विज्ञानघन इन भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में विलीन होता है,' इत्यादि श्रुति में भूतों को भी स्पष्ट वाक्य से जगत का कारण बताया है। इसलिये जैसे हलवाई अनेक रस वाली मिठाई बनाता है। वैसे ही चेतन ब्रह्म भी नानारसादि-विशिष्ट जगत को बनाता है अतः जगत्कर्ता ब्रह्म को जगत का निमित्तकारण कहना चाहिये। कर्त्ता को सब ही दार्शनिक निमित्तकारण कहते हैं। मिटाई के लिये जैसे दूध, घी शर्करादि उपादान (समवायि) कारण हैं; ऐसे ही शब्दादि विशिष्ट जड़ जगत के भी शब्दादि

भूतेषु भौतिकेषु च वैराग्यजननार्थमेषामपि ईश्वराधीनकार्याणां ब्रह्मरूपत्वं व्याख्यातम् ।

यस्यैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातं तस्यापि—"ब्रह्मविज्ञानादनन्तरं मुक्त्यर्थं विज्ञानान्तरं नापेक्षत इत्यभिप्रायो विज्ञेयो नतु कारणभूतब्रह्मविज्ञानात् कार्यभूतानां विज्ञान-

---

युक्त परमाणुओं को उपादान कारण कहना श्रुति-युक्ति और तर्क-
सिद्ध मालूम पड़ता है। मुक्ति के इच्छुक यदि भूतों और भौतिक
पदार्थों को नित्य समझ कर उनकी माया में फंसे रहेंगे तो उन्हें
मुक्ति मिलना असम्भव है। इसीलिए भूत और भौतिक पदार्थों
में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए मोक्षशास्त्र में भूतों को प्रधानता
नहीं दी गई। सभी भूत जड़ हैं। ईश्वर की इच्छा से इनमें क्रिया
होती है। अतः दार्शनिकों ने उन्हें प्रधानता न देकर ब्रह्मस्वरूप का
वर्णन किया है।

ब्रह्म को जगत् का कारण बताने वाले वेदान्तियों का यह
कथन है—श्रुति में जो लिखा है कि "जिस एक चीज को जानने
से सब का ज्ञान हो जाता है" इससे मालूम पड़ता है कि एक ब्रह्म
ही जगत् का कारण है नहीं तो एक चीज का ज्ञान होने से सब का
ज्ञान होना असम्भव है। इस प्रकार युक्तिसे ब्रह्मको उपादान कारण
कहना हम अच्छा नहीं समझते हैं क्योंकि उपादान कारणमात्रके ज्ञान
से सम्पूर्ण कार्य का ज्ञान नहीं हो सकता। यह तो सब ही जानते
हैं कि कोई पृथिवी को जान लेने पर सब ही पार्थिव पदार्थों को
नहीं जान सकता। श्रुतिसे एक ब्रह्मके ज्ञानसे जो सर्वविज्ञान बताया

मिति तदर्थः संगच्छते नहि मृत्तिकाविज्ञानादेव सर्वमृन्मयविज्ञानं कस्यचिद्भवतीति प्रत्यक्षसिद्धम्। एतस्य विस्तरविचारस्तु दर्शनशास्त्रेष्वेव द्रष्टव्यो नात्र तस्यावसरः प्रयोजनं वास्तीति।

ननु मा भूच्चेतनं ब्रह्म जगदुपादानकारणम्, अचेतना प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमोमयी नियतपरिणामशीला चेतनस्य पुरुषस्य सन्निधिमात्रेण पुरुषस्य भोगापवर्गार्थं जगदिदमुत्पादयितुमर्हति । दृश्यते च भगवता

है उसका अभिप्राय यह होगा कि ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति के बाद मुक्ति के लिये ज्ञानान्तर की अपेक्षा नहीं रहती इस प्रकार सीधे अर्थ को स्वीकार करने से चेतन ब्रह्म को जड़ जगत का उपादान स्वीकार करने की कष्ट कल्पना भी नहीं करनी पड़ती। इस विषय का विस्तृत विचार दर्शन शास्त्र में है। यहां इस विचार का अवसर या प्रयोजन नहीं है।

पुनः सांख्य मत से शंका होती है कि चेतन ब्रह्म को अचेतन जगत् का उपादान कहना अनुचित है, यह तो ठीक है किन्तु सत्व, रज और तमोगुणमयी नियतपरिणामधर्मवाली अचेतन एक ही प्रकृति चेतन पुरुष के सान्निध्य से पुरुष के भोग और अपवर्ग (मोक्ष) के लिये इस जगत् को उत्पन्न कर सकती है। सांख्य-शास्त्र में भगवान् कपिल ने प्रकृति को ही जगत् का कारण माना है। भगवान् श्री

कपिलेन रचिते सांख्यशास्त्रे जगदुपादानकारणत्वं प्रकृतेरेव वर्णितमिति । भगवता श्रीकृष्णेनापि गीतायां "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः" इत्यभिहितमिति चेदुच्यते सत्कार्यवादिनां सांख्याचार्याणां मते शब्दादि-

---

कृष्ण जी ने भी गीता में उपदेश दिया है कि—"सभी कार्य प्रकृति के गुणों से सम्पादित होते हैं। किन्तु अहंकार से विमूढ़ आत्मा समझता है कि मैं ही सब को करता हूँ इसलिये मैं ही कर्त्ता हूँ।"

इस प्रकार के प्रमाणों से यदि प्रकृति को जगत् का कारण माना जाय तो आकाशादि परमाणु भी उत्पत्ति-शील और अनित्य बन जाते हैं। इस शंका का उत्तर यह है कि सांख्य शास्त्र में सत्कार्यवाद माना गया है जिसका अर्थ यह है कि कार्य उत्पन्न होने से पहले भी कारण में विद्यमान रहता है तथा विनाश के बाद भी कारण में कार्य लीन होजाता है। जैसे कि एक कछुआ जब अपने हाथ और पैरों को बाहर निकालता है, तो हाथ पैरों को सभी देख सकते हैं। जब हाथ पैरों को अन्दर खींच लेता है, तब वे दिखाई नहीं देते। यहां हाथ और पैर की उत्पत्ति या विनाश नहीं है, किन्तु आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (छिपना) मात्र है। ऐसे ही कारण में कार्य छिपा रहता है। इस से जब आविर्भूत होता है तब तो उत्पत्ति समझी जाती है। फिर जब कारण में तिरोभूत (विलीन) हो जाता है

गुणरहिता वा तत्सहिता वा एकैव प्रकृतिः शब्दादिमतां दृश्यानां स्थूलानां शब्दादिरहितानां च बुद्ध्यादीनामुपादानं न भवितुमर्हतीति कृत्वाऽष्टौ प्रकृतयः सांख्ये वर्णिताः। तत्र तन्मात्राख्यानि परमाणुस्वरूपाणि पंचभूतानि स्थूलजगत्कारणान्यपि प्रकृतिसंज्ञाभांज्येव, तस्मात् सांख्यमते

तब विनाश समझा जाता है। वास्तवमें जो नहीं था उसकी उत्पत्ति नहीं होती और जो सत् है उसका विनाश नहीं होता। किन्तु विद्यमान पदार्थ के आविर्भाव को उत्पत्ति और तिरोभाव को नाश कहते हैं। इस प्रकार के सत्कार्यवाद को मानने वाले सांख्याचार्यों के मतानुसार शब्दादिगुणरहित अथवा शब्दादिगुणसहित एक ही प्रकृति शब्दादियुक्त दृश्य स्थूल भौतिक द्रव्यों का तथा शब्दादिरहित बुद्धयादि अभौतिक द्रव्यों का कारण नहीं हो सकती। क्योंकि यदि प्रकृति में शब्दादि नहीं है तो उससे उत्पन्न भूत और भौतिक में भी शब्दादि नहीं हो सकते। यदि प्रकृति में शब्दादि हैं तो उससे उत्पन्न महान्, अहंकार आदि में भी शब्दादि होने चाहिएँ किन्तु ऐसा नहीं होता। अतः सांख्यशास्त्र में प्रकृति, महान्, अहंकार, शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र इन आठ को ही प्रकृति कहकर वर्णन किया गया है। इनमें से तन्मात्रसंज्ञक परमाणु रूप पांच भूत ही स्थूल जगत् के उपादान कारण हैं।

प्रकृतेर्जगत्कारणत्वकथनं न्यायादिमते च भूतानां जगत्कारणत्वकथनं न मिथो विरुद्धम् । परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनावसरेऽस्य पुनर्विस्तारो भविष्यतीति भूतलक्षणमभिहितमभूत् ।

तथाचोक्तम्—

न जायतेऽन्यतो यत्तु यस्मादन्यत् प्रजायते ।
सगुणानामुपादानं तद्भूतमिति कथ्यते ॥

* इति भूतलक्षणनिरूपणाख्यः प्रथमोऽध्यायः *

इन सूक्ष्मभूतों को सांख्यशास्त्र में भी प्रकृति कहते हैं, इसलिये "प्रकृति से जगत की उत्पत्ति होती है" इस प्रकार सांख्यशास्त्र के उपदेश के साथ परमाणु स्वरूप भूतों से जगत् की उत्पत्ति होती है इस बात का विरोध नहीं होता है। परमाणु और तन्मात्र की विवेचना के अवसर पर इस पर विस्तृतरूप से विचार किया जायगा । भूत के लक्षण को यहाँ समाप्त किया जाता है ।

संग्रह श्लोक का अर्थ यह है:—

जो दूसरे से उत्पन्न नहीं होता, जिससे साक्षात् सम्बन्ध से अथवा परम्परा सम्बन्ध से और सब जन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं और जो गुणवान् का उपादान कारण है उसी को भूत कहा जाता है ।

* इति भूत लक्षण-निरूपण नामक प्रथम अध्याय *

द्वितीयोऽध्यायः

भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वमनेकेन्द्रियार्थाश्रयत्वं वा ?

परमसूक्ष्माणां परमाणूनां प्रत्यक्षायोग्यत्वात्तेषामस्तित्वं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यानां श्रोत्रत्वङ्नेत्ररसनघ्राणाख्य-पञ्चेन्द्रियनियतविषयस्वरूपाणां गुणानामाश्रयत्वेनानु-

---

सब ही भूत एक एक इन्द्रियार्थ (इन्द्रियों के विषय शब्दादि) के आश्रय है या अनेक इन्द्रियार्थों के आश्रय हैं ?

परमसूक्ष्म परमाणुओं का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इसलिए उनका अस्तित्व है या नहीं, तथा पांच प्रकार के परमाणु हैं या इनसे कम या अधिक इसका निर्णय भी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा नहीं हो सकता। किंतु श्रवणेन्द्रिय का नियत विषय शब्द है त्वगिन्द्रिय का नियत विषय स्पर्श है चक्षुरिन्द्रिय का नियत विषय रूप है रसनेन्द्रिय का नियत विषय रस है और घ्राणेन्द्रिय का नियत विषय गन्ध है यह तो सबही को प्रत्यक्ष सिद्ध है। इन्द्रियार्थ से प्रसिद्ध शब्दादि पांच ही गुण पदार्थ हैं, जो द्रव्य का आश्रय किये बिना नहीं रह सकते। इसलिये इन्द्रियार्थ पांच गुणों के आश्रय स्वरूप पांच जातीय परमाणुओं को अनुमान से सिद्ध

सानात् सिध्यति। तत्रेदमाशंक्यते—आकाशादिभूतान्ये-कैकेन्द्रियार्थाश्रयाण्यनेकेन्द्रियार्थाश्रयाणि वा! कथमियं शंकेति चेदुच्यते—शास्त्रकाराणां टीकाकाराणां चाचार्याणां वैमत्यदर्शनादिति। तथाहि-शब्दगुणमाकाशम्, शब्दस्पर्शगुणो वायुः, शब्दस्पर्शरूपगुणं तेजः, शब्दस्पर्शरूपरसगुणं जलं, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवती पृथिवीति सांख्यसिद्धान्तस्तथा चोक्तं श्रीमता वाचस्पतिमिश्रेण—"तत्र शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दगुणम्, शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्द-स्पर्शगुणः, शब्दस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्रात्तेजः शब्द-

---

किया जाता है। इस पर आशंका होती है कि आकाशादि पांचों भूत एक एक इन्द्रियार्थ के आश्रय हैं कि अनेक इन्द्रियार्थ के आश्रय हैं। अथवा कोई एक इन्द्रियार्थका और कोई अनेकेन्द्रियार्थ का आश्रय है? इस प्रकार की शंका में शास्त्रकार और टीकाकार आचार्यों के परस्पर विरुद्धमत ही कारण हैं। वह विरुद्धमत कैसे हैं देखिये! सांख्यशास्त्र का सिद्धान्त है कि आकाश में केवल शब्द गुण है। वायु में शब्द और स्पर्श गुण है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप गुण हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुण है। पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण है। श्रीमान् वाचस्पति मिश्र ने सांख्यतत्त्वकौमुदी

स्पर्शरूपगुणम्, शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहिताद्रसतन्मात्रादापः शब्दस्पर्शरूपरसगुणाः, शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहिताद्गन्धतन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा पृथिवी जायत" इति सा० त० कौ० २२ ॥

वैशेषिके तु शब्दमात्रविषयमाकाशम्, स्पर्शमात्रविषयो वायुः, स्पर्शरूपविषयं तेजः, स्पर्शरूपरस-

---

में २२ नं० कारिका की व्याख्या में लिखा है कि शब्दतन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है। अतः आकाश में केवल शब्द गुण होता है। शब्द तन्मात्र संयुत स्पर्श तन्मात्र से वायु उत्पन्न होता है; अतएव इसमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं। शब्दतन्मात्र और स्पर्शतन्मात्र सहित रूपतन्मात्र से तेज उत्पन्न होता है, अतः उसमें शब्द स्पर्श और रूप ये तीन गुण हैं।

शब्द स्पर्श और रूप तन्मात्र संयुत रसतन्मात्र से जल उत्पन्न होता है अतः जल में शब्द स्पर्श रूप और रस ये चार गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र संयुत गंधतन्मात्र से पृथिवी उत्पन्न होती है, इसलिए पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच गुण हैं।

वैशेषिक दर्शन के मतानुसार आकाश में केवल शब्द,

विषयं जलम्, स्पर्शरूपरसगन्धविषया पृथिवीति वर्णितम् । यदुक्तं कारिकावल्याम् ।

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगाख्यः संस्कारो मरुतो गुणाः ॥
स्पर्शाद्यष्टौ रूपवेगौ द्रवत्वं तेजसो गुणाः ।
स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वं च द्रवत्वकम् ।
रूपं रसस्तथा स्नेहः वारिण्येते चतुर्दश ।
स्नेहहीना गन्धयुताः क्षितावेते चतुर्दश ।
संख्यादिपंचकं कालदिशो शब्दश्च ते च खे । इति ।

अतो दृश्यते—सांख्यनये आकाशवायुतेजोजलभूमीनां यथासंख्यमेकद्वित्रिचतुःपंचगुणवत्वं वैशेषिकनये च आका-

---

वायु में केवल स्पर्श, तेज में स्पर्श और रूप, जल में स्पर्श रूप और रस, पृथिवी में स्पर्श, रूप, रस और गंध गुण माने जाते हैं। जैसे वैशेषिक कारिकावली में है कि—स्पर्शादि आठ और वेगाख्य संस्कार वायु के गुण हैं। स्पर्शादि आठ रूप वेग और द्रवत्व तेज के गुण हैं। स्पर्शादि आठ वेग और गुरुत्व द्रवत्व, रूप, रस और स्नेह जल के गुण पृथिवी में स्नेह को छोड़ कर जल के शेष तेरह गुण और गंध हैं। आकाश में संख्यादि पांच और शब्द गुण है।

इससे देखा जाता है कि सांख्य मतमें आकाशमें एक, वायु में दो

शवाय्वोरेकैकगुणा*त्वम् तेजो द्विगुणं, जलं त्रिगुणं, पृथिवी-चतुर्गुणेति विशेषः। न्यायदर्शने वैशेषिकमतस्यैव समर्थनं दृश्यते। यदुक्तं भगवता गौतमेन—"गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः, अप्तेजोवायूनां पूर्वपूर्वमपोह्याकाशस्योत्तर" इति। न्याय० ३-१-६२-६३। आयुर्वेदे तु सांख्यमतस्य समर्थनं दृश्यते। यदुक्तं भगवता चरकेण—

महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा।

तेज में तीन, जल में चार, और पृथिवी में पांच गुण हैं। किंतु वैशेषिक मत में आकाश और वायु में एक एक, तेज में दो, जल में तीन, और पृथिवी में चार गुण माने जाते हैं इतना भेद हैं। न्यायमत में वैशेषिक मत का ही समर्थन देखा जाता हैं। न्यायसूत्र में लिखा है कि:—गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दों में से स्पर्श पर्य्यन्त पृथिवी के गुण हैं। जल तेज और वायु में पूर्व २ गुण को छोड़कर अर्थात् जल में गंध को छोड़कर, तेज में गंध और रस को छोड़कर वायु में गंध, रस, और रूप को छोड़कर, आकाश में केवल उत्तर अर्थात् शब्द गुण हैं। आयुर्वेद में सांख्य मत का समर्थन देखा जाता है। भगवान् चरक ने लिखा है कि आकाश, वायु, तेज, जल और

---

* अत्र गुणशब्देनेन्द्रियार्था विशेषागुणा ज्ञातव्याः।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।
तेषामेकगुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे ।
पूर्वः पूर्वो गुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृतः । इति
च० शा० १

एवं शास्त्रप्रमाणैः पृथिवी पंचगुणा चतुर्गुणा वा, जलं चतुर्गुणं त्रिगुणं वा, तेजस्त्रिगुणं द्विगुणं वा, वायुर्द्विगुण एकगुणो वा, आकाशस्तु सर्वथैकगुण इति सिध्यति । अथ च सांख्यशास्त्रे सर्वेषामेव भूतानामेकैकगुणाश्रयत्वमपि वर्णितं दृश्यते । तथाहि "सत्त्वरजस्तमसां

पृथिवी ये पांच महाभूत हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इनके गुण हैं । इनमें प्रथम अर्थात् आकाश में एक ही गुण है किंतु बाद के वायु, तेज, जल और पृथ्वी में अपने से पहले महाभूत के गुण के अतिरिक्त एक एक गुण की वृद्धि होती जाती है । इस प्रकार शास्त्रप्रमाण से पृथिवी में पांच या चार, जल में चार या तीन, तेज में तीन या दो, वायु में दो या एक और आकाश में एक गुण सिद्ध होता है । अथच सांख्यशास्त्र में सब ही भूतों में एक एक गुण वर्णित हुआ है यह भी देखा जाता है । जैसा कि 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारस्ततः पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि, इत्यादि सांख्यसूत्र के

साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः" (सां० द० १—६१) इति सूत्रस्य भाष्ये श्रीमता विज्ञानभिक्षुणाऽभिहितम् "तन्मात्राणां कार्याणि पंचस्थूलभूतानि। स्थूलशब्दात् तन्मात्राणां सूक्ष्मभूतत्वमभ्युपगतमि"ति। अत्रैतदवधेयम्—यदपेक्षया सूक्ष्मं किंचिद्विद्यते, तस्य कथंचित् सूक्ष्मत्वेऽपि स्वतः सूक्ष्मापेक्षया स्थूलत्वमपि प्रत्याख्यातुं न शक्यते यदपेक्षया सूक्ष्मं किंचिद्भूतं नास्ति तस्य तन्मात्रत्वे परमसूक्ष्मस्य परमाणोरेव तन्मात्रता पर्यवस्यति। तन्मात्राणामेकैकगुणाश्रयत्वं तेषां

भाष्य में श्रीमान् विज्ञान भिक्षु ने लिखा है कि तन्मात्राओं के कार्य पांच स्थूल भूत हैं। यहां भूतों के पहले "स्थूल" विशेषण लगाने से तन्मात्राओं को सूक्ष्मभूत समझना चाहिये। "सूक्ष्म स्थूलादि शब्द आनुपातिक हैं। जो पदार्थ किसी पदार्थ की अपेक्षा सूक्ष्म है वही अपने से सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल ही कहलावेगा। जो सूक्ष्मतम है अर्थात् जिससे सूक्ष्म भूत कुछ नहीं उसे तन्मात्रा कहा जावे, तो परमसूक्ष्मभूत परमाणु को ही तन्मात्रा कहना पड़ेगा। तन्मात्रमें एक एक इन्द्रियार्थ (गुण) है यह तो शब्द-

नामभिरेव स्पष्टमवगम्यते । एवममनेकगुणत्वमेकगुणत्वं च भूतानां शास्त्रवर्णितं दृष्ट्वा सन्दिह्यते किमत्र तत्त्वमिति । एतच्छङ्कासमाधानाय विचार्यते—'नित्यत्वे सति गुणवत्समवायिकारणत्वं भूतत्वमि'ति लक्षणादवगम्यते यत् खलु नित्यं सत् गुणवतां समवायिकारणं भवितुमर्हति तदेव भूतमिति । उत्पत्तिविनाशशीलं द्रव्यं नित्यं न भवतीति कृत्वोत्पत्ति-विनाशरहितानां परमाणूनामेव भूतत्वं तज्जानां द्व्यणुका-दिद्रव्याणां च भूतोत्पन्नत्वाद्भौतिकत्वं पर्यवस्यति । यत् स्वयं

तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा आदि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है । इस प्रकार शास्त्र में कहीं भूतों में एक गुण का, कहीं अनेक गुण का वर्णन देखकर सन्देह होता है कि इसमें वास्तविकता क्या है ? इस पर विचार करने से पता लगता है कि जो नित्य और गुणवान द्रव्य का समवायी कारण हो सकता है वही भूत है, यह भूत लक्षण पहले कहा जा चुका है ।

जो द्रव्य उत्पत्तिविनाशशील हो वह नित्य नहीं इसलिये उत्पत्ति विनाश रहित परमाणुओं को ही भूत कहना चाहिये । इन परमाणुओं से उत्पन्न द्व्यणुक आदि द्रव्य भूत से उत्पन्न है इसलिये उनको भौतिक कहना

गुणवत्तदेव गुणवतां समवायिकारणं भवितुमर्हतिभौतिकविशेष-गुणानां कारणगुणाजन्यत्वनियमात् । तत्र पंचेन्द्रियार्थदर्शनात्तेषामपीन्द्रियार्थानां नियतग्राहकपंचेन्द्रियदर्शनाच्छब्दादिपञ्चगुणानामधिकरणत्वेन पंचेन्द्रियप्रधानोपादानत्वेन च पंचभूतान्यनुमीयन्ते । परमाणूनामिन्द्रियाग्राह्याणां प्रत्यक्षासम्भवेऽनुमानमेव साधकं प्रमाणम् । भूतानामेकैक-गुणाश्रयत्वे पंचगुणाश्रयानि पंचभूतान्यनुमातुं शक्यन्ते,

---

चाहिये। यह नियम दार्शनिकों का माना हुआ ही है कि "कार्य के विशेष गुण (शब्द, स्पर्श,, रूप, रस, गन्ध) कारणके विशेष गुणों से ही उत्पन्न होते हैं", अतः शब्दादि गुणवान्का समवायी कारण भी शब्दादि गुणवान् द्रव्य ही हो सकता है। जगत् में शब्दादि पांच ही इन्द्रियार्थ हैं, और उन पांच विषयों को नियम से ग्रहण करने के लिए पांच ही इन्द्रियां हैं (अर्थात् शब्द के लिये श्रोत्र, स्पर्श के लिये त्वचा, रूप के लिए चक्षु, रस के लिए रसना और गन्धके लिये नासिका ये गुण ग्राहक ५ इन्द्रियां ही नियत हैं) सुतरां "शब्दादि इन्द्रिय ग्राह्य पांच गुणों के आश्रय तथा श्रोत्रादि पांच इन्द्रियों के प्रधान उपादान कारण करके पांच ही भूत हैं" यह अनुमान किया जाता है। परमाणुमें प्रत्यक्ष योग्यता नहीं है, इसलिये उसका प्रत्यक्ष तो नहीं होसकता केवल अनुमान ही परमाणुओं का साधक प्रमाण है। प्रत्येक भूतमें एक एक गुण हो तो शब्दादि

किन्त्वनेकगुणाश्रयत्वे पंचभूतानामनुमानमपि न सम्भव-ति । अयमर्थः शास्त्रकारैर्यथा समर्थितः खण्डितश्च तथानुव्याख्यास्यामः ।

तत्र सुश्रुताचार्येण दृश्यानां सर्वेषां पृथिवीजलादीनां पांच-भौतिकत्वमभिहितमिन्द्रियाणामिंद्रियार्थानामपि पांचभौतिक-त्वमेव वर्णितम्। यदुक्तम्—पृथिव्यप्तेजोवय्वाकाशानां समुद-याद् द्रव्याभिनिर्वृत्तिरुत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवतीदं पार्थिव-मिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति । तथा—

अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ।
स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणमिष्यते ॥

पांच गुणों के आश्रय पांचों भूतों का अनुमान हो सकता है। किन्तु यदि एक भूत में अनेक गुण रहते हों तो पांच भूतों का अनुमान भी नहीं हो सकता। इस विषय का शास्त्रकारों ने जैसे समर्थन और खण्डन किया है उसका विस्तृत वर्णन करता हूँ।

श्रीमान् सुश्रुताचार्य जी ने दृश्य पृथिवी आदि पांच महाभूतों को भी पांचभौतिक कहा है, तथा इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ सबको ही पांचभौतिक बताया है। सुश्रुताचार्य जी लिखते हैं "कि पृथिवी जल, तेज, वायु और आकाश के समुदाय से द्रव्य की उत्पत्ति होती है। किंतु किसी द्रव्य में

इन्द्रियाणां तदर्थानाञ्च भौतिकत्वमायुर्वेदे वर्ण्यते।
भवति चात्र—

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः।
नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमितिस्थितिः। इति।

सुश्रु० शा० १

पृथिवी की अधिकता होने से उसे पार्थिव, जल की अधिकता से जलीय, तेज के उत्कर्ष से तैजस्, वायु के उत्कर्ष से वायवीय, आकाश के उत्कर्ष से आकाशीय कहा जाता है। शारीरस्थान प्रथम अध्याय में लिखा है, दृश्य पृथिवी जल आदि पांचों में अपरापर चारों भूत अनुप्रविष्ट हैं। इसलिए दृश्य पृथिवी जल आदि सब पांचभौतिक हैं। किंतु पृथिवी नाम से प्रसिद्ध पांचभौतिक में पृथिवीका व्यक्त लक्षण और सबके अव्यक्त लक्षण तथा जल नाम से प्रसिद्ध पांच भौतिक में जलका व्यक्त लक्षण और सब के अव्यक्त लक्षण रहते हैं। ऐसा ही तेज वायु और आकाश के लिए समझना चाहिये। आयुर्वेद में भौतिक इन्द्रिय तथा भौतिक इन्द्रियार्थ का वर्णन हुआ है। मनुष्य तत्तदिन्द्रिय से उस इन्द्रिय के प्रधान उपादान के विशेष गुण को ही ग्रहण कर सकता है। अर्थात् चक्षुरिन्द्रियका प्रधान उपादान तेज है तेज का अपना गुण रूप है अतः चक्षु से नियम पूर्वक रूप को ही जान सकता है।

अस्यायमभिप्रायः—ननु सर्वेषामिन्द्रियाणामिन्द्रियार्थानां च पांचभौतिकत्वे कथं प्रतिनियतेनेन्द्रियेण प्रतिनियतस्यार्थस्य ग्रहणमिति । तत्राह तुल्ययोनित्वादिन्द्रियेण स्वंस्वं नियतमिन्द्रियार्थं मानवो गृह्णाति नत्वन्येनेन्द्रियेणान्येन्द्रियार्थं गृह्णाति । तथाहि—श्रवणेन्द्रियस्य पांचभौतिकत्वेऽपि आकाशस्यैव प्राधान्येन श्रोत्रारम्भकत्वमतएव श्रवणेन्द्रियेणाकाशस्य तद्योनिभूतस्य गुणं शब्द

रसनेन्द्रिय का प्रधान उपादान जल है, जलका अपना गुण रस है अतएव इन्द्रिय और विषय के समान उपादानतानिबन्धन रसनेन्द्रिय से रसको ही जान सकता है । दूसरी इन्द्रिय से दूसरे विषय को कभी नहीं जान सकता । ऐसा नियम सब इन्द्रिय और विषयों के लिये समझना चाहिये ।

इसका सरलार्थ यह है—प्रथम शंका होती है कि सब ही इंद्रिय पांचभौतिक हैं तथा सब इंद्रियार्थ भी पांचभौतिक हैं फिर निश्चितइंद्रियों से निश्चित विषय का नियम से ज्ञान क्यों होता है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि तुल्ययोनित्व अर्थात् समानउपादानता के कारण मनुष्य भिन्न भिन्न इंद्रियोंसे अपने अपने नियत विषयको ग्रहण कर सकता है। किन्तु एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण नहीं कर सकता । जैसे श्रवणेन्द्रिय पांचभौतिक है किन्तु उपादान में

मेव गृह्णाति नत्वन्येनेन्द्रियेण शब्दमवगन्तु शक्नोति कश्चिदपि । एवं स्पर्शनेन्द्रियस्य पांचभौतिकत्वेऽपि वायुप्रधानत्वात्तद्योनिभूतस्य वायोर्गुणं स्पर्शमेव स्पर्शनेन्द्रियेण ग्रहीतुं शक्नोति । दर्शनेन्द्रियस्य चक्षुषः पांचभौतिकत्वेऽपि तेजःप्राधान्यात् तद्योनिभूतस्य तेजसो गुणं रूपमेव चक्षुषा ग्रहीतुं शक्नोति, रसनेन्द्रियस्य पांचभौतिकत्वेऽपि जलप्राधान्यात्तेन तद्योनिभूतस्य जलस्य गुणं रसमेव ज्ञातुं

आकाश सब से प्रधान है। इसलिये श्रवणेन्द्रिय से उसके उपादानभूत आकाश के विशेषगुण शब्द को ही मनुष्य अनुभव कर सकते हैं। किन्तु श्रवणेन्द्रिय से और किसी विषय का अनुभव नहीं कर सकता और नही किसी अन्य इन्द्रिय से शब्द को जान सकता है। इसी प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय (त्वगिन्द्रिय) पांचभौतिक है, किन्तु इसके उपादान में वायुका प्राधान्य है, अतः स्पर्शनेन्द्रिय से अपने उपादानभूत वायु के विशेषगुण स्पर्श को ही जान सकता है। पांचभौतिक चक्षुमें तेजका प्राधान्य है इसलिये चक्षु से उसके उपादानभूत तेज के विशेषगुण रूप को ही जान सकता है। रसनेन्द्रिय पांचभौतिक है फिर भी इसके प्रधान उपादान जलभूत के विशेषगुण रसको ही रसनासे जाना जा सकता है पांचभौतिक घ्राणेन्द्रिय के प्रधानउपादानभूत पृथिवी के विशेष गुण गन्ध को ही घ्राणेन्द्रिय से जान सकता है दूसरी इन्द्रिय

शक्नोति । घ्राणेन्द्रियस्य पांचभौतिकत्वेऽपि पृथिवीप्राधान्यात्तेन तद्योनिभूतायाः पृथिव्या गुणं गन्धमेवानुभवितुं शक्नोति, नान्येनेन्द्रियेणान्यभूतगुणं कथमप्यवगन्तुं शक्नोति कश्चिद् विशेषज्ञोऽपि । श्रीमता डल्लनेनापि श्लोकोऽयमेवमेव व्याख्यातस्तथाहि-'इन्द्रियाणामिन्द्रियार्थानां पांच भौतिकत्वेऽपि यत्र यत्रेन्द्रिये यस्य यस्य भूतस्याधिक्यं तेन तेनेन्द्रियेण तस्य तस्यैव गुणाः शब्दादयो गृह्यन्ते इति दर्शयितुमाह इन्द्रियेणेत्यादि । इन्द्रियेण चक्षुरादिना रूपादिकमात्मीयमात्मीयं मानव उपादत्ते तद्यथा तैजसं चक्षुस्तैजसमेव रूपमादत्ते, पार्थिवं घ्राणेन्द्रियं पार्थिवमेव गन्धमादत्ते । एवं

से दूसरे गुण को नहीं जान सकता" यह एक अव्यभिचारी नियम है । श्रीमान डल्लनाचार्य ने भी इस श्लोक की व्याख्या इसी प्रकार लिखी है । जैसा कि—"इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ सब ही पांच भौतिक हैं; किन्तु जिस इन्द्रिय में जिस भूत का प्राधान्य है उस इन्द्रियसे उसी भूतके शब्दादि गुणको जाना जाता है ।" इस बात को दिखाने के लिये सुश्रुत जी ने कहा है कि इन्द्रियेण इत्यादि—'इन्द्रिय से (चक्षुरादि से) रूपादि अपने अपने विषय को मनुष्य जान सकते हैं । जैसे तैजस चक्षु तैजसरूपको ही ग्रहण कराता है । पार्थिव घ्राणेन्द्रिय पार्थिव गंध को ही ग्रहण कराता है । इसी

शेषेष्वपि बोद्धव्यम् । नियतमात्मीयमेव कुत इत्याह—तुल्य-योनित्वादिति एकभूतहेतुत्वाद् । भूतं हि स्वयोनिमेवानुधावति जलमिव जलम् ।"

अयं खलु विषयः श्रीमता चरकेणातोऽपि विशदं व्याख्यातस्तथाचोक्तम्—"तत्रानुमानगम्यानां पंचमहाभूत-विकारसमुदयात्मकानामपि सतामिन्द्रियाणां तेजश्चक्षुषि, खं श्रोत्रे, घ्राणे क्षिति, रापो रसने, स्पर्शनेऽनिलो विशेषेणावतिष्ठते । तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियं विशेषतस्तत्तदात्मक

प्रकार और सब के लिये भी समझना चाहिए। अपने नियत विषय को ही क्यों ग्रहण कराता है; इसके लिये कहा तुल्ययोनि-त्वात् अर्थात् एक ही भूत दोनोंके उपादान है। भूतका स्वभाव है कि स्वजातीय के पीछे चलता है जैसे जल के पीछे जल चलता है।'

इस विषय को श्रीमान् चरक जी ने इससे भी विस्तृत रूप से वर्णन किया है जैसा उन्होंने लिखा है कि:—

"यद्यपि इन्द्रियां अनुमानगम्य और पंचमहाभूत के विकार समुदयात्मक हैं तथापि चक्षु में तेज, श्रोत्र में आकाश, घ्राण में पृथिवी, रसना में जल और स्पर्शनेन्द्रिय में वायु विशेष रूप से (प्रधान रूप से) रहते हैं। इनमें जिस इन्द्रिय के उपादान में जो भूत विशेष (प्रधान) रूप से है उस इन्द्रिय से तदात्मक

मेवार्थमनुधावति तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च।" च० सू० ८।

अस्यायमभिप्रायः—विषयग्रहणलिंगेन विषयग्रहणकरणत्वेनेन्द्रियाण्यनुमीयन्ते। विषयग्रहणासमर्थस्य चक्षुरादेः साधकतमत्वाभावात् करणत्वाभावेनेन्द्रियतैव नास्ति। तानि खल्विन्द्रियाणि न साक्षात् पंचभिर्भूतैरारभ्यन्ते किंतु पंच महाभूतानां वक्ष्यमाणरीत्या भूतेभ्यो जातानां स्थूलाकाशादीनां विकाराः कार्याणि वातादयो रसादयश्च तेषांसमुदायो राशिरेवात्मा उपादानकारणं येषा मेवम्विधानामिन्द्रियाणां चक्षुषि तेजः, श्रोत्रे आकाशम्, स्पर्शने वायुः, रसनायां

अर्थ को ग्रहण करता है (इसके लिये दो हेतु हैं) (१) तत-स्वभावता हेतुक (२) विभुत्व हेतुक।

इस सन्दर्भ का यह अभिप्राय है कि:—इन्द्रियों का प्रत्यक्ष तो कभी नहीं होता। किन्तु जहां इन्द्रिय से विषय का ज्ञान होता है वहां उस ज्ञान के साधकतम अर्थात् करण-रूप से इन्द्रिय का अनुमान होता है। विषय ग्रहण में असमर्थ चक्षुआदि इन्द्रिय में साधकतमत्व नहीं इसलिये करणत्व भी नहीं है। अतएव उसको इन्द्रिय ही नहीं माना जाता। विषय ज्ञान के करणस्वरूप इन्द्रियां साक्षात् पांचों भूत से उत्पन्न नहीं हो सकती हैं (इसका कारण आगे व्यक्त होगा)

जलं, घ्राणे च पृथिवी विशेषेण इतरभूतापेक्षया आधिक्येनाव-तिष्ठते। चक्षुष उपादानभूतानां धातूनामारम्भकेषु पृथिव्यादि पांचभौतिकत्रसरेणुषु यावत्परिमिता इतरभौतिकत्रसरेणा-वस्ततोऽधिकपरिमितास्तैजसत्रसरेणव इत्यर्थः। एवमन्येष्व-पीन्द्रियेषु बोद्धव्यमिति। ननु सर्वेषामिन्द्रियाणां पांच-भौतिकत्वे कथमेकैकेनेन्द्रियेण नियतस्यैव विषयस्य ग्रहण-मित्यस्योत्तरमाह—तत्र यद्यदात्मकमित्यादि। इन्द्रियाणां

किन्तु पञ्चभूतों से पहिले तो पंच-महाभूत उत्पन्न होते हैं (इनकी उत्पत्ति का क्रम आगे वर्णन किया जावेगा) फिर उन महाभूतों के विकार से वातादि और रस रक्तादि धातु बनते हैं उनका समुदाय अर्थात् समष्टि इन्द्रिय की आत्मा अर्थात् उपादान कारण है। इस प्रकारसे सब ही इन्द्रियां पांचभौतिक हैं तथापि चक्षु में तेज, श्रवणेन्द्रिय में आकाश, रसनेन्द्रिय में जल, स्पर्शनेन्द्रिय में वायु, और घ्राणेन्द्रियमें पृथिवी विशेषरूप से अर्थात् अन्यान्य भूतों की अपेक्षा अधिक मात्रा में रहते हैं। चक्षु के उपादानभूत धातुओं के आरम्भक पृथिव्यादि पांचों भूतों के त्रसरेणु में जितने और भूतों के त्रसरेणु हैं उनकी अपेक्षा तेज के त्रसरेणु अधिक संख्यामें हैं ऐसा समझना चाहिये। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों में भी समझना चाहिए। इस पर सन्देह होता है कि सब ही इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ पांचभौतिक हैं तो एक एक इन्द्रिय से

केन्द्रप्राप्तिर्न सम्भवति न वा द्रव्यं विहायेन्द्रियार्था गुणाः ज्ञानकेन्द्रं गन्तुमर्हन्तीति विषयज्ञानमुभयथाऽसम्भवमेव स्यात् किन्त्विन्द्रियसन्निकृष्टविषयाश्रयभूतभूतसंसर्गादिन्द्रियोपादानभूतं प्रधानभूतमेव विभुत्वमाप्नोति । ततस्तदीय गुणोऽपि विषयाकाराकारितो ग्रहणयोग्यामौपचारिकीं विभुतामापद्यते । इन्द्रियार्थसन्निकर्षादुत्तेजितो वायुरिन्द्रियार्थानामभिवोढा यः खलु पाश्चात्यवैज्ञानिकैर्विद्युदित्यु-

---

विषयाधार जिस द्रव्य का संयोग होता है वह द्रव्य ज्ञान केन्द्र तक नहीं जा सकता। तथा उस द्रव्य को छोड़ कर उसका गुण भी ज्ञान केन्द्र तक नहीं जा सकता। इसलिये विषय का ज्ञान होना दोनों प्रकार से असम्भव हो जाता है। किंतु इंद्रिय से सन्निकृष्ट विषय के आश्रय स्वरूप भूत के संसर्ग से इंद्रियों का उपादान स्वरूप प्रधान भूत ही ग्रहणयोग्य विभुत्व को प्राप्त करता है। तब उस भूत का विशेष गुण भी विषय के आकार में आकारित (परिणत) होकर ग्रहण योग्य औपचारिक (गुण में वास्तविक विभुता नहीं हो सकती) विभुता को प्राप्त करता है। इन्द्रियों के साथ विषय के सन्निकर्ष से इन्द्रियार्थों को वहन करने वाला वायु जिसको आधुनिक वैज्ञानिक विद्युत् कहते हैं उत्तेजित हो कर इन्द्रियों के उपादान की स्वाभाविक वहिर्मुखगामिनी वृत्ति को उलटे धक्कासे केन्द्रगामिनी करके ज्ञानकेन्द्र के साथ विषय

च्यते स एवेन्द्रियोपादानानां स्वाभाविकीं वहिर्मुखप्रसृतां गतिं केन्द्रगामिनीं सम्पाद्य ज्ञानकेन्द्रेण सह विषय सन्निकर्षमापादयति ततो विषयज्ञानं सम्पद्यते । [कदाचिदिन्द्रियार्थाभिवोढा वायुर्यदा रोगशक्त्योत्तेजितो वहिर्मुखप्रसृतामिन्द्रियवृत्तिमन्तर्मुखप्रसृतामापादयति तदापि विषयसन्निकर्षमन्तरेणापि शब्दरूपादीनामनुभूतिर्दृश्यते । योगशक्त्याऽपि यदेन्द्रियाणां वहिर्मुखप्रसृता स्वाभाविकी गतिर्निरुध्यते तदापि विषयसन्निकर्षमन्तराऽपि शब्दादीनामनुभूतिर्जायते । वहिर्मुखप्रसृतया गत्येन्द्रियोपादानानां यावानंशोऽपचीयते

का सन्निकर्ष करा देता है उससे विषय का ज्ञान उत्पन्न होता है ।

नोट—[यदि कदाचित् इन्द्रियार्थों को वहन करने वाला वायु किसी रोग की शक्ति से उत्तेजित होकर इन्द्रियों की वहिर्मुख जानेवाली गतिको अन्तर्मुख जाने वाली कर देता है तो विषय का सन्निकर्ष न होने से भी शब्द रूपादि विषयका ज्ञान हो जाता है। (मूर्छा अपस्मार आदि रोग में ऐसा होता है) योगी पुरुष जब योग की शक्ति से इन्द्रियों की वहिर्मुख जाने वाली वृत्ति को रोक सकता है उस समय भी विषयसन्निकर्ष न होने से भी शब्दादि का ज्ञान हो सकता है]। वहिर्मुख जाने वाली गति से इन्द्रियों के उपादान से जितना अंश घटता जाता है भुक्त द्रव्योंके सारभाग

भुक्तसारात्तस्य सम्पूर्णता संजायते तस्मादेवोपवासाद् वर्धितेऽपि वायाविन्द्रियशक्तेरपचयो भोजनात्पुनस्तदुपचयो दृश्यते] किंतु इन्द्रियोपादानभूतानां स्वल्पपरिमितानां भूतानामागन्तुकेन्द्रियसन्निकृष्टभूतसंसर्गादपि न तथा विभु-त्वमुपजायते यथा तद्गुणानां प्रत्यक्षं सम्भवतीति तस्मा-देकेन्द्रियेणैकस्यैव विषयस्य ग्रहणमिति रहस्यम्। एतेने-न्द्रियेण बाह्याः शब्दादयो न गृह्यन्ते किन्तु इन्द्रियोपादान भूतस्य प्रधानभूतस्य गुणा एव बाह्यविषयसंसर्गात्तदाकारा

से उसका पूरण होता रहता है। इसीलिये उपवासमें वायु तो बढ़ता है; किन्तु इन्द्रिय शक्ति घट जाती है, फिर खाने पीने से वह शक्ति बढ़ जाती है।]

किन्तु इन्द्रियों के उपादान स्वरूप जो स्वल्प परिमाण भूत है (उपादान में एक भूत अधिक शेष सब स्वल्प भूत रहते हैं) आगन्तुक इन्द्रिय सन्निकृष्ट भूत के संयोग से भी उनमें इतनी विभुता नहीं आती; जिससे उनके गुणों का भी प्रत्यक्ष हो सके इसलिये एक इन्द्रिय से एक ही विषय का ज्ञान होता है ऐसा गूढ़ार्थ समझना चाहिये। इससे मालूम पड़ता है कि इन्द्रियों से बाह्य रूपादि का ज्ञान नहीं होता। किन्तु इन्द्रियों के उपादान में जो प्रधान भूत है उस भूत का गुण जो बाह्यविषय के संसर्ग से बाह्यविषय के आकार में

कारिता गृह्यन्ते इति चरकसिद्धान्तः* अयं खलु सिद्धान्तआधुनिकवैज्ञानिकानां प्रयोगादपि प्रमाणीकर्तुं शक्यते तथाहि—

विद्युद्धारया वायवीययोत्तेजिते श्रोत्रे विषय सन्निकर्षमन्तरेणापि शब्दानुभूतिर्दृश्यते । एवं स्पर्शने उत्तेजिते स्पर्शानुभूतिः, चक्षुष्युत्तेजिते रूपदर्शनं, रसनायामुत्तेजितायां रसानुभवः, उत्तेजिते च घ्राणेन्द्रिये गन्धानुभूति

परिणत हो जाता है उसी का ज्ञान होता है' ऐसा चरक का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिकों के प्रयोग से भी सिद्ध किया जा सकता है जैसा कि पांचभौतिक होते हुए भी वायुप्रधान विद्युत्-धारा से श्रवणेन्द्रिय को उत्तेजित करने से विषय सन्निकर्ष बिना ही शब्द का ज्ञान होता है। उसी प्रकार विद्युतसे त्वचा को उत्तेजित करने से विषयस्पर्श ज्ञान होता है। चक्षुको उत्तेजित करनेसे रूप दिखाई देता है। रसनाको उत्तेजित करनेसे रस मालूम पड़ता है। घ्राणेन्द्रिय को उत्तेजित करने

---

* अत्रचरकवर्णितप्रत्यक्षक्रमे स्वीकृते इन्द्रियाणि विषयदेशं गत्वा विषयपरिच्छेदं कुर्वन्तीति प्राचीनसिद्धान्तोऽपि समर्थितो भवति। तत्र विषयदेशशब्देन यत्र विषयेणसह इन्द्रियस्य सन्निकर्षो जातः सदेशोऽवगन्तव्यः। इस सिद्धांतानुसार "इद्रिय विषय देश में जाकर विषय परिच्छेद करता है" यह प्राचीन सिद्धांत भी ठीक लगता है। विषय देश से जहां विषय के साथ सन्निकर्ष हुआ उस देशको समझना चाहिए।

र्विषयसन्निकर्षमन्तरेणापि जायत इति।

अनया खलु परीक्षयेन्द्रियोपादानभूतानां प्रधानभूतानां गुणानामप्यनुभूतिरिति युक्त्या सिध्यति। अन्यथा विषयसन्निकर्षमन्तरेणापि एकयैव विद्युद्धारयोत्तेजितानि पंचेन्द्रियाणि कथं नियमेन पंचविषयाननुभावयन्तीति कारणान्तरेण समर्थयितु न शक्यते यत एकैव विद्युद्धारा पञ्चेन्द्रियार्थाभिव्यंजिका ततस्तस्या अपि पाञ्चभौतिकत्वं वाच्यम्।

से गन्ध मालूम पड़ता है। एक ही विद्युत् से पांचों इन्द्रियों को उत्तेजित करने से विषय सन्निकर्ष के बिना ही पांचों इन्द्रिय अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं।

इस परीक्षा से सिद्ध होता है कि इन्द्रियों के उपादान प्रधान भूतों के गुणों का ही अनुभव होता है, अन्यथा "विषय सन्निकर्ष न होने से भी एक ही विद्युत धारा से उत्तेजित पांच इन्द्रियां नियम से पांच विषयों का ज्ञान क्यों कराती हैं" इसको और किसी प्रकार से समर्थन नहीं कर सकते। यहां पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक ही विद्युत् धारा यदि पांच इन्द्रियों से पांच प्रकार के विषयों का अनुभव करा सकती है तो विद्युत् धारा में भी शब्दादि पांचों गुण अवश्य ही होंगे इसलिये विद्युत को भी पांच भौतिक स्वीकार करना चाहिये। यदि विद्युत में शब्दादि नहीं है तो इंद्रिय के प्रधान उपादान के गुण में ग्रहण योग्य

यदि विद्युद्धारायां शब्दादयो न सन्ति कथमिन्द्रियोपादानस्य प्रधानभूतस्य गुणो विभुत्वं ग्रहणयोग्यं स्यात्? 'सर्वदा सर्वभावानांसामान्यं वृद्धिकारणम्' इत्यभ्रान्तसिद्धान्तोऽपि स्मर्तव्यः। सर्वेषामेव भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वे सतीन्द्रियेण नियतविषयग्रहणनियमः सम्भवति किन्तु कस्यचिद्भूतस्यैकगुणत्वे कस्यचिच्चानेकगुणत्वे सर्वैरिन्द्रियैर्नियमेनैकैकविषयग्रहणव्यवस्था न सम्भवति। यद्भूतं यावतामिन्द्रियार्थानामधिष्ठानं तद्भूतारब्धेनेन्द्रियेण तावतामेवेन्द्रियार्थानां ग्रहणं प्रसज्यते।

विभुता कहां से आती है? समान से ही वृद्धि होती है यह तो अभ्रांत सिद्धांत है।

सब ही भूत एक एक इन्द्रियार्थ (शब्दादि) के आश्रय हों तो इन्द्रियों से नियत विषय-ग्रहण का नियम सम्भव हो सकता है किन्तु किसी भूत में एक और किसी में अनेक गुण हों तो यह नियम अर्थात् सब ही इन्द्रियों से नियम पूर्वक एक एक विषय के ज्ञान का नियम नहीं हो सकता। जिस भूत में जितने गुण हैं उस भूत से उत्पन्न इन्द्रियसे उतने गुणों का ज्ञान होना चाहिये (जैसे पृथिवी में चार या पांच गुण माने जावेंगे तो पार्थिव घ्राणेन्द्रिय से भी चार या पांच विषयों का अनुभव होना चाहिये न केवल गंध मात्र का)

अनेकेन्द्रियार्थाश्रयभूतैर्भूतैरारब्धेनेन्द्रियेणापि एवैकस्यैव विषयस्य नियमेन ग्रहणं न सम्भवतीति सर्वेषामेव भूतानामेकविषयाश्रयत्वं न्यायदर्शने युक्त्या प्रतिपाद्य पश्चात्तदेव युक्तिसिद्धं मतं युक्त्यन्तरेण खण्डितम् । तत् सर्वं सूत्रभाष्यादिकमुदाहृत्य भूतानामेकैकविषयाश्रयत्वमेव सर्वथा युक्तिसिद्धमिति प्रतिपादयिष्यामः ।

न्यायमतसमालोचना—

भाष्यम्—गन्धादयः पृथिव्यादिगुणा इत्युद्दिष्टमुद्देशश्च भूतानामेकगुणत्वे चानेकगुणत्वे समान इत्यत आह—

जो भूत अनेक इन्द्रियार्थ के (शब्द स्पर्शादिक) अधिष्ठान (आश्रय) है उससे बनी हुई इन्द्रिय से नियम पूर्वक एक ही विषय का ज्ञान होना असम्भव है अतएव न्यायदर्शन में 'सब ही भूत एक एक इन्द्रियार्थ के आश्रय हैं' इस मत को युक्ति से समर्थन करके फिर उसी मत को दूसरी युक्ति से खण्डन किया है। न्याय के उन सूत्रों और उनके भाष्य का उल्लेख करके 'भूतों में एक एक इन्द्रियार्थ हैं' यही मत युक्ति तर्क से सिद्ध किया जायगा।

न्याय मत की समालोचना—

भाष्य—'गंधादि पृथिवी आदि के गुण हैं' ऐसा उद्देश किया

सूत्रम्—'गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः। अप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्याकाशस्योत्तरः।

न्या० द० ३-१-६२-६३।

इति सूत्राभ्यां भूतानां गुणविभागं कृत्वा पूर्वपक्षं दर्शयति सूत्रकारः।

सूत्रम्—न सर्वगुणानुपलब्धेः न्या० ३-१-६४।

भाष्यम्—नायं गुणनियोगः साधुः। कस्मात्? यस्य भूतस्य ये गुणाः न ते तदात्मकेनेन्द्रियेण सर्व

गया है। पृथिवी आदि में एक एक गुण हों या अनेक गुण हों इससे उद्देश में समानता ही रहती है। अतः यह सूत्र है—गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इनमें से स्पर्श पर्यंत पृथिवी के गुण हैं। गंध के अतिरिक्त जल के, गंध, रस के अतिरिक्त तेज के, गंध, रस, रूप के अतिरिक्त वायु के गुण हैं। आकाश में केवल अन्तिम (शब्द) गुण है। इन दो सूत्रोंसे गुण विभाग करके पूर्वपक्ष दिखलाया गया है।

सूत्र—क्योंकि सब गुणों की उपलब्धि नहीं होती इसलिए पूर्वोक्त गुण विभाग ठीक नहीं है।

भाष्य—यह गुण विभाग ठीक नहीं है।

प्रश्न—क्यों?

उपलभ्यन्ते । पार्थिवेन हि घ्राणेन स्पर्शपर्यन्ता न गृह्यन्ते गन्ध एव एको गृह्यते एवं शेषेष्वपीति ।

कथं तर्हीमे गुणा नियोक्तव्या इति ।

सूत्रम्—एकैकश्येनोत्तरोत्तरगुणासद्भावादुत्तरोत्तराणां तदनुपलब्धिः । ३–१–६५ ।

भाष्यम्—गन्धादीनामेकैको यथाक्रमं पृथिव्यादीनामेकैकस्य गुणः, अतस्तदनुपलब्धिः, तेषां तयोस्तस्य चानुप-

---

उत्तर—जिस भूत के जितने गुण कहे गये हैं उस भूत से आरब्ध इन्द्रिय से वे सब गुण को नहीं जाने जाते । जैसे—पृथिवी से उत्पन्न, घ्राणेन्द्रिय द्वारा पृथिवी के गन्ध, स्पर्श आदि चारों गुण नहीं जाने जाते केवल गन्ध ही जाना जाता है । अन्य सब में भी ऐसा ही है ।

प्रश्न—तब इन गुणों का विभाग किस प्रकार होना चाहिए ?

उत्तर—(सूत्र) पृथिवी आदि सब ही भूतों में एक एक गुण प्रति नियत है इसलिये घ्राणेन्द्रिय से रस, रूप और स्पर्श को, रसनेन्द्रिय से रूप और स्पर्श को, चक्षुरिन्द्रिय से स्पर्श की उपलब्धि नहीं होती ।

भाष्य—गन्धादि में से क्रमानुसार एक एक गुण पृथिवी आदि का है अर्थात् पृथिवी में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द है इसलिये घ्राणेन्द्रिय से

लब्धिः। घ्राणेन रसरूपस्पर्शानां, रसनेन रूपस्पर्शयोः, चक्षुषा स्पर्शस्येति।

कथं तर्ह्यनेकगुणानि भूतानि गृह्यन्त इति ?

संसर्गाच्चानेकगुणग्रहणम्

जलादिसंसर्गाच्च पृथिव्यां रसादयो गृह्यन्ते एवं शेषेष्वपीति।

नियमस्तर्हि न प्राप्नोति, संसर्गस्यानियमाच्चतुर्गुणा पृथिवी, त्रिगुणा आपः, द्विगुणं तेजः, एकगुणो वायुरिति। नियमश्चोपपद्यते। कथम् ?

रसादि तीन, रसनेन्द्रिय से रूपादि दो और चक्षुरिन्द्रिय से स्पर्श की उपलब्धि नहीं होती।

प्रश्न—तब भूतों में अनेक गुण क्यों प्रतीत होते हैं ?

उत्तर—संसर्ग से अनेक गुण मालूम पड़ते हैं। पृथिवी में जल, तेज और वायु के संसर्ग से चार, जल में तेज और वायु के संसर्ग से तीन, तेज में वायु के संसर्ग से दो गुण मालूम पड़ते हैं।

प्रश्न—तब तो संसर्ग में कुछ नियम न होने के कारण पृथिवी आदि में उपलभ्यमान गुणों का नियम नहीं हो सकता ?

उत्तर—हो सकता है।

सूत्रम्—विष्टं ह्यपरं परेण ३–१–६६ ।

भाष्यम्—पृथिव्यादीनां पूर्वंपूर्वमुत्तरोत्तरेण विष्टमतः संसर्गनियम इति । तच्चैतद्भूतसृष्टौ वेदितव्यं, नैतर्हीति ।

सूत्रम्—न पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् ३–१–६७ ।

भाष्यम्—नेति त्रिसूत्रीं प्रत्याचष्टे । कस्मात् ? पार्थिवस्य द्रव्यस्याप्यस्य च प्रत्यक्षत्वात् । महत्त्वादनेकद्रव्यवत्त्वा-

---

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—(सूत्र) क्योंकि अपर पर से विष्ट है ।

भाष्य—पृथिवी में जल, जल में तेज, और तेज में वायु अनुप्रविष्ट है इसलिये तेज में दो गुण, जल में तीन और पृथिवी में चार गुण, नियम से पाये जाते हैं । एक भूत में दूसरे भूत का अनुप्रवेश सृष्टि के आरम्भ में भूत सृष्टि के समय हुआ है । अब यह कार्य नहीं होता है ।

सूत्र—पार्थिव और जलीय द्रव्यों का प्रत्यक्ष होता है इसलिये सब भूतों में एक एक गुण नहीं है ।

भाष्य—इस सूत्र से पूर्वोक्त तीन सूत्रों का खण्डन करते हैं ।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—पार्थिव और जलीय द्रव्यों का प्रत्यक्ष होने के कारण सब भूतों में एक एक गुण नहीं है । 'महत्त्व (स्थूलत्त्व) अनेक

द्रूपाच्चोपलब्धिरिति तैजसमेव द्रव्यं प्रत्यक्षं स्यान्न पार्थिव-माप्यं वा रूपाभावात्। तैजसवत्तु पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्ष-त्वान्न संसर्गादनेकगुणग्रहणम् भूतानामिति। भूतान्तरकृतं च पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षं ब्रुवतः प्रत्यक्षो वायुः प्रसज्यते। नियमे वा कारणमुच्यतामिति। रसयोर्वा पार्थिवाप्ययोः

द्रव्यवत्त्व (अनेकावयवत्त्व) और रूपवत्त्व से प्रत्यक्षोपलब्धि होती है' इस नियम के अनुसार रूपहीन द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक भूत में एक एक गुण माना जावे तो रूपयुक्त होने के कारण केवल तैजस द्रव्य का ही प्रत्यक्ष होना चाहिये किंतु केवल गन्ध विशिष्ट पार्थिव तथा केवल रस विशिष्ट आप्य द्रव्य का प्रत्यक्ष न होना चाहिए। किन्तु लोक में तैजस द्रव्य के समान पार्थिव और आप्य द्रव्य का प्रत्यक्ष भी सर्वानुभव सिद्ध है। अतः सिद्ध होता है कि केवल इतरभूत के संसर्ग से ही अनेक गुणों का ज्ञान नहीं होता किन्तु उन में अनेक गुण वास्तव में मौजूद हैं।

यदि कहा जाय कि पृथिवी और जल में तेज का संसर्ग होने के कारण उनका प्रत्यक्ष होता है तो तेज के संसर्ग से वायु का भी प्रत्यक्ष होना चाहिये। पृथिवी, जल और वायु में समान रूप से तेज का संसर्ग होने पर भी प्रथम दो के प्रत्यक्ष होने में और अन्तिम वायु का प्रत्यक्ष न होने में क्या कारण है?

प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवो रसः षड्विधः, आप्यो मधुर एव, न चैतत्संसर्गाद्भवितुमर्हति। रूपयोर्वा पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् तैजसरूपानुगृहीतयोः संसर्गे हि व्यंजकमेव रूपं न व्यंग्यमस्तीति। एकानेकविधत्वे च पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वाद्रूपयोः, पार्थिवं हरितलोहितपीताद्यनेकविधं रूपम्, आप्यन्तु शुक्लम-

---

(२) पार्थिव और जलीय रस का प्रत्यक्ष होने से भी सिद्ध होता है कि भूतों में एक एक गुण नहीं है। पार्थिव रस ६ प्रकार का (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय) और जलीय रस केवल मधुर है। मधुर-रस-विशिष्ट जल के संसर्ग से पृथिवी में छः प्रकार के रस उत्पन्न नहीं हो सकते। (३) पार्थिव और आप्य रूप के प्रत्यक्ष होने से सिद्ध होता है कि भूतों में एक एक गुण नहीं हैं। क्योंकि तेज का रूप व्यंजक (दूसरे को प्रकाशित करने वाला) होता है, उसके संसर्ग से पृथिवी और जल में व्यंग्य (दूसरे से प्रकाशित होने वाला) रूप नहीं हो सकता किन्तु व्यंजक रूप होना चाहिए, तथा तेज के संसर्ग से पृथिवी में हरा, पीला, नीला आदि अनेक रूप तथा जल में एकमात्र अप्रकाशक शुक्ल रूप नहीं होना चाहिए अपितु पृथिवी और जल में केवल तेज के संसर्ग से रूप मानने पर दोनों में समान रूप होना चाहिए। इससे सिद्ध होता है, कि एक एक गुण-विशिष्ट भूतों के संसर्गमात्र से ऐसा नहीं हो सकता। यह उदाहरण मात्र

प्रकाशकम्, न चैतदेकगुणानां संसर्गे सत्युपपद्यत इति। उदाहरणमात्रं चैतत्। अतः परं प्रपञ्चः। स्पर्शयोर्वा पार्थिवतैजसयोः प्रत्यक्षत्वात् पार्थिवोऽनुष्णाशीतः स्पर्शः, उष्णस्तैजसः प्रत्यक्षो न चैतदेकगुणानामनुष्णाशीतस्पर्शेन वायुना संसर्गेनोपपद्यत इति। अथवा पार्थिवाप्ययोर्द्रव्ययोर्व्यवस्थित-

है, आगे और विस्तार किया जाता है। (४) पार्थिव और तैजस स्पर्श के अनुभव से प्रतीत होता है कि भूतों में एक एक गुण नहीं हैं क्योंकि वायु में केवल अनुष्णाशीत स्पर्श है, उसके संसर्ग से तैजस में उष्ण स्पर्श तथा पार्थिव में अनुष्णाशीत स्पर्श नहीं हो सकता। परन्तु पार्थिव में अनुष्णाशीत और तैजस में उष्ण स्पर्श प्रत्यक्ष सिद्ध है, इस से भी सिद्ध है कि एक एक गुण युक्त भूतों के संसर्गमात्र से ऐसा नहीं हो सकता। (५) पार्थिव और आप्य द्रव्य में प्रतिनियत गुण प्रत्यक्ष होता है, जैसे पार्थिव द्रव्य में स्पर्श, रूप, रस और गन्ध जलीय द्रव्य में स्पर्श, रूप और रस का प्रत्यक्ष होता है इससे अनुमान किया जात है कि पृथिवी में पूर्वोक्त चार और जल में पूर्वोक्त तीन गुण हैं। कारण से ही कार्योत्पत्ति होने से कार्य में दृष्ट गुणों की कारण में सत्ता होने का अनुमान युक्तिसिद्ध है, इस प्रकार अनुमान द्वारा पृथिवी में चार और जल में तीन गुण सिद्ध हो जावें तो 'सब ही भूतों में एक एक गुण है' ऐसा

गुणयोः प्रत्यक्षत्वाच्चतुर्गुणं पार्थिवं द्रव्यं त्रिगुणमाप्यं प्रत्यक्षम् तेन तत्कारणमनुमीयते तथाभूतमिति । तस्य कार्यं लिंगं, कारणभावाद्धि कार्यभाव इति । एवं तैजसवायव्ययोर्द्रव्ययोः प्रत्यक्षत्वाद् गुणव्यवस्थायास्तत् कारणे द्रव्ये व्यवस्थानुमानमिति । दृष्टश्च विवेकः पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् । पार्थिवं द्रव्यमबादिभिर्वियुक्तं प्रत्यक्षतो गृह्यते, आप्यं, च पराभ्यां तैजसं च वायुना । न चैकैकगुणं गृह्यत

सिद्धान्त प्रमाणित नहीं हो सकता । (६) इसी प्रकार तैजस द्रव्य में दो और वायवीय द्रव्य में एक गुण प्रत्यक्ष है अतः इनके कारण भूत तेज में दो और वायु में एक गुण ही सिद्ध होता है । (७) विवेक (पृथग्भाव) भी देखा गया है क्योंकि पार्थिव और आप्य का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् जलादि से पृथक्भूत पार्थिव द्रव्य तेज और वायु से पृथक् जलीय द्रव्य, तथा वायु से पृथक् कृत तैजस द्रव्य को देख सकते हैं । इस प्रकार किसी भी भूत में केवल एक गुण का प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु तैजस में दो, जलीय में तीन, और पार्थिव में चार गुणों का प्रत्यक्ष होता है । इसलिये भूतों में एक एक गुण मानना ठीक नहीं है । (८) तेज में वायु, जल में तेज और पृथिवी में जल अनुप्रविष्ट है यह अनुमान हेतुशून्य होने से स्वीकार्य नहीं है ।

इति । निरनुमानंतु विष्टमपरं परेणेत्येतदिति। नात्र लिंगमनुमापकं गृह्यत इति येनैतदेवं प्रतिपद्येमहि । यच्चोक्तं–"विष्टं ह्यपरं परेणे ति भूतसृष्टौ वेदितव्यं न सांप्रतमिति" नियमकारणाभावादयुक्तम् । दृष्टं च साम्प्रतमप्यपरं परेण विष्टमिति, वायुना च विष्टं तेज इति । विष्टत्वं संयोगः स च द्वयोः समानो वायुना च विष्टत्वात् स्पर्शवत्तेजो न तु तेजसा विष्टत्वाद्रूपवान् वायुरिति नियमेकारणं नास्तीति । दृष्टञ्च तैजसेन स्पर्शेन वायवीयस्य स्पर्शस्याभिभवादग्रहणमिति, न च तेनैव तस्याभिभव इति ।

---

(९) और जो कहा गया है कि "भूतों को आदि सृष्टि में एक भूत दूसरे से अनुप्रविष्ट हो जाता है अब ऐसा नहीं है" यह नियम भी कारण (हेतु) रहित होने से युक्ति विरुद्ध है । इस नियम के प्रतिकूल अब भी एक में दूसरे को अनुप्रविष्ट देखा जाता है । जैसे तेजमें वायु अनुप्रविष्ट होजाता है । विष्टत्वका अर्थ संयोग है। वह संयोग दोनों संयुक्त पदार्थों के लिये समान हैं फिर भी वायु से अनुप्रविष्ट तेज तो स्पर्शवान् हो जाता है किन्तु तेज से संयुक्त वायु रूपवान् नहीं होता इस में कोई कारण नहीं है । (१०) तैजस उष्णस्पर्श से अनुष्णाशीत स्पर्श का अभिभव देखा जाता है । तेज में यदि वायु के संसर्ग से स्पर्श हो तो उससे

तदेवं न्यायविरुद्धं प्रवादं प्रतिषिध्य न सर्वगुणानुपलब्धेरिति चोदितं समाधीयते।

सूत्रम्—पूर्वं पूर्वं गुणोत्कर्षात्तत्तत्प्रधानम् ३-१-६८।

भाष्यम्—तस्मान्न सर्वगुणोपलब्धिः, घ्राणादीनां पूर्वं पूर्वं गन्धादेर्गुणस्योत्कर्षात् तत्तत्प्रधानम्। का प्रधानता ? विषयग्राहकत्वम्। को गुणोत्कर्षः? अभिव्यक्तौ

वायवीय स्पर्श का अभिभव नहीं हो सकता; क्योंकि अपने से अपना अभिभव नहीं होता।

इस प्रकार न्यायविरुद्ध प्रवादों का खण्डन करके भौतिक इन्द्रियों से भूतों के सब गुणों की उपलब्धि क्यों नहीं होती इस प्रश्न का समाधान करते हैं।

सूत्र—भूत में जितने गुण हैं उनमें से पूर्व पूर्व गुणों का उत्कर्ष के कारण वह प्रधान है।

भाष्य—इसलिए सब गुणों की उपलब्धि नहीं होती। इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि पृथिवी में चार गुण हैं तथापि उस में गन्ध प्रधान है, ऐसे ही जल में तीन गुण हैं किंतु इसमें रस प्रधान है, तेज में दो गुण हैं किंतु इस में रूप प्रधान है। अतः तत्तद् भूत से आरब्ध इंद्रिय से उस भूत के प्रधान गुण का ही ज्ञान होता है।

प्रश्न—प्रधानता क्या है ?

समर्थत्वम् । यथा वाह्यानां पार्थिवाप्यतैजसानां द्रव्याणां चतुर्गुणत्रिगुणद्विगुणानां न सर्वगुणव्यंजकत्वं, गन्धरसरूपोत्कर्षात्तु यथाक्रमं गन्धरसरूपव्यंजकत्वमेवं घ्राणरसनचक्षुषां चतुर्गुणत्रिगुणद्विगुणानां न सर्वगुणग्राहकत्वं गन्धरसरूपोत्कर्षात्तु यथाक्रमं गन्धरसरूपग्राहकत्वं तस्माद् घ्राणादिभिर्न सर्वेषां गुणानामुपलब्धिरिति । यस्तु प्रतिजानीते गन्धगुणत्वाद् घ्राणं गन्धस्य ग्राहकमेवं रसनादिष्वपीति तस्य यथागुणयोगं घ्राणादिभिर्गुणग्रहणं प्रसज्यत इति ।

उत्तर—विषयग्राहकत्व ।

प्रश्न—गुणोत्कर्ष क्या है ?

उत्तर—अभिव्यक्ति में सामर्थ्य । जैसे—वाह्य पार्थिव द्रव्य चतुर्गुण विशिष्ट (गन्ध रस रूप स्पर्श विशिष्ट) है तथापि चारों गुणों का व्यंजक नहीं होता क्योंकि इसमें गन्ध प्रधान है इसलिये केवल गन्ध का ही व्यंजक होता है । जलीय द्रव्य में तीन गुण (रस रूप स्पर्श) है किंतु यह तीनों गुणों का व्यंजक नहीं होता इसमें रस प्रधान होने से यह केवल रस का व्यंजक होता है । वाह्य तेज में रूप और स्पर्श ये दो गुण हैं किन्तु तेज दोनों का व्यंजक नहीं होता है केवल रूप का व्यंजक

अस्मिन् प्रकरणे भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वपक्षे सूत्रकारेण भाष्यकारेण च या या विप्रतिपत्तयः प्रदर्शितास्तासां समाधानं प्रदर्श्यते।

तत्र प्रथमविप्रतिपत्तिस्तावद्भूतानामेकैकगुणत्वे तेजस एव रूपवत्त्वात्तस्यैव चाक्षुषं प्रत्यक्षं सम्भवति नान्यस्य रूपरहितस्य भूतस्य। किंतु पार्थिवस्याप्यस्य च चाक्षुषप्रत्यक्षदर्शनात्तयोरपि रूपवत्त्वं सिध्यति नातो भूतानामेकैकगुणत्वमिति।

अत्रोच्यते—पार्थिवाप्ययोः चाक्षुषप्रत्यक्षत्वात् तयोः रूप-

होता है। (वास्तव में देखा जाता है कि वह्नि द्वारा केवल रूप की अभिव्यक्ति ही नही होती है किन्तु वह्नि संयोग द्वारा रस और गन्ध की भी अभिव्यक्ति होती है इसलिये वह्नि से केवल रूप की अभिव्यक्ति कहना संगत नहीं है।) इसी प्रकार पृथ्वी में चार गुण हैं किंतु उसमें गंध ही प्रधान है इसलिये पार्थिव घ्राणेन्द्रिय से केवल गन्ध का ज्ञान होता है। जल में तीन गुण हैं, किंतु उसमें रस प्रधान है अतः जलीय रसनेन्द्रिय से केवल रस का ज्ञान होता है, तेज में दो गुण हैं, किंतु इसमें रूप प्रधान है, जिससे तैजस चक्षु से केवल रूप का ज्ञान होता है। इसलिये घ्राणादि इन्द्रिय से पृथिव्यादि भूतों के सब गुण का ज्ञान नहीं होता है। जिनकी प्रतिज्ञा है कि पृथिवी में गंध गुण है अतः

यत्वे सिद्धेऽपि पृथ्वीजलयो रूपवत्त्वं न सिध्यति। दाश-रथिजानक्योर्वनवासः प्रामाणिक इति न तेनैव प्रमाणेन

पार्थिव घ्राणेन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान होता है। जल में रस है, अतः जलीय रसनेन्द्रिय से रस का ज्ञान होता है। तेज में रूप है इसलिये तैजस चक्षु से रूप का ज्ञान होता है। उनके मत में ही पृथिवी आदि में जितने गुण हैं पार्थिवादि इन्द्रियों से उन सबके ग्रहण का प्रसंग आ सकता हैं। यह न्यायदर्शन के भाष्यकार जी का मत है। इस प्रकरण में भूतों के एक एक इन्द्रियार्थ के आश्रय होने के विषय में सूत्रकार और भाष्यकार महोदय ने जितनी विप्रतिपत्तियों का उल्लेख किया है उनका समाधान दिखाया जाता है। प्रथम विप्रतिपत्ति यह है कि प्रत्येक भूत में एक एक गुण माना जावे तो केवल तेजमें रूप ही मानना पड़ता है। इसलिये केवल तैजस द्रव्य का ही प्रत्यक्ष हो सकता है। किंतु पृथिवी (जिसमें केवल गन्ध है) और जल (जिसमें केवल रस है) में रूप न होने के कारण पार्थिव और जलीय द्रव्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होसकेगा। अथच पार्थिव और जलीय द्रव्योंका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। जिससे सिद्ध होता है कि सबही भूतों में एक एक गुण नहीं। इसपर वक्तव्य यह है कि पार्थिव और जलीय द्रव्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष होने के कारण यदि इनमें रूप मान भी लिया जावे तो भी पृथिवी और जलमें रूप सिद्ध नहीं हो सकता। जैसा कि दाशरथि और जानकी का वनवास गमन प्रमाण सिद्ध

दशरथजनकयोर्वनवासस्य प्रामाणिकत्वं वक्तुं शक्यते। केवलपृथिवीतः केवलजलाद्वा न किंचित् स्थूलमुत्पद्यते किन्तु पांचभौतिकेषु पृथिवीप्राधान्यात्पार्थिवसंज्ञा, जलप्राधान्या-दाप्यसंज्ञेति भगवता सुश्रुतेन स्पष्टमेवाभिहितम्। न्यायनये परमाणुस्वरूपाणि भूतान्येव नित्यानि स्थूलानि परमाणु-जन्यानि च भूतानि अनित्यानि। एवंविधानां भूतजन्य-त्वाद्भौतिकसंज्ञैव युज्यते, किन्तु शास्त्रे सूक्ष्मभूतजन्यानामपि स्थूलभूतमहाभूतादिसंज्ञैव दृश्यते। सांख्ये सूक्ष्माणां

होने पर भी दशरथ और जनक का वनगमन प्रमाणित नहीं हो सकता है इसी प्रकार पार्थिव और जलीय धर्म पृथिवी और जल में भी प्रमाणित नहीं हो सकते। कारण यह है कि केवल पृथिवी या जल से कोई भी स्थूलद्रव्य उत्पन्न नहीं होता। किंतु सब ही स्थूल द्रव्य पांचभौतिक हैं। जिस पांच भौतिक में पृथिवी का अंश अधिक है उसको पार्थिव और जिस में जल का अंश अधिक है उसको जलीय माना जाता है। ऐसा भगवान सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है। न्यायमत में भी परमाणु स्वरूप सूक्ष्मभूतों को नित्य तथा परमाणु से उत्पन्न होने वाले स्थूलभूतों को अनित्य माना है। इस प्रकार भूत से उत्पन्न होने वाले को भौतिक कहना ही ठीक है किंतु शास्त्र में सूक्ष्मभूत से उत्पन्न होनेवाले को भी महाभूत, स्थूलभूत इत्यादि नामों से

भूतानां तन्मात्रसंज्ञा, स्थूलानां स्थूलभूतमहाभूतादिसंज्ञा। प्रागुक्तभूतलक्षणादपि परमाणूनां तन्मात्रापरपर्यायाणां भूतसंज्ञा समर्थिता, तज्ञानां स्थूलानां भौतिकत्वेऽपि महाभूतादिसंज्ञा। महाप्रलयादनन्तरमादिसृष्टौ भूतेभ्यो महाभूतानि उत्पद्यन्ते संसृज्यन्ते च परस्परम्. अनन्तरं पंचभिरेव शरीरमारभ्यते। अस्माकं प्रत्यक्षयोग्यानि सर्वाण्येव द्रव्याणि सर्वे चास्माकमिन्द्रियाणामर्थाः पंचभिरेव भूतैरारभ्यन्ते। तेषु द्रव्येष्विन्द्रियार्थेषु च यत्र पृथिव्या

उल्लेख किया है। जैसा कि सांख्य शास्त्र में सूक्ष्मभूतों को तन्मात्र और स्थूलभूतों को स्थूलभूत, महाभूतादि नाम से उल्लेख किया है। पूर्वोक्त भूतलक्षण से भी सांख्यशास्त्र में तन्मात्र नाम से प्रतिपादित परमाणुओं की भूतसंज्ञा और स्थूलपृथिवी आदि भौतिकपदार्थों की महाभूत संज्ञा का ही समर्थन किया गया है। महाप्रलय में जन्य भूतों का अस्तित्व नहीं रहता क्योंकि सब ही जन्यपदार्थ महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं। महाप्रलय के बाद जब सृष्टि का आरम्भ होता है तब भूतों से (नित्य परमाणुओं से) महाभूत उत्पन्न होकर परस्पर मिलते हैं। इसके बाद मिलित पांच भूतों से ही हमारे शरीर तथा प्रत्यक्षयोग्य अन्यान्य सब द्रव्य, एवं इन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्शादि उत्पन्न होते हैं। उन पांचभौतिक द्रव्यों और इन्द्रियार्थों में से

आधिक्यं तस्य पार्थिवसंज्ञा, यत्रापामाधिक्यं तस्याप्यसंज्ञा। एवमेव तैजसवायवीयाकाशीयसंज्ञा अवगन्तव्याः।

यदुक्तं भगवता सुश्रुतेन—'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदयाद् द्रव्याभिनिर्वृत्तिरुत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायवीयमिदमाकाशीयमि'ति।

श्रीमता चरकेणाप्युक्तम् 'सर्वं खलु पांचभौतिकमि'ति।

एतेन पार्थिवाप्ययोः पांचभौतिकत्वात्तत्रूपप्रत्य-

जिनमें पृथिवी का प्राधान्य है उनको पार्थिव कहा जाता है। जिनमें जल का प्राधान्य है उनको जलीय कहते हैं। इसी प्रकार से तैजस, वायवीय और आकाशीय संज्ञाएं होती हैं।

भगवान सुश्रुत जी ने भी लिखा है कि पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, की समष्टि से द्रव्य (स्थूल द्रव्य) की उत्पत्ति होती है। किंतु पृथिवीका उत्कर्ष (अधिकता) होने से पार्थिव, जिसमें जल का उत्कर्ष होने से जलीय, जिसमें तेज का उत्कर्ष तैजस, वायु का उत्कर्ष होने से वायवीय तथा आकाशका उत्कर्ष होने से आकाशीय कहते हैं। श्रीमान् चरकाचार्य ने भी कहा कि (द्रव्य) सब ही पांचभौतिक है।

क्षेऽपि न भूतानामेकैकगुणताहानिः। भूतेभ्यो महाभूतानामुत्पत्तिक्रमो भूतान्तरानुप्रवेशजन्यगुणवृद्धिनियमश्चाग्रे व्यक्तीभविष्यतीति नेह प्रतन्यते।

'दृष्टश्च विवेक' इत्यादिना भाष्यकारेणेतरभूतसम्बन्धरहितस्य केवलपार्थिवस्य, केवलजलीयस्य, केवलतैजसस्य च प्रत्यक्षत्वमभिहितम्, तच्चैतच्छास्त्रयुक्तिपरीक्षाविरुद्धमेव। स्थूलानां पांचभौतिकत्वप्रतिपादकशास्त्रवचनं चरकसुश्रुताभिहितं प्रागेवोल्लिखितम्। दृश्यपृथ्वी-

---

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जिनको पार्थिव या आप्य कहते हैं; वे भी पांचभौतिक हैं, फिर उन में रूप का प्रत्यक्ष हो जाने पर भी भूतों की एकैकगुणता की हानि नहीं होती। भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति तथा भूतान्तर के अनुप्रवेश जन्य गुण-वृद्धि नियमों का वर्णन आगे (११ अध्याय में) किया जावेगा इसलिए यहां विस्तार नहीं किया गया।

"विवेक (पृथग्भाव) देखा गया है", ऐसा कहकर भाष्यकार ने "इतर भूत से सम्बन्ध-रहित केवल पार्थिव (केवल पृथिवी से उत्पन्न), जलीय (केवल जल से उत्पन्न), तथा तैजस (केवल तेज से उत्पन्न) द्रव्य के प्रत्यक्ष का वर्णन किया है। वह शास्त्र, युक्ति और परीक्षा विरुद्ध है। स्थूल द्रव्यों के पांचभौतिकत्व के प्रतिपादक चरक और सुश्रुत के

जलादीनां पञ्चीकृतत्वमेव वेदान्तशास्त्राभिमतम्, तत्र पञ्चीकृतपांचभौतिकशब्दयोरेव भेद इति । युक्तिरग्रे प्रपंचयिष्यते । परीक्षया पृथिव्यादीनां स्थूलानामनेकोपादानकत्वमेव सिध्यति न त्वेकभूतजन्यत्वमिति । यदि कश्चिदितरभूतवियुक्तां पृथिवीं जलं तेजो वेतरावियुक्तं कृत्वाधुनाऽपि दर्शयितुं शक्नोति तदैव तत्रैकानेकगुणपरीक्षा भवितुमर्हति न वाक्यमात्रेणेति । वयं तु मन्यामहे—

वचन पहले उल्लेख किये जा चुके हैं। वेदान्तदर्शन में भी दृश्य पृथिवी जल आदि को पंचीकृत भूत कहा गया है । पंचीकृत (जिसमें पांचों भूत मिले हुए हैं) और 'पांचभौतिक' इन दोनों में शब्द-भेद है किंतु अर्थ में कुछ भी भेद नहीं। युक्ति का विस्तार आगे किया जावेगा । परीक्षा से भी इनका एकभूत से उत्पन्न होना सिद्ध नहीं होता । क्योंकि स्थूल पृथिवी आदि के भीतर अनेक विजातीय द्रव्यों का मिलना परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया गया है (जैसा मिट्टी के अन्दर सिलिकन, ओक्सिजन आदि १२ द्रव्य, जलके अन्दर हाईड्रोजन ओक्सिजन आदि) यदि अब भी कोई महानुभाव पृथिवी, जल आदि को इतरभूत से पृथक करके दिखा सकें तो परीक्षा की जा सकती है कि उनमें एक गुण है या अनेक । प्रयोगवाद के सामने केवल वाक्य से कुछ सिद्ध नहीं होता । हम तो समझते हैं कि

स्थूलतयैव भाष्यकारेणेतरभूतसंसर्गरहितेषु पार्थिवाप्यतैज-सेष्वनेकगुणप्रत्यक्षमभिहितम्। किन्तु निपुणं विचार्यमाणे तत्रापि पांचभौतिके तत्तद्भूतगुणानां प्रत्यक्षमेव सत्यमिति सिध्यति।

यच्चोक्तं भाष्यकारेण निरनुमानं विष्टभपरं परे-णेत्येतदिति नात्र लिङ्गमनुमापकं गृह्यत, इत्यादि। तत्रोच्यते-परमाणूनां भूतत्वं श्रीमद्भिर्नैयायिकैरपि स्वीक्रियत एव। तत्रैकस्मिन्नेव परमाणावनेकगुणानामवस्थानं युक्तितर्क-

---

भगवान् भाष्यकार ने अन्यान्य स्थूल भूतों से संसर्ग-रहित स्थूल पृथिवी, जल और तेज में अनेक गुणों के प्रत्यक्ष का वर्णन किया है। किंतु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर प्रतीत होगा कि स्थूलपृथिवी में (वास्तव में पांचभौतिक पार्थिव में) जल के संसर्ग से रस, तेज के संसर्ग से रूप और वायु के संसर्ग से स्पर्श भी होता है। ऐसे ही जलादि में भी जो अनेक गुण मालूम पड़ते हैं वह भी अन्यान्य भूतों के संसर्ग से हैं, इतना सत्य है।

श्रीमान् भाष्यकार ने लिखा है कि 'एक भूत दूसरे भूत में अनुप्रविष्ट है। यह अनुमानसे नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसे अनुमान के लिए कोई हेतु नहीं मिलता' इत्यादि। इस आक्षेप के उत्तर में यह वक्तव्य है कि नैयायिक भी परमाणु को भूत मानते हैं। एक परमाणु में अनेक गुण की कल्पना युक्ति, तर्क और प्रमाण विरुद्ध

प्रमाणविरुद्धमित्यग्रे प्रतिपादयिष्यते। परमाणूनामेकैकगुणत्वे सिद्धे स्थूलेषु बहुगुणानुभूतिर्भूतानां परस्परसंसर्गादेवानुमातुं शक्यते। तस्मान्न निरनुमानं विष्टमपरं परेणेति।

यच्चोक्तं विष्टं ह्यपरं परेणेति भूतसृष्टौ वेदितव्यं न साम्प्रतमिति नियमकारणाभावादयुक्तं दृष्टं साम्प्रतमपरं परेणाविष्टमिति,वायुना विष्टं तेज इति। एषापि भाष्यकारोक्तिः युक्तिविरुद्धैव यतो महाप्रलये जन्यानां सर्वेषामेव विनाशः सम्पद्यते तदानीं स्थूलभूतान्यपि नावशिष्यन्ते केवलं

है इसका आगे वर्णन किया जायगा। परमाणु में एक ही गुण सिद्ध होने के बाद स्थूल पृथिवी आदि में अनेक गुणों का अनुभव होने पर वाध्य होकर अनुमान करना पड़ेगा कि "अनेक गुणों का अनुभव अनेक भूतों के संसर्ग से होता है" इस लिये एक महाभूत में दूसरा भूत अनुप्रविष्ट है यह निरनुमान नहीं।

भाष्यकार ने और जो लिखा है कि "भूतों के सृष्टिकाल में एक महाभूत दूसरे महाभूत में अनुप्रविष्ट होता है, अब नहीं होता। इस नियम में भी कुछ कारण नहीं है। अब भी एक भूत में दूसरे भूत अनुप्रविष्ट होते हैं, जैसे—तेज में वायु अनुप्रविष्ट होता है।" भाष्यकार की यह उक्ति भी ठीक नहीं है क्योंकि महाप्रलय में सब ही जन्य द्रव्य का नाश हो जाता है; उस समय स्थूलभूत (वास्तव में भौतिक) भी अवशिष्ट नहीं रहते केवल परमाणु

परमाणुस्वरूपाणि नित्यानि भूतान्येव परस्परवियुक्तानि तिष्ठन्ति पुनः सर्गप्रारम्भे परमाणुतः स्थूलभूतानि जायन्ते तैश्च परस्परमिलितैः पांचभौतिकानि जडद्रव्याणि पांचभौतिकानि च स्थावरजंगमप्राणिशरीराण्यारभ्यन्ते। स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां भोगायतनशरीरेण वा मिलित आत्मैवानुभविता सम्पद्यते महाभूतानामपि विनाशात् पुनर्महाप्रलय इति महाभूतेषु गुणोत्पत्तिस्तेषां महाभूताना-मुत्पत्तिकाले सर्गादावेव भवितुमर्हति न साम्प्रतमिति। महाभूतसृष्टिकाले भोगायतनशरीराभावाद्भूतगुणानां महा-

---

स्वरूप नित्य भूत ही परस्पर वियुक्त होकर रहते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में पहिले परमाणुओं से स्थूलभूत (महाभूत) उत्पन्न होकर परस्पर मिल जाते हैं फिर मिले हुए पांचों भूतों से पांच-भौतिक जड़ (अचेतन) द्रव्य तथा स्थावर और जंगम जीवों के पांचभौतिक शरीर उत्पन्न होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म शरीर से (न्यायमत में भोगायतन शरीर से) संबद्ध ही आत्मा अनुभव करने वाला होता है। फिर जब महाभूतों का भी विनाश होता है तब महाप्रलय हो जाता है। इसलिये महाभूतों में गुणों की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ में जब महाभूतों की उत्पत्ति होती है, उस समय हो सकती है, अब नहीं हो सकती। जिस समय महाभूतों की सृष्टि

भूतगुणानां चानुभवितैव न सम्भवति। इदानीमस्माभिस्तु पांचभौतिकानि द्रव्याण्येवोपलभ्यन्ते तस्माद्वायुभूतेन तेजोभूतं विष्टमस्माभिर्नोपलभ्यते किन्तु वायुप्रधानेन पांचभौतिकेन तेजःप्रधानं पांचभौतिकं संयुक्तमेवोपलभ्यते। नैतावता वायुतेजसोर्गुणपरिच्छेदः सम्भवतीति। विष्टत्वं संयोगः सच द्वयोः समान इति भाष्यकारेणापरीक्षितमभिहितं यतो विष्टत्वं न केवलं संयोगमात्रं किन्तु विशिष्ट एव संयोगः किन्तद्वैशिष्ट्यमिति चेदुच्यते—येन खलु संयोगेन

होती है उस समय भोगायतन शरीर न रहने के कारण भूत और महाभूतों के गुण को अनुभव करने वाला कोई भी नहीं हो सकता अब हम केवल पांचभौतिकों के गुणों को अनुभव करते हैं, इसलिये 'वायु भूत में तेज भूत अनुप्रविष्ट है' ऐसा हम अनुभव नहीं कर सकते। किन्तु वायुप्रधान पांचभौतिक में तेजप्रधान पांचभौतिक संयुक्त है, इतना ही अनुभव कर सकते हैं। केवल भौतिकों के संयोग को देख कर वायु और तेज के गुण का विभाग नहीं हो सकता।

'विष्टत्व संयोग है और वह दोनों के लिये समान है' भाष्यकारने ऐसा उल्लेख किया है। उनका यह लेख भी सर्वथा ठीक नहीं है। क्योंकि विष्टत्व केवल साधारण संयोग नहीं है किन्तु विशिष्टसंयोग को विष्टत्व कहते हैं। विष्टत्व संयोग से यह तात्पर्य

मिलितयोर्द्रव्ययोरासायनिकपरिवर्तनद्वारा कज्जलीस्थित पारदगन्धकयोः कृष्णतादिवद्विशिष्टगुणाधानं जायते रासायनिकक्रियामन्तरेण ययोर्विश्लेषणमपि न सम्भवति स एव विशिष्टः संयोगः। येन खलु संयोगेन मिलितयोर्द्रव्ययोः स्वस्वरूपेणैवावस्थानमसमर्दितपारदगन्धकयोरिव न किंचिद् गुणान्तराधानं जायते ययोर्विश्लेषणं चाना-

---

है कि 'जिस संयोग से मिलित द्रव्यों में रासायनिक परिवर्तन द्वारा ऐसा नया गुण उत्पन्न हो जावे जो पहिले किसी संयोगी में उद्भूत न हो, जैसे पारद और गन्धक को खूब घोटने से उत्पन्न हुई कज्जलीमें ऐसा गुण उद्भूत हो जाता है जो पारद या गन्धकमें प्रथम नहीं था। और जिससे मिलित द्रव्योंका विश्लेषण भी आसानी से न होसके, केवल रासायनिक प्रक्रिया द्वारा ही कहीं कहीं हो सके। (सब का विश्लेषण भी नहीं होता है) इस प्रकार विशिष्ट मिलन को 'विष्टत्व' या 'रासायनिकमिलन' कहते हैं। और जिस संयोग से मिलित द्रव्यों के गुणों में कुछ विशेष परिवर्तन न होकर मिलित द्रव्य अपने अपने उद्भूतगुणसहित रहते हैं तथा जिन मिलित द्रव्यों का विश्लेषण भी आसानी से हो सकता है (जैसे पारद और गन्धक को मिला कर जब तक नहीं घोटा जाता, तब तक वे आसानी से पृथक हो सकते हैं) ऐसे संयोग को साधारण संयोग अथवा साधारण मिश्रण कहते हैं।

पासमेव संजायते स साधारणः संयोगः। विशिष्टादेव संयोगाद्विचित्रमिदं जगज्जायते न सर्वत्र साधारणसंयोगादित्यपरीक्षितमभिहितं–'विष्टत्वं संयोगः सच द्वयोः समान' इति। भूतेभ्यो महाभूतानामुत्पत्तिवर्णनावसरे विशिष्टसंयोगाद्विशिष्टगुणोत्पत्तिर्व्यक्तीभविष्यति।

एवं न्यायविरुद्धं (वस्तुतः प्रबलयुक्तितर्क प्रमाणादि सिद्धं) भूतानामेकैकगुणत्वस्थसिद्धान्तं दुर्बलयुक्तितर्कप्रमाणैर्निराकर्तुं व्यर्थं प्रयासं कृत्वा ततः पृथि-

---

विशिष्ट संयोग (रासायनिक मिलन) से ही विचित्र जगत् की उत्पत्ति हो सकती है, सब ही जगह में केवल साधारण संयोग से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती यह तो परीक्षित सत्य है। इस लिए अच्छी तरह से परीक्षा न करके ही भगवान् भाष्यकार ने लिख दिया कि 'विशिष्टत्व केवल संयोग है और वह दोनों के लिए समान है'। भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति का वर्णन करने के अवसर पर (११ अध्याय में) विशिष्ट संयोग से विशिष्टगुणोत्पत्ति का वर्णन किया जावेगा।

इस प्रकार भाष्यकार के लेखानुसार न्याय-विरुद्ध किन्तु वास्तव में प्रबल युक्ति, तर्क और प्रमाण-सिद्ध "सबही भूतों में एक एक विशेष गुण है" इस सिद्धान्त का दुर्बल युक्ति-प्रमाण से खण्डन करने

व्यादिभूतानामनेकगुणत्वे तदारब्धेन घ्राणादिना कथं पृथिव्यादिस्थिताः सर्वे गुणा नोपलभ्यन्त इति प्रश्नस्योत्तरमाह न्यायाचार्यः—पूर्वं पूर्वं गुणोत्कर्षात्तत्तत्प्रधानमिति—अस्याय-मभिप्रायो भाष्यकारेण वर्णितो यद्यपि पृथिव्यां चत्वारो गुणास्तथापि तत्र गंधस्यैवोत्कर्षः, एवं त्रिगुणेजले रसस्य, द्विगुणे तेजसि च रूपस्य प्राधान्यमतो नेन्द्रियेण सर्वगुणाना-मुपलब्धिः किंतु पार्थिवेन घ्राणेन गन्धस्य, आप्येन रसनेन रसस्य, तैजसेन नेत्रेण रूपस्य ग्रहणमिति। अभिव्यक्तौ सामर्थ्य-

---

को निरर्थक यत्न करके आगे "पृथिवी आदि भूतों में अनेक गुण माने जावें तो उनसे उत्पन्न इन्द्रियों से अनेक गुण का ज्ञान क्यों नहीं होता।" इस प्रश्न के उत्तर में न्यायाचार्य ने "पूर्वं पूर्वं गुणोत्क-र्षात्तत्तत्प्रधानम्" यह सूत्र लिखा है। भाष्यकार इस सूत्र का अभि-प्राय इस प्रकार वर्णन करते हैं कि—'यद्यपि पृथिवी में चार गुण हैं तथापि उसमें गन्ध का उत्कर्ष है। इसी प्रकार त्रिगुणविशिष्ट जल में रस का और द्विगुणयुक्त तेज में रूप का उत्कर्ष है। अत-एव इन्द्रिय से उसके उपादान के सब गुणों का ज्ञान नहीं होता किन्तु पार्थिव घ्राणेन्द्रिय से गन्ध का, जलीय रसनेन्द्रिय से रस का और तैजस चक्षु से रूप का ज्ञान होता है। अभि-व्यक्ति में सामर्थ्य को भाष्यकार ने उत्कर्ष शब्द का अभिप्राय बताया है। परन्तु यदि पृथिवीमें चार गुण हैं तो केवल गन्धमें ही

सेयोत्कर्षशब्दस्यार्थो भाष्यकारेण वर्णितस्तत्र पृथिव्याम-वस्थितेषु चतुर्षु चतुर्षु गुणेषु गन्धस्यैव कथं नियमेनाभि-व्यक्तौ सामर्थ्यमेवं जलादौ कथं रसादीनामेवाभिव्यक्ति-सामर्थ्यमिति प्रश्ने क्षित्यादिषु गन्धादीनामाधिक्यमेव वाच्यं स्यात्तत्तु न संगच्छते। यतो पृथिवीपरमाणौ यावान् रसो यावच्च रूपं यावांश्च स्पर्शो जलपरमाणौ ततोऽधिको रसस्तेजः-परमाणौ चाधिकं रूपमनिलपरमाणौ चाधिकः स्पर्श इति वाक्यार्थः पर्यवस्यति।

अभिव्यक्ति का सामर्थ्य क्यों है? इसी तरह यदि जलमें तीन गुण हैं तो केवल रस में ही अभिव्यक्ति का सामर्थ्य क्यों है? तथा यदि तेज में दो गुण हैं तो केवल रूप में अभिव्यक्ति का सामर्थ्य क्यों है? इसके उतर में कहना पड़ेगा कि पृथिवी में गन्ध, जल में रस और तेज में रूप अधिक है इसलिए पृथिवी आदि में गन्धादि अभिव्यक्त हो सकते हैं। किन्तु पृथिवी में रसादि, जल में रूपादि और तेज में स्पर्श अप्रधान अर्थात् अल्प हैं, इसलिए अभि-व्यक्त नहीं हो सकते। लेकिन ऐसा कहना भी संगत न होगा क्योंकि पृथिवी-परमाणु में जितना रस, रूप और स्पर्श है जलपरमाणु में उस से अधिक रस, तेजपरमाणु में अधिक रूप और वायु-परमाणु में अधिक स्पर्श है, ऐसा ही भाष्यकारके वाक्य का तात्पर्य हो सकता है। जैसे परमसूक्ष्म अर्थात जिस से और सूक्ष्म न

तत्र परमकाष्ठाप्राप्तानां परमसूक्ष्मद्रव्याणां यथा परमाणुत्वमेवं परमसूक्ष्मगुणानामेव परमाणुगुणत्वं वाच्यं, किन्तु पृथिवीपरमाणौ यावान् रसो जलपरमाणौ यदि ततोऽधिको रसः कथ्यते तस्य परमाणुगुणतैव व्याहन्यते तदपेक्षयाऽपि सूक्ष्मतररससम्भवादेवं तेजःपरमाणुस्थरूपस्य वायुपरमाणुस्थस्पर्शस्य च परमाणुगुणता न सम्भवतीति महान् दोष आपद्यते।

किं च रसादिषु गुणेषु अधिकाल्पादिगुणान्तरयोगो

हो सके ऐसे एक अवयवविशिष्ट द्रव्य को परमाणु कहते हैं। ऐसे ही परमसूक्ष्म अर्थात् जिस से अल्प न हो सके ऐसे गुण को ही परमाणु का गुण कहना चाहिये। किन्तु पृथिवीपरमाणु में जितना रस है जल परमाणु में उससे अधिक रस है' ऐसा कहने से जलपरमाणु के रस को परमाणु का गुण नहीं कह सकते क्योंकि उससे भी अल्प रस पृथिवी में है। इसी प्रकार तेज परमाणु के रूप और वायुपरमाणु के स्पर्श को भी परमाणु का गुण नहीं कह सकते क्योंकि तेज से अल्प रूप जल और पृथिवी में तथा वायु से अल्प स्पर्श तेज, जल और पृथिवी में है। इस प्रकार एक भारी दोष न्याय मत में आता है।

दूसरी बात यह है कि रस, रूप और स्पर्श गुण पदार्थ हैं, गुण

न सम्भवति किन्तु रसादिवदवयवानामाधिक्यादधिको रसादिरल्पत्वाच्चाल्पो रसादिरित्यौपचारिकः प्रयोगः स्थूलेषु सम्भवति। परमाणोरेकावयवत्वात्तत्र गुणतारतम्यकथनं कथंचिदपि युक्तिसिद्धं न भवितुमर्हतीति।

किञ्च स्थूलपृथिवीजलतेजसां एकैकगुणाभिव्यञ्जकत्वमपि भाष्योक्तं न सर्वसम्मतं दृश्यते तु वन्हेरपि गन्धादिव्यञ्जकत्वं दग्धमृत्पाषाणादाविति ततो भूतानां सर्वेषा-

---

में गुण नहीं रहता, इसलिए अधिक रस, अल्प रस, अधिक रूप अल्प रूप, ऐसा प्रयोग ही नहीं होसकता क्योंकि ऐसा प्रयोग करने से रसादि गुण में परिभाण नामक गुण मानना पड़ता है किन्तु रसादि गुण युक्त अवयव जिसमें अधिक हैं उसमें अधिक रसादि हैं जिसमें रसादि युक्त अवयव अल्प हों उसमें रसादि अल्प है ऐसा औपचारिक प्रयोग स्थूल द्रव्यादि में किया जाता है। एक मात्र अवयवविशिष्ट परमाणु में इस प्रकार गुणों का तारतम्य कथन अर्थात् 'अधिक रस, अल्प रस' ऐसा कहना किसी प्रकार से युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता।

भाष्यकार ने जो स्थूल पृथिवी को गन्ध मात्र का, स्थूल जल को रस मात्र का और स्थूल तेज को रूप मात्र का व्यंजक लिखा है, यह भी सर्व सम्मत सिद्धान्त नहीं है। स्थूल वह्नि के संयोग से मृत्तिका, पाषाण आदि में गन्ध की अभिव्यक्ति का

मेवैकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वं तथा प्रधानतया येन भूतेन यदिन्द्रियमारब्धं तद्भूतस्यैव गुणास्तेनेन्द्रियेणोपलभ्यत इत्यायुर्वेदसिद्धान्त एव युक्तितर्कसिद्धः साधुरिति ।

ननु भगवता चरकेणापि—'तेषामेकगुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे' इत्यादिनाकाशादिक्षित्यन्तेषु यथासंख्यमेकद्वित्रिचतुःपंचगुणा वर्णितास्तथापि भूतानां सर्वेषामेकैकगुणत्वमायुर्वेदसम्मतमिति कथं कथयितुं शक्यत इति

होना प्रत्यक्ष सिद्ध है फिर भी सबको एक एक गुण का अभिव्यंजक कैसे कह सकते हैं। ऊपर लिखित युक्ति-तर्क से सिद्ध होता है कि सब ही भूतों में एक एक विशेष गुण है और जिस भूत से जो इन्द्रिय उत्पन्न होतीं है उस भूत के विशेष गुण को ही उस इन्द्रिय से जाना जाता है, इस प्रकार आयुर्वेद का सिद्धान्त ही युक्ति-तर्क-सिद्ध सत्य सिद्धान्त है ।

यहां फिर प्रश्न होता है कि भगवान चरक ने भी भूतों में प्रथम अर्थात् आकाश में एक गुण है और पर-पर भूत में एक एक गुण बढ़ता है अर्थात् आकाश में केवल शब्द, वायु में शब्द और स्पर्श, तेज में शब्द, स्पर्श और रूप, जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस, पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण है; ऐसा माना है फिर 'सब ही भूतों में एक एक गुण है' इस सिद्धान्त को आयुर्वेद सिद्धान्त करके किस प्रकार ग्रहण किया जा सकता

चेत्। उच्यते—न तत्र भूतानां गुणवर्णनं किन्तु महाभूतानामेव यतस्तत्रैवोद्दिष्टं 'महाभूतानि खं वायु'रित्यादि। तत्रापि 'शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणा' इति भिन्नविभक्तिनिर्देशात्प्रत्येकभूतस्यैक एव स्वकीयगुणो वाय्वादिषु गुणवृद्धिस्तु पूर्वभूतानुप्रवेशजन्येत्यवगम्यते। व्याख्यातं च श्रीमता चक्रपाणिनैवमेव। यदुक्तं तेन पूर्वोक्तश्लोकानां व्याख्यानावसरे—'शब्दादयो यथासंख्यं खादीनां नैसर्गिका

है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि चरक में यहां भूतों के गुणों का वर्णन नहीं किया गया किन्तु महाभूतों के गुण का वर्णन किया है जैसा कि वहां स्पष्ट करके लिखा है कि आकाश, वायु, तेज जल और पृथिवी महाभूत हैं। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि पांच महाभूतों के लिए पांच गुण पृथक् पृथक् विभक्ति द्वारा पृथक् पृथक् निर्दिष्ट किए गए हैं जिस से प्रतीत होता है कि आकाशादि भूतों में एक एक गुण तो उनका स्वकीय (अपना) गुण है और वायु आदि महाभूतों में पूर्व पूर्व महाभूतों के अनुप्रवेश से एक एक गुण की वृद्धि होती जाती है। श्रीमान् चक्रपाणि ने भी ऐसी ही व्याख्या की है। जैसा कि पूर्वोक्त श्लोकों की व्याख्या में लिखा है कि शब्दादि एक एक विशेष गुण आकाशादि का नैसर्गिक (स्वभाविक) गुण है। वायुप्रभृति में जो गुणवृद्धि कही जाती है वह अनुप्रविष्ट भूतों

गुणा ज्ञेयाः। यस्तु गुणोत्कर्षोऽभिधातव्यः सह्यनुप्रविष्ट-भूतसम्बन्धादेव तेन पृथिव्यां चतुर्भूतानुप्रवेशात्पंचगुण-त्वमेवं जलादिषु चतुर्गुणत्वादिकं ज्ञेयमिति।

'यत्तु भगवता सुश्रुतेनाभिहितमाकाशपवनदहनतोय-भूमिषु यथासंख्यमेकोत्तरपरिवृद्धाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा' इति तदपि महाभूतानां गुणवर्णनमेव, तथा गुणपरिवृद्धिरपि पूर्वभूतानुप्रवेशकृताऽवगन्तव्या। श्रीमता डल्लनाचार्येणापि परस्परं भूतानुप्रवेशादित्थमेकोत्तरा वृद्धिर्ज्ञेयेति लिखितम्।

के सम्बन्ध से होता है। इसलिये पृथिवी में चार भूत अनुप्रविष्ट होने से इनमें पांच गुण होते हैं। जल में तीन भूत अनुप्रविष्ट होने से उसमें चार गुण हैं। इस प्रकार सब में ही समझना चाहिये।

भगवान् सुश्रुत ने जो लिखा है कि आकाश में एकमात्र शब्द, वायु में शब्द, स्पर्श; तेज में शब्द, स्पर्श और रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस; पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध गुण हैं। यहां भी महाभूतोंके गुणोंका वर्णन है तथा वायु आदि में आकाशादि भूतों का अनुप्रवेश जन्य गुण वृद्धि है, ऐसा ही समझना चाहिये। श्रीमान् डल्लन ने भी लिखा है कि पर-पर भूत में पूर्व-पूर्व भूतों के अनुप्रवेशजन्य ही गुणवृद्धि होती है, ऐसा जानना चाहिये।

न केवलं सांख्यशास्त्रे आयुर्वेदे चाकाशादीनि मूलभूतानि शब्दाद्येकैकेन्द्रियार्थाधिष्ठानानि महाभूतानि च यथाक्रममेकाधिकगुणायुक्तानि वर्णितानि इति मन्तव्यम्। वेदान्तशास्त्रीयपञ्चदशीग्रन्थेऽपि पञ्चभूतप्रकरणे आकाशादीनां गुणा एवमेव वर्णिता दृश्यन्ते यथा—

प्रतिध्वनिर्व्योम्नो गुणः।

वायोः—

शोषस्पर्शौ गतिर्वेगो वायुधर्मा इमे मताः।
त्रयः स्वभावाः सन्माया व्योम्नां ये तेऽपि वायुगाः ॥७६॥

केवल सांख्यशास्त्र और आयुर्वेद में ही मूलभूत के एक-एक गुण तथा आकाशादि महाभूतों में क्रम से एक, दो, तीन, चार और पांच गुण माने गये हैं बल्कि वेदांतशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ पंचदशी के पञ्चभूतविवेक प्रकरण में आकाशादि भूतों के ऐसे ही गुण कहे हैं जैसे कि आकाश का गुण प्रतिध्वनि (शब्द) है। वायु का गुण-शोष, (शोषण) स्पर्श, गति और वेग हैं, इनके अतिरिक्त सत माया और आकाश के गुण भी वायु में हैं। इस श्लोक से स्पष्ट है कि स्पर्श तो वायु का अपना गुण है। आकाश का गुण शब्द भी इसमें सम्मिलित हो जाता है क्योंकि स्थूल वायु में आकाश भी सम्मिलित है।

तेजसः—

सन्मायाव्योमवाय्वंशैर्युक्तस्याग्नेर्निजो गुणः ।
रूपं तत्र सतः सर्वमन्यद्बुद्ध्वा विविच्यताम् ॥९०॥

जलस्य—

सन्त्यापोऽमूः शून्यतत्त्वाः सशब्दस्पर्शसंयुताः ।
रूपवत्योऽन्यधर्मानुवृत्त्या स्वीयो रसो गुणः ॥९१॥

पृथिव्याः—

अस्ति भूस्तत्त्वशून्यास्यां शब्दस्पर्शौ सरूपकौ ।
रसश्च परतो गन्धो नैजः सत्ता विविच्यताम् ॥९४॥

अग्नि के गुण—सत् माया, आकाश और वायु के अंश से युक्त (स्थूल) अग्नि में रूप उसका अपना गुण है किंतु उसमें आकाश के सम्पर्क से शब्द और वायु के सम्पर्क से स्पर्श भी रहता है।

जल के गुण–जल का स्वकीय गुण रस है किंतु अन्य धर्म की अनुवृत्ति से—अर्थात् आकाश, वायु और तेज के सम्पर्क से स्थूल जल में शब्द, स्पर्श और रूप भी हैं।

पृथिवी के गुण—पृथिवी में गन्ध अपना गुण है किंतु परसे अर्थात आकाशादि चार भूतों के सम्पर्क से स्थूल पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप और रस भी रहता है। पञ्चदशी के इन श्लोकों में भूतों

उद्धृतेषु श्लोकेषु स्पष्टमेवायुर्वेदवर्णितस्य गुण-विभागस्य समर्थनमवलोक्यते।

महाभारतेऽपि शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मेऽभिहितम्—

वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते।
आकाशप्रभवः शब्दो गन्धो भूमिगुणः स्मृतः॥

अस्मिन्नपि श्लोके प्रतिभूतमेक एव गुणो वर्णित इति।

मनुसंहितायां गुणविभाग एवमेव दृश्यते। तथाचोक्तम्—

आकाशं जायेत तस्मात् तस्य शब्दं गुणं विदुः।

मनु० १–७५

बलवान् जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः।

मनु० १–७६

का गुण विभाग ठीक आयुर्वेद के अनुसार ही है।

महाभारत के शांतिपर्व मोक्षधर्म में लिखा है कि वायु का स्पर्श, जल का रस, तेज का रूप, आकाश को शब्द और भूमि का गुण गन्ध स्वकीय गुण है। इस श्लोक में प्रत्येक भूत का एक एक ही गुण कहा है।

मनुसंहिता में भी आयुर्वेद के अनुसार ही भूतों का गुण-विभाग है। जैसे कि आकाश का गुण शब्द है, वायु का स्पर्श, ज्योतिः अर्थात् तेज का रूप, जल का रस और

ज्योतिरुत्पद्यते तस्मात् तद्रूपगुणमुच्यते ।

मनु० १–७

अन्यच्च:—

आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ।

यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥

मनु० १–८०

एष्वपि मनुवचनेषु आयुर्वेदानुकूलो गुणविभागः स्पष्टमुपलभ्यत इति ।

निपुणमेवं विचार्यावगम्यते यत् परमाणुस्वरूपाणां

पृथिवी का गुण गंध है । इनमें पर-पर भूत आद्य २ भूत के गुण को प्राप्त करता है इसलिये प्रथम महाभूत आकाश में एक मात्र शब्दगुण, द्वितीय महाभूत वायु में शब्द और स्पर्श दो गुण, तृतीय महाभूत तेज में शब्द स्पर्श और रूप तीन गुण, चतुर्थ महाभूत जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण तथा पांचवें महाभूत पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच गुण हैं । इन श्लोकों में आयुर्वेद के अनुसार ही भूतों के गुण कहे गये हैं ।

सूक्ष्म रूप से विचार करने पर मालूम पड़ता है कि परमाणुस्वरूप भूतों में, जिनको सांख्यशास्त्र में तन्मात्र नाम

तन्मात्रापरपर्यायाणां भूतानां सर्वेषामेवैकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वमेव। भूतजानामतो भौतिकत्वेऽपि महाभूतसंज्ञकानामाकाशादिस्थूलभूतानां यथासंख्यमेकद्वित्रिचतुःपंचगुणत्वमस्माभिरनुभूयमानानामाकाशादिनाम्ना व्यवह्रियमाणानां सर्वेषामेव पांचभौतिकत्वात् सर्वेषामेव पंचगुणत्वमिति सिद्धान्तः।

तत्र श्लोकाः—

आकाशादीनि भूतानि सर्वाण्येकगुणान्यथ।
महाभूतेषु जन्येषु गुणवृद्धिः प्रजायते॥

से वर्णन किया गया है, केवल एक एक इन्द्रियार्थ ही है। भूतों से उत्पन्न होने के कारण वस्तुतः भौतिक, परन्तु महाभूत नाम से प्रसिद्ध आकाशादि स्थूलभूतों में क्रमसे एक, दो, तीन, चार और पांच गुण हैं। और हम जिन आकाशादि नाम से प्रसिद्ध पांच द्रव्यों को भूत समझते हैं, ये पांचों ही पांचभौतिक हैं, इसलिये इनमें से प्रत्येक में पांच पांच गुण हैं यह ही सिद्धान्त है।

संग्रहश्लोक को व्याख्या—

आकाशादि सब ही भूतों में एक एक विशेष गुण है आकाशादि नाम से प्रसिद्ध पांच महाभूतों में क्रम से एक, दो, तीन, चार और पांच गुण हैं इनमें से प्रत्येक महाभूत में

एकद्वित्रिचतुःपंचगुणत्वं खादिषु स्मृतम् ।
गुणस्तत्रैक आत्मीयः शेषः संसर्गजः स्मृतः ॥
अन्योन्यानुप्रविष्टानि दृश्यभूतानि निर्दिशेत् ।
तस्मात् पंचगुणान्येव सर्वाणीति विनिश्चयः ।

इति भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वनिरूपणाख्यो द्वितीयोऽध्यायः

एक स्वकीय गुण है, बाकी सब भूतान्तरों के अनुप्रवेशजन्य हैं । दृश्य प्रत्येक महाभूत में पांचों महाभूत सम्मिलित हैं, इसलिये दृश्य सब ही महाभूतों में पांच पांच गुण हैं ऐसा निश्चय है ।

भूतों में एक एक इन्द्रियार्थ का निरूपण नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।

तृतीयोऽध्यायः

भूतानां स्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम्—

द्रव्याणां त्रिविधं परिमाणं सम्भवति। यतः सूक्ष्मं किंचिन्न भवितुमर्हति तत् परमाणुपरिमाणं कथ्यते। यतः सूक्ष्मं स्थूलं च विद्यते तन्मध्यमपरिमाणम्, यतः स्थूलं किंचिन्न भवितुमर्हति तत्परममहत्परिमाणम्। तत्र कार्य-द्रव्यस्य स्वकारणापेक्षया स्थूलत्वात् स्वकार्यापेक्षया परम-महदपेक्षया च सूक्ष्मत्वात्तस्य मध्यमपरिमाणत्वमेव।

भूतों के स्वरूप-गुण-धर्मादि का विवेचन—

भूतों का तीन प्रकार का परिमाण हो सकता है (१) जिससे सूक्ष्म और कुछ भी न हो सके उसको 'परमाणु परिमाण' कहते हैं। (२) जिससे सूक्ष्म और स्थूल भी हो सकता है उसको 'मध्यम परिमाण' कहते हैं। (३) जिससे स्थूल और कुछ नहीं हो सकता उसको 'परममहत् परिमाण' कहते हैं। कार्य द्रव्य अर्थात कारण से उत्पन्न द्रव्य अपने कारण की अपेक्षा से स्थूल होता है किन्तु अपने कार्य द्रव्य तथा परम-महत्-द्रव्य की अपेक्षा से सूक्ष्म होता है इसलिए कार्य-द्रव्य सर्वदा मध्यमपरिमाण ही

अतिस्थूलमपि कार्यद्रव्यमवयवान्तरयोगात् स्थूलतरं भवितुमर्हतीति कार्यद्रव्यस्य परममहत्परिमाणता न सम्भवति। आदिकारणस्य शाश्वतिकसत्तायोगित्वाद् भूतत्वमिति भूतलक्षणे प्रतिपादितम्। तत्र किमादिकारणं किं वा कारणादुत्पन्नं सत् कारणं जातं तन्निर्णयाय जन्यानां मध्यमपरिमाणानां विभागो विश्लेषश्चापेक्ष्यते। मध्यमपरिमाणानां द्रव्याणां यथाशक्तियन्त्रादिभिरनुमानेन कल्पनया वा विभागे विश्लेषणे वा कृते यस्य खलु पुनर्विभागो विश्लेषणं वा कथमपि न सम्भवति तत्रैवावयवधाराया

होता है। कार्य द्रव्य चाहे कितना ही बड़ा हो उसमें और अवयव मिलाने से और भी बड़ा हो सकता है इसलिये कार्य द्रव्य कभी परम-महत्-परिमाणविशिष्ट नहीं हो सकता। आदिकारण में शाश्वतिक (सर्वदा के लिये) सत्ता है इसलिये उसको भूत कहते हैं, इस बात को भूत के लक्षण में स्पष्ट किया गया है। कारणों में कौन आदि कारण है और कौन कारण से उत्पन्न होकर दूसरे का कारण बनता है, इसका निर्णय करने के लिये मध्यम परिमाणविशिष्ट जन्य द्रव्यों के विभाग और विश्लेषण करने की आवश्यकता है। यन्त्रादि द्वारा, अनुमान द्वारा किम्वा कल्पना द्वारा मध्यम परिमाण द्रव्यों का यथाशक्ति विभाग या विश्लेषण करके

विश्रामस्तस्यैकावयवत्वात् । तस्याप्यनेकावयवत्वे यन्त्रादिभिरनुमानेन कल्पनया वा पुनर्विभागोऽपि सम्भवेदेव । अवयवधारायाः कुत्रचिदप्यविश्रामे सर्वेषामेव मेरुसर्षपादीनामनन्तावयवत्वात् तुल्यपरिमाणतोपपद्यते सा तु न संगच्छते। दृश्यते चाल्पावयवानां क्षुद्रत्वमधिकावयवानां च महत्त्वमिति । एवं विभज्यमानेषु कार्यद्रव्येषु यत्रावयवधाराया

जिस अंश का पुनः विभाग या विश्लेषण किसी प्रकार से नहीं हो सकता उस द्रव्य में अवयवधारा का विश्राम हो जाता है क्योंकि वह एकअवयव-विशिष्ट द्रव्य है। उसमें भी अनेक अवयव हों तो यन्त्रादि द्वारा, अनुमान या कल्पना द्वारा, फिर भी विभाग या विश्लेषण हो सकता है। "किसी द्रव्य की अवयवधारा का विश्राम कहीं भी नहीं होता" ऐसा कहने से पर्वत और सरसों के अनन्त अवयव होने के कारण दोनों को तुल्यपरिमाण कहना चाहिए। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि देखा जाता है कि जिसमें अल्प अवयव हैं उसको क्षुद्र और जिसमें अधिक अवयव हैं, उसको वृहत कहा जाता है इसलिये सब में अनन्त अवयव नहीं हो सकते ।

इस प्रकार कार्य द्रव्यों का विभाग करते हुए जहां अवयवधारा का विश्राम हो जाता है वह एकावयवविशिष्ट परमाणु कहलाता है। उसकी अपेक्षा से सूक्ष्म वस्तु की कल्पना भी नहीं हो

विश्रामः स एवैकावयवः परमाणुरिति कथ्यते। तदपेक्षया सूक्ष्मद्रव्यस्य कल्पनमपि न सम्भवतीति तस्य परमाणु-(परम + अणु) संज्ञा सुतरामेव संगच्छते। परमाणुतोऽपि सूक्ष्मं किंचित्परिकल्प्य तन्नामकरणप्रयासी वन्ध्यापुत्रनाम-करणप्रयासीव सद्भिरूपेक्ष्यते। अवयवयोरवयवानां वा विशिष्टसम्बन्धादेव कार्यद्रव्यमुत्पद्यते, तद्विशिष्टसम्बन्ध-स्यासमवायिकारणाख्यस्य च विनाशात्कार्यद्रव्यं विन-श्यतीति नियमादेकावयवस्य परमाणोरुत्पत्तिविनाशौ न

सकती है इसलिये उसका परमाणु (परम + अणु अर्थात् सब से छोटा) नाम सर्वथा ठीक है। परमाणु से भी सूक्ष्म पदार्थ की कल्पना करके उसके नामकरण में चेष्टा करने वाला वन्ध्या-पुत्र के नामकरण में चेष्टा करने वाले के समान विद्वानों की उपेक्षा का पात्र हो जाता है। दो या इससे अधिक अवयवों के विशिष्ट मिलन से कार्यद्रव्य उत्पन्न होता है। अवयवों के इस विशिष्ट मिलन को असमवायीकारण कहते हैं। 'अवयवों के विशिष्ट सम्बन्ध-रूप असमवायीकारण के नाश से कार्य द्रव्य का नाश होता है।' इस नियम के अनुसार एकावयव-विशिष्ट परमाणु की उत्पत्ति या विनाश नहीं हो सकता। इसलिये परमाणु की नित्यता भी सिद्ध हो जाती है (जिस पदार्थ की उत्पत्ति और विनाश नहीं

सम्भवत इति तस्य नित्यत्वमपि सुतरां युक्त्या सिध्यतीति।

एवंविधानां परमसूक्ष्माणां परमाणूनां लौकिकेन्द्रियेण यन्त्रादिसहायेन वेन्द्रियेण नास्ति प्रत्यक्षयोग्यता येनास्माभिः प्रत्यक्षं कृत्वा परमाणूनां स्वरूपगुणधर्मादिकं वर्णयितुं शक्येत। येषां त्रैकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा तादृशा रजस्तमोभ्यां निर्मुक्ता आप्ता हि परमाणून् तद्गुणांश्चापि प्रत्यक्षीकर्तुं समर्थाः। हीनशक्तिकैरस्माभिराप्तवचनेनानुमानेन वा कथंचिदवगन्तुं शक्यते भूतानां

है वह नित्य होता है, ऐसा नियम है।)

इस प्रकार परम सूक्ष्म परमाणु को लौकिक (साधारण) इन्द्रियों से अथवा यन्त्रादि की सहायता से देखना असम्भव है अतः हम प्रत्यक्ष करके इनके गुण-धर्मादि का वर्णन नहीं कर सकते। जिन महानुभावों को भूत, भविष्यत, वर्तमान के सब ही विषय; का अभ्रान्तज्ञान सर्वदा हो सकता है, रजोगुण और तमोगुण से सर्वथा मुक्त ऐसे आप्त पुरुष ही परमाणु और उनके गुण-धर्मों का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। अल्पशक्ति–विशिष्ट हम आप्त-वचन अथवा अनुमान से भूतों के गुण-धर्मों को कथंचित जान सकते हैं। हम इतने शक्तिहीन हैं कि जिन इन्द्रियों से विषय को प्रत्यक्ष करने हैं उन इन्द्रियों का ही प्रत्यक्ष नहीं कर सकते, फिर इन्द्रियों के उपादान के उपादान भूतों को प्रत्यक्ष

स्वरूपगुणधर्मादिकमिति । स्वेन्द्रियप्रत्यक्षशक्तिरहितैर्हीन-शक्तिकैरस्माभिर्भूतप्रत्यक्षे नाग्रहोऽपि कार्यः । उत्पत्तेः प्राग् विनाशानन्तरं च जन्यानां स्वरूपं नावतिष्ठते । तथा जन्यानामेवावयवव्यवस्थायाः परिवर्तनादिक्षुरसगुडशर्करादीनामिव गुणधर्मादीनां परिवर्तनं सम्भवति । नित्यानामेकावयवानां न कदाचित्स्वरूपनाशो न वा गुणधर्मादीनां परिवर्तनं सम्भवतीति । कार्यद्रव्याणामादिकारणमेकावयवः

करने के लिए आग्रह भी हमें नहीं करना चाहिये । उत्पत्ति से पहले और विनाश के बाद जन्य पदार्थों का कुछ स्वरूप नहीं रहता । जैसे इक्षुरस, गुड़, शर्करा आदि स्थूल द्रव्यों में अवयव-व्यवस्था के परिवर्तन से गुणधर्म आदि का परिवर्तन हो जाता है, इसी प्रकार सब ही जन्य पदार्थों की अवयव-व्यवस्था के परिवर्तन से गुण-धर्मों का भी परिवर्तन हो सकता है किन्तु एकमात्रअवयवविशिष्ट नित्यद्रव्य परमाणु का स्वरूपनाश अथवा गुण-धर्मादि में परिवर्तन कभी नहीं हो सकता ।

कार्यद्रव्यों के आदिकारण एकावयवविशिष्ट परमसूक्ष्म परिमण्डल (गोल) द्रव्य को परमाणु कहते हैं । आकाशपरमाणु में शब्द, वायुपरमाणु में स्पर्श, तेजपरमाणु में रूप, जलपरमाणु में रस और पृथिवीपरमाणु में गन्ध नियत अर्थात् अपरिवर्तनीय गुण हैं । सब ही परमाणु जड़ (अचेतन) हैं । सृष्टि के प्रारम्भ

परिमण्डलः परमाणुस्तत्राकाशवायुतेजोजलपृथिवीपरमाणुषु यथासंख्यं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा नियता गुणाः। जडा एव परमाणव ईश्वरेच्छया प्रेरिताः सृष्टिकाले परस्परं मिलित्वा कार्यजातं जनयन्ति। तथैवेश्वरेच्छया महाप्रलये वियुक्ता एव तिष्ठन्ति। पुनः सर्गादावीश्वरेच्छया परस्परं मिलिता द्व्यणुकादिक्रमेण जगदुत्पादयन्तीति। तन्मात्रापरपर्यायेषु परमाणुषु शान्तघोरमूढाः सुखदुःखमोहजनका गुणा न तिष्ठन्तीति सांख्याचार्यैरप्यभिहितम्। स्थूलेषु पांचभौतिकेषु पृथिवीजलादिष्वनेकेन्द्रियग्राह्या ये गुणा दृश्यन्ते ते

में ईश्वर की इच्छा से प्रेरित होकर परमाणु मिलित होकर साक्षात् तथा परम्परासम्बन्ध से सब अन्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। ऐसे ही ईश्वर की इच्छा से महाप्रलय में परस्पर वियुक्त (पृथक् पृथक्) होकर रहते हैं। फिर सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर की इच्छा से द्व्यणुक आदि क्रम से मिलित होकर जगत् को उत्पन्न करते हैं। इन परमाणुओं को सांख्यशास्त्र में तन्मात्र नाम से उल्लेख किया है और यह भी लिखा है कि इनमें सुख-दुःख और मोह के उत्पादक शान्त, घोर और मूढ़ धर्म नहीं होते। स्थूल, पृथिवी, जल आदि में अनेक इन्द्रियों से अनुभव करने के योग्य जो भी गुण देखे जाते हैं वे सब भौतिकों या महाभूतों के

भौतिकानां महाभूतानां वा गुणा भवितुमर्हन्ति न तु भूतानाम्। तथाहि यदि जलपरमाणौ स्नेहः सांसिद्धिकद्रवत्वं वाऽभविष्यज्जलारब्धेन रसनेन्द्रियेणैव रसस्येव तयोरपि नियमेन ग्रहणमभविष्यत् किन्तु तथा नैव दृश्यते, दृश्यते तु स्पर्शनेन चक्षुषा वा स्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वयोर्ग्रहणमिति। नैवंविधानां परमाणुगुणत्वं युक्त्या सिध्यतीति।

तथा च श्लोकौ—

यद्भूतस्य गुणो यश्च स्वकीयः परिकीर्तितः।
तद्भूतजेनेन्द्रियेण नियमेन स गृह्यते॥
अनेकेन्द्रियविज्ञेया ये गुणाः परिकीर्त्तिताः।

गुण हैं। यदि जलपरमाणु में सांसिद्धिक (स्वाभाविक) द्रवत्व या स्नेह होता जैसा कि वैशेषिक सम्प्रदाय मानता है तो जलीय रसनेन्द्रिय से ही उनका ज्ञान होना चाहिए था जैसे कि रस का होता है। किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता। चक्षु और स्पर्शनेन्द्रिय से स्नेह और सांसिद्धिक द्रवत्व का अनुभव होता है इस लिए ऐसे गुण को परमाणु का गुण कहना युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि जिस भूत का जो निज गुण है उस भूत से उत्पन्न इन्द्रिय द्वारा उसी का ज्ञान होना चाहिये। जिन गुणों को अनेक इन्द्रियों से जाना जाता है ऐसे गुणों की उत्पत्ति के लिए एक ही भूत कारण

द्वादशानामभिव्यक्तौ कारणं नैकभूतकम् ॥ इति ॥

भूतसंख्याविमर्शः—

ननु परमाणुस्वरूपाणां भूतानां यन्त्रादिभिरपि प्रत्यक्षायोग्यानां पंचविधत्वं कथं निश्चीयते। एकविधादपि परमाणोर्विचित्रसंयोगवशाद्विचित्रस्य जगत उत्पत्तिः सम्भवति। सम्भवति चानेकविधात् परमाणोर्जगत उत्पत्तिरिति न तु पंचविधादितिनियमे किंचित् कारणं परिदृश्यते इतिचेत्।

नहीं है, अनेक भूतों के विशिष्ट मिलन से वे गुण उत्पन्न होते हैं।

भूत संख्या-विमर्श—

प्रश्न होता है कि जब भूत परमाणु स्वरूप हैं यन्त्रादिसे भी इनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता फिर पांच ही प्रकार के भूत हैं इस प्रकार का निश्चय कैसे कर लिया गया एक प्रकार के परमाणु के विचित्र संयोग से भी विचित्र जगत की उत्पत्ति हो सकती है और बहु प्रकार के परमाणुओं के विचित्र संयोग से भी विचित्र जगत् की उत्पत्ति हो सकती है, फिर पांच ही प्रकार के परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति होती है इस प्रकार नियम करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता फिर भी पांच ही भूतों से जगत् की उत्पत्ति क्यों मानी जाती है?

उच्यते—प्रत्यक्षायोग्यानामनुमानेनाप्तवचनेन च निर्णयो भवतीति प्रागभिहितम्। आप्तवचनेषु पंचभूतान्येव निर्दिष्टानि नाधिकानि नाल्पानि वा। अस्माकं शरीरे नियमेन पंचैवेन्द्रियाणि दृश्यन्ते नाधिकानि नाल्पानि वा। पंचेन्द्रियाणां पंचविषया अपि नियता एव। विषयाणां गुणत्वाद् द्रव्याश्रयमन्तरेणावस्थानं न सम्भवति तस्मात् पंचेन्द्रियप्रधानोपादानत्वेन पंचेन्द्रियार्थाधिष्ठानत्वेन च पंचैव भूतान्यनुमीयन्ते नाधिकानि नाल्पानि वा। एक-

---

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भूत प्रत्यक्ष योग्य नहीं हैं, इसलिए अनुमान और आप्त वचन से ही भूतों का ज्ञान होता है यह तो पहिले भी लिखा है। वेदादिआप्तशास्त्रों में पांच ही भूत उल्लिखित हुये हैं इससे अधिक या अल्प भूत कहीं नहीं लिखे हमारे शरीर में भी नियम पूर्वक पांच ही इन्द्रिय हैं इससे अधिक या अल्प नहीं हैं। पांच इन्द्रियों के लिए पांच विषय भी निश्चित ही हैं। ये पांच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) गुण पदार्थ हैं, अतः द्रव्य के आश्रय में ही रह सकते हैं, निराश्रय या अन्य किसी के आश्रय में नहीं रह सकते। अतएव पांच इन्द्रियों के प्रधान उपादान रूपसे पांच भूतों का अनुमान किया जाता है तथा पांच इन्द्रियार्थ (शब्दादि) के आश्रय रूप से भी पांच ही भूतों का अनुमान होता है इससे अधिक या अल्प भूतों के

विधात् परमाणोरेवेन्द्रियाणामर्थानां च समुद्भवे एकेनैवे-न्द्रियेण सर्वविषयग्रहणापत्तिरितरेन्द्रियनैरर्थक्यं चापद्यते यदि संयोगवैचित्र्यादेकविधातपरमाणोरिन्द्रियाणामर्थानां चोत्पत्तिः कल्प्यते तथापि संयोगवैचित्र्यस्यानन्तत्वाद-नन्तेन्द्रियेन्द्रियार्थानां समुत्पत्तिः प्रसज्यते। पंचेतरविधात् परमाणोः कथं पंचैवेन्द्रियाणि पंचैवार्थाश्चोत्पद्यन्त इति नियमकारणं कल्पयितुं न शक्यते। कारणेष्वव्यक्तरूपेणा-वस्थिताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा यदा विशिष्टकारण-

---

अनुमान करने में कुछ हेतु नहीं मिलता। एक ही प्रकार के परमाणु से सब ही इन्द्रिय और इन्द्रियार्थों की उत्पत्ति होती तो एक ही इन्द्रिय से सब ही इन्द्रियार्थों का ज्ञान हो जाता जिस से और सब इन्द्रियां निरर्थक हो जातीं। एक प्रकार के परमाणुके विचित्र संयोग से यदि पांच इन्द्रियां और पांच इन्द्रियार्थों की उत्पत्ति मानी जावे तो संयोग वैचित्र्य के अनन्त होने के कारण अनन्त इन्द्रिय और अनन्त इन्द्रियार्थ की समुत्पत्ति होनी चाहिए थी! पांच से अधिकसंख्यक या अल्पसंख्यक परमाणुओं से जगत् की सृष्टि होती तो नियम से पांच ही इन्द्रिय और पांच ही इन्द्रियार्थ क्यों उत्पन्न होते इस नियमके कारणकी कोई कल्पना नहीं की जासकती। कारण में अव्यक्त रूप से अवस्थित शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध जब विशिष्टकारण-व्यापार द्वारा अभिव्यक्त होते हैं

व्यापारादाविर्भवन्ति तदा रासायनिकपरिवर्तनद्वारोत्पत्ति स्तेषां कथ्यते। यदा च कारणेषु व्यक्ता एवते कार्येषूत्पद्यन्ते तदा साधारणसंयोगजोत्पत्तिरभिधीयते। कारणेषु सर्वथाऽविद्यमानानामुत्पत्तिसम्भवे कारणव्यवस्थेन्द्रियार्थेषु च पंचपरिमितिरपि आकस्मिकी प्रसज्यते। तथा पंचेतरसंख्यककारणजन्यत्वे सतीन्द्रियाणां नियमेन पंचपरिमितिरप्याकस्मिकी स्यादित्यनुमानेनाप्तवचनेन च पंचैव भूतानीति निश्चीयते। तथा—

तब रासायनिक परिवर्तन द्वारा उनकी उत्पत्ति मानी जाती है और जब ये गुण कारण में व्यक्त रहकर कार्य में उत्पन्न होते हैं तो साधारण संयोग से उनकी उत्पत्ति मानी जाती है। कारण में सर्वथा अविद्यमान गुणों की भी उत्पत्ति हो सकती तो कारणव्यवस्था (विशिष्ट द्रव्य ही विशिष्ट द्रव्य का कारण हो सकता है) सब ही द्रव्य सब के कारण नहीं हो सकते हैं' ऐसा नियम नहीं हो सकता। तथा पांच इन्द्रियार्थ क्यों हैं? इसका भी कुछ हेतु न होने से इनकी उत्पत्ति आकस्मिक है ऐसा मानना पड़ता है पांच इन्द्रियों की उत्पत्ति को भी आकस्मिक कहना पड़ता है। अतएव अनुमान और आप्त वाक्य से सिद्ध होता है कि पांच ही भूत हैं।

गुणानामिन्द्रियार्थानां पंचत्वमेव दृश्यते ।
जन्यानामिन्द्रियाणां च पंचत्वं दृश्यते ध्रुवम् ॥१॥
तस्मादर्थाश्रयत्वेन तथैवेन्द्रियहेतुतः ।
भूतानि पञ्चमात्राणि ध्रुवाणीत्यनुमीयते ॥ २ ॥

भूतानां सादित्वमनादित्वमुभयत्वं वा ? सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा ?

मूलकारणान्येव भूतानीति भूतलक्षणावसरे प्रतिपादितम्। 'मूले मूलाभावादमूलं मूलमिति' नियमान्मूलकारणस्य कारणं किंचिन्न भवितुमर्हति । एकावयवानां परमाणूना-

---

संग्रह श्लोक की व्याख्या

इन्द्रियों के विषय पांच गुण पदार्थ हैं । उत्पत्तिशील इन्द्रियां भी पांच ही हैं इसलिये पांच इन्द्रियार्थ के आश्रय और पांच इन्द्रियों के उपादान पांच ही भूत हो सकते हैं, ऐसा अनुमान किया जाता है ।

भूत आदिमान् हैं या अनादि अथवा उभय रूप हैं ? आदिमान् हैं तो उनकी उत्पत्ति किसी क्रम से होती है या क्रम रहित ?

मूलकारण को ही भूत कहा जाता है यह तो भूत लक्षण के वर्णन के समय लिखा ही है । मूल कारणको और मूलकारण नहीं हो सकता है अतः मूलकारण को अमूल (मूल रहित) कहा जाता है । इस नियम के अनुसार मूल कारण का कुछ कारण

मुत्पत्तिविनाशयोरसम्भवत्वात्तेषां नित्यत्वमपि प्राक् प्रतिपादितमतो नित्यानां मूलकारणानामनादिनिधनतापि युक्तिसिद्धैव। श्रुतिरपि "विकारजननीं मायामष्टरूपामजां ध्रुवा" मित्यादिना तन्मात्रापरपर्यायाणां परमाणूनामनादिनिधनतामेवाह—अजां ध्रुवामिति शब्दाभ्याम्। अजां जन्मरहितामत आदिरहितां ध्रुवां शाश्वतीमतो विनाशरहितामित्यर्थः।

ये तु भूतभौतिकयोर्विवेकं विहाय भूत—महाभूत-

नहीं हो सकता। एकावयव परमाणु की उत्पत्ति और उसका विनाश असम्भव है। अतएव परमाणु नित्य है, यह भी पहले लिख चुके हैं। अतएव नित्य मूलकारण उत्पत्तिविनाशरहित है, यह भी युक्तिसिद्ध है। श्रुति में भी लिखा है कि "विकारों की जननी जो माया है वह अष्टरूप (प्रकृति, महान, अहंकार, शब्द तन्मात्र, स्पर्श-तन्मात्र, रूप-तन्मात्र, रस-तन्मात्र, और गन्ध-तन्मात्र)जन्मरहित औरध्रुव है।" यहां अज शब्द से जन्मरहित और ध्रुवशब्द से नित्य (विनाश रहित) समझा जाता है। अष्ट रूप प्रकृति में पंच तन्मात्र भी शामिल हैं, जो परमाणु से अभिन्न हैं।

भूत और भौतिक के भेद को भूल कर जो भूत और महाभूत

योरैक्यमेव मन्यन्ते तेषां मते परमाणुरूपाणि भूतानि अनादिनिधनानि स्थूलभूतानि च जन्यानीति सादीनि विनाशशीलानि चेति । एवमेकदैकत्र स्थातुमसमर्थयोः सादित्वानादित्वयोरारोपो भूतेषु सम्भवति भूतेति शब्दसाम्येऽपि वस्तुभेदात् । परमाणुस्वरूपेभ्यो भूतेभ्यो जन्यानामतः सादीनां महाभूतानामुत्पत्तिक्रमोऽग्रे व्यक्तीभविष्यतीति ॥

तथा च श्लोकः—

यस्योत्पत्तिविनाशौस्तस्तन्नादिकारणं भवेत् ।

को अभिन्न समझते हैं उनके मत में परमाणुस्वरूप भूतों को अनादिनिधन (उत्पत्तिविनाशरहित) और स्थूल (महा) भूतों को जिनकी उत्पत्ति है आदिमान् और विनाशशील माना जाता है। एक समय में एक स्थान में नहीं रहने वाले परस्परविरुद्ध अनादित्व और सादित्व एक ही भूत में इसलिये रह सकते हैं कि 'भूत' नाम के सादृश्य होने पर भी भूत और महाभूत भिन्न भिन्न द्रव्य हैं। अतः भूत में अनादित्व और महाभूत में सादित्व रहने में कुछ विरोध नहीं है। परमाणुस्वरूप भूतों से उत्पत्तिशील अतएव आदिमान् महाभूतों की उत्पत्ति का क्रम आगे (११ अध्याय में) व्यक्त होगा।

आदिकारणभूतानि नित्यानीत्यनुमीयते ॥ १ ॥

कः खलु गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः ?

अनादिनिधनानां नित्यानां परमाणुस्वरूपाणां भूतानामुत्पत्तिरेव न सम्भवतीति युक्तिश्रुतिभ्यां प्राक् प्रतिपादितम्। सांख्यशास्त्रे सत्त्वरजस्तमोभिधानास्त्रयो गुणा एव सर्वकार्यजनका अभिहिताः किन्तु तेषां स्वरूपगुणादिकं न श्रुत्या नापि युक्त्या प्रतिपादितम्। तेषां त्रयाणां द्रव्यत्वमभिहितं तथासत्येका प्रकृतिरिति व्याहन्यते। त्रयाणां मिलितानामेका संज्ञा चेत् पानकादिवत्प्रकृतिरपि त्रिद्रव्य-

---

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

जिसकी उत्पत्ति और विनाश है उस को आदिकारण नहीं मान सकते, इसलिये सब कार्य के आदिकारण भूत उत्पत्तिविनाशरहित नित्य हैं ऐसा अनुमान किया जाता है।

सत्वादि गुणों से या कारणान्तरसे भूतोंकी उत्पत्ति किस प्रकार से होती है ?

उत्पत्तिविनाश रहितपरमाणुस्वरूप नित्य भूतों की उत्पत्ति सम्भव नहीं हैं इसको श्रुति और युक्तिसे सिद्धकर चुके हैं। सांख्य शास्त्र में सत्त्व, रजः और तमः नामक तीन गुणों (त्रिगुणात्मिका प्रकृति) को सब कार्यों का अर्थात् उत्पत्तिशील पदार्थों का कारण बताया है। अथच, इनके स्वरूप गुण धर्मादिकों को श्रुति या युक्ति से सिद्ध नहीं किया है। सांख्यशास्त्र में सत्त्व, रजः और तमो-

जाता जन्या स्यात्। गुणानामपि नित्यत्वमनित्यत्वं वा न निश्चीयते। नित्यत्वे सति महाप्रलये साम्यमापन्नानां तेषां सर्गादौ वैषम्यं न सम्भवति। वैषम्यं हि कस्यचिद्वृद्धेः कस्यचिच्च ह्रासात् सम्भवति, उत्पत्तिविनाशरहितानां वृद्धिह्रासौ कथं भवितुमर्हत इति न ज्ञायते।

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।

गुणको द्रव्यपदार्थ स्वीकार करके इनकी साम्यावस्था को अर्थात् साम्यावस्था से उपलक्षित सत्त्वादि गुण (वास्तव में द्रव्य) त्रय को प्रकृति कहते हैं। सत्त्वादि तीन द्रव्यको जगतका कारण माना जावे तो प्रकृतिका एकत्व सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तीन द्रव्योंके मिलन से जो द्रव्य बनेगा वह एक मूलकारण नित्य द्रव्य नहीं हो सकता। वह तो अनेक द्रव्यों के मिलने से पानक (ठण्डाई) के समान जन्य द्रव्य हो जाता है। सत्त्वादि तीन द्रव्य नित्य हैं कि अनित्य हैं इसका भी निर्णय नहीं होता। अगर इनको नित्य माना जावे तो महाप्रलय में जब तीनों गुण साम्यावस्था को प्राप्त कर लेते हैं तो सृष्टि के प्रारम्भ में फिर वैषम्यावस्था को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वैषम्य को प्राप्त करने के लिए किसी गुण की वृद्धि और किसी गुण का ह्रास होना आवश्यक है किन्तु उत्पत्ति-विनाश रहित नित्य पदार्थ की वृद्धि या ह्रास किस प्रकार से हो सकता है यह समझ में नहीं आता।

अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥
सां० का० १२।

अस्याः खलु कारिकाया व्याख्यायां श्रीमता वाचस्पति-मिश्रेण लिखितम्—'अन्योन्याभिभववृत्तयः एषामन्यतमे-नार्थवशादुद्भूतेनान्यदभिभूयते। तथा अन्योन्यजननवृत्तयः— अन्यतमोऽन्यतमं जनयति।

एतेन त्रयाणां गुणानामेवानित्यत्वं स्पष्टमभिहितं

सांख्य कारिका की १२वीं कारिकामें सत्त्वादि के गुण-धर्म का इस प्रकार वर्णन है कि 'सत्त्व गुण सुखात्मक, रजोगुण दुःखात्मक तमोगुण विषादात्मक है। सत्त्व गुण प्रकाशक रजोगुण प्रवृत्ति (चेष्टा) जनक और तमोगुण नियामक (आवरणकारक) ये गुण परस्पर एक दूसरे का अभिभव और उत्पत्ति करते हैं और आपस में एक दूसरे के आश्रित हैं तथा परस्पर सम्मिलित होकर ही रहते है।

इस कारिका की व्याख्या करते हुये श्रीमान् वाचस्पति मिश्र ने लिखा है कि—'परस्पर अभिभव करने वाले'। इसका अभिप्राय यह है कि किसी कारण से जब एक गुण उद्भूत हो जाता है तो वह और दोनों का अभिभव कर देता है। "परस्पर के उत्पत्ति कारक" इसका अभिप्राय यह है कि एक गुण दूसरे गुण को उत्पन्न करता है।

दृश्यते। अनित्यानां नित्यं कारणं वाच्यं स्यादन्यथा मूलकारणं नैव ज्ञायते, नवा सत्त्वादयस्त्रय एव गुणाः किन्तु त्रिजातिका असंख्यव्यक्तिका एव। यदुक्तं भाष्यकारेण अत्र सांख्य दर्शन १-१२८ सूत्रे। सत्त्वादीनां कारणद्रव्याणां प्रत्येकमनेकव्यक्तिकत्वं सिद्धमिति। सत्त्वादीनामनेकव्यक्तिकत्वे वैशेषिकवर्णित-परमाणुतस्तेषां को भेद इत्याशंक्य शब्दादिरहितत्वं सत्त्वादीनां परमाणूनाञ्च शब्दादिगुणवत्त्वमिति भेदो

इस व्याख्या में तीनों गुणों को स्पष्टतया उत्पत्तिशील बताया गया है क्योंकि अनित्य की ही उत्पत्ति हो सकती है नित्य की नहीं। सत्त्वादि गुण अनित्य हैं तो इनका भी कारण कोई नित्य द्रव्य होना चाहिए अन्यथा मूल कारण का ज्ञान नहीं हो सकता। मूल कारण अनित्य नहीं हो सकता। सत्त्वादि तीन ही द्रव्य नहीं हैं किन्तु तीन जाति के असंख्य द्रव्य माने जाते हैं जैसा कि सांख्यभाष्यकार ने लिखा है। इस सूत्र द्वारा (१-१२८) सत्त्वादि प्रत्येक अनेक व्यक्ति सिद्ध होते हैं। "यदि सत्त्वादि तीन व्यक्ति नहीं अपितु अनन्त व्यक्ति हैं तो वैशेषिक दर्शन में वर्णित पर-माणु से इनका क्या भेद है" इस आशंका का उल्लेख करके भाष्यकार ने लिखा है कि "वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तानुसार पर-माणु में शब्द, स्पर्शादि गुण माने गये हैं। लेकिन सांख्य शास्त्र में

भाष्यकारेण प्रदर्शितः एवं कारणद्रव्यस्य शब्दस्पर्शादि-विषयराहित्यं भाष्यकारेणाभिहितम्, अथ च सत्त्वगुणः प्रकाशकः, तमोगुणश्चावरक इत्युक्तम्। रूपरहितं वस्तुप्र-काशकमावरकं वा कथं भवेदिति न ज्ञायते।

भाष्यकारेण (सां० द० १-६२) व्याख्यायां कारणद्रव्यस्य रूपादिराहित्येऽपि विशिष्टसंयोगाद्धरिद्रा-चूर्णसंयोगाद्रक्तताबद्रूपादीनामुत्पत्तिरभिहिता किन्तु हरि-द्राचूर्णयो रूपवतोरेव संयोगाद्वर्णान्तरस्योत्पत्तिरेवात्र न

वर्णित सत्त्वादि गुणों में शब्द-स्पर्शादि नहीं हैं, इतना ही भेद है।" इस प्रकार भाष्यकार ने सत्त्वादि कारणद्रव्यों में शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणों का अभाव लिखा है। अथच सत्त्व गुण को प्रकाशक और तमोगुण को आवरक कहा गया है, परन्तु नीरूप द्रव्य प्रकाशक या आवरक किस प्रकार हो सकता है यह समझ में नहीं आता।

भाष्यकार ने प्रथम अध्याय के (६१) सूत्र की व्याख्या में आशंका की है कि—'शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा इत्यादि के कारण अहंकार में शब्दादि गुण नहीं हैं। फिर तन्मात्र में शब्दादि गुण किस प्रकार से हो सकते हैं।' ऐसी आशंका के उत्तर में लिखा है कि जैसे हलदी और चूने के संयोग से

तु नीरूपयोः संयोगाद्रूपोत्पत्तिरिति न चिन्तितमथच ३ । २२ सूत्रभाष्ये भूतगतविशेषगुणानां स्वजातीय कारणगुणजन्यत्वं स्वीकृतमिति भाष्यकारादीनां बहु विरुद्धभाषणं दृष्ट्वा 'कालार्कभक्षितं सांख्यशास्त्रज्ञान-सुधाकरमिति भाष्यकारभाषणमेव सत्यं मन्यते । किञ्च षड् धातवः समुदिता लोक इति सञ्ज्ञां लभन्ते—तद्यथा पृथिव्यप्तेजो

रक्त रूप बन जाता है ऐसे ही कारण में शब्दादि गुण नहीं होने पर भी विशिष्ट संयोग द्वारा कार्य में गुणोत्पत्ति हो सकती है यहां भी विचारणीय है कि हल्दी और चूना दोनों रूपवान द्रव्य हैं। एक में पीत (पीला) और दूसरे में शुक्ल (सफेद) वर्ण है। दोनों के विशिष्ट मिलन से रक्त वर्ण की उत्पत्ति होती हैं । किन्तु रूपरहित द्रव्य के संयोग से रूप की उत्पत्ति नहीं हो सकती । रूप की उत्पत्ति और वर्ण का वर्णान्तर में परिवर्तन एक बात नहीं है इस पर भाष्यकार ने ध्यान नहीं दिया और केवल विचित्र संयोग से शब्दादि विशेष गुणकी उत्पत्तिका वर्णन कर दिया । अथच तृतीय अध्याय के २२ वें सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि भूत में विशेष गुण की उत्पत्ति स्वजातीय कारणगुण ही से हो सकती है, विचित्र संयोग से भूतों में विशेष गुण की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

भाष्यकारादि के इस प्रकार परस्पर विरुद्ध लेख को देख कर भाष्यकार की यह उक्ति कि—'सांख्यशास्त्रज्ञानरूपी चन्द्रमा को

वायुराकाशं ब्रह्मचाव्यक्तमित्येते षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति संज्ञां लभन्ते–(चरक शा० ५) इति चरकवचनादवगम्यते यत्पञ्चभूतान्यात्मा च जगत्कारणमिति प्रसिद्धः सिद्धान्त आसीत् ।

षड्धातुजस्तु पुरुषो रोगाः षड्धातुजास्तथा ।
राशिः षड्धातुजो ह्येष सांख्यैराद्यैः प्रकीर्तितः ॥ च०सू० २६

इति चरकवचनादनुमातुं शक्यते यत् षड्धातुवादिन एव आद्यसांख्यकारा आसन् ये खलु षड्धातु-

---

कालरूपी सूर्य ने ग्रस लिया है" सर्वथा ही सत्य मालूम पड़ती है। और भी सोचना चाहिए कि चरक शारीर स्थान के पांचवें अध्याय में लिखा है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और ब्रह्म ये ६ धातु मिलित होकर "लोक" इस नाम को प्राप्त करते हैं और ये ही ६ धातु मिलकर 'पुरुष' इस नाम को प्राप्त करते हैं। चरक के इस वाक्य से समझा जाता है कि पंच भूत और आत्मा जगत् के कारण हैं ऐसा प्रसिद्ध सिद्धान्त था। अथच वर्त्तमान प्रचलित किसीदर्शन में ऐसा सिद्धान्त प्रसिद्ध नहीं है। चरक के सूत्रस्थान में लिखा है कि-"पृथिवी आदि ६ धातुओं से पुरुष की उत्पत्ति होती है और इन्हीं से रोगों की भी उत्पत्ति होती है। ६ धातुओं की इस राशि का आद्य, (प्राचीन) सांख्यकारों ने वर्णन किया है।" चरक के इस वाक्य से अनुमान कर सकते हैं कि प्राचीन सांख्यकार

वादिनो न त एव पञ्चविंशतितत्त्ववादिन इति सम्भवति। तस्मात् यदि षड्धातुवादिन आद्यसांख्यास्तर्हि पञ्चविंशतितत्त्ववादिन आधुनिकाः सांख्या इत्यप्यनुमातुं शक्यत इति सुधीभिरेतदपि विवेचनीयमेव।

शब्दादिवत्सत्त्वादीनामपि गुणत्वे भूतेष्वपि तेषामवस्थानमनुमानान्निर्णेतुं शक्यते। तथात्वे आकाशे सत्त्वगुणस्य वायौ रजोगुणस्यतेजसि सत्त्वरजसोः जले सत्त्वतमसोः भूमौ च तमोगुणस्य प्राधान्यमित्यनुमातुं शक्यते। भगवता सुश्रुताचार्येणापि शारीरस्थानप्रथमाध्याये

षड् धातु से जगत् की उत्पत्ति मानते थे। षड् धातु से जगत् की उत्पत्ति मानने वाले २५ तत्वों से जगत् की उत्पत्ति नहीं मान सकते यदि प्राचीन सांख्यकार षड्धातुवादी थे तो २५ तत्त्व-वादी सांख्यकार आधुनिक है ऐसा भी अनुमान कर सकते हैं। इस पर विद्वान व्यक्तियों को विचार करना चाहिये।

यदि सत्त्वादि को द्रव्य न मानकर शब्दादिवत गुणपदार्थ माना जावे तो भूतों में भी उनका अस्तित्व अनुमान से जाना जा सकता है जैसा कि आकाश में सत्त्व गुण, वायु में रजोगुण, तेज में सत्त्व और रजो गुण, जल में सत्त्व और तमोगुण तथा पृथिवी में तमोगुण प्रधान रूप से रहते हैं, इस प्रकार अनुमान कर सकते हैं।

तथैव वर्णितमिति। परमाणुष्वप्रत्यक्षाणामपि स्थूलेष्व-वस्थितानां शब्दादीनां यथा बहिरिन्द्रियैरवबोधो जायते न तथा सत्त्वादीनामवबोधः कदाचिदिति दर्शनान्तरेषु तेषामा-लोचना न दृश्यते।

तथा च श्लोकः—

दृश्यानां कारणं भूतं प्रमाणैरवगम्यते।
सत्त्वादीनां तु हेतुत्वे प्रमाणं नैव दृश्यते॥इति

भूतानामितरव्यवकीर्णत्वं कथं सम्पद्यते ?

प्रागेव वर्णितं यद् भूतानि परमाणुस्वरूपाणि सर्गा-

भगवान सुश्रुत ने भी शारीर स्थान के प्रथमाध्याय में ऐसा ही वर्णन किया है।

परमाणु में शब्दादि गुण का प्रत्यक्ष नहीं होता किंतु परमाणु से जब स्थूल द्रव्य बन जाता है तो उसमें शब्दादि का प्रत्यक्ष होता है। किन्तु सत्त्वादि गुण का इस प्रकारप्रत्यक्ष कभी नहीं होता अतः और किसी दर्शन में इनकी आलोचना नहीं है।

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

'दृश्य पदार्थ के कारण भूत हैं' यह तो प्रमाण से जाना जाता है किंतु सत्त्वादि नामक द्रव्य के अस्तित्व के लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता।

एक भूत से दूसरे भूत को किस तरह से पृथक किया जाता है ?

दावीश्वरेच्छया द्व्यणुकादिक्रमेण महाभूतान्युत्पादयन्ति। तानि च महाभूतानि परस्परमनुप्रविष्टानि दृश्यं (स्थूल-चक्षुरादिना यन्त्रादिना वा प्रत्यक्षीकर्तुं योग्यं) पांचभौतिकं कार्यजातं जनयन्ति। एवं दृश्यानां सर्वेषामेव पांचभौतिकत्वमाप्तवचनादनुमानाच्च ज्ञायते। महाप्रलये पुनरीश्वरेच्छया सर्वाण्येव पांचभौतिकानि महाभूतत्वं महाभूतानि च परमाणुस्वरूपभूततामाप्नुवन्ति। एवमीश्वरेच्छया सर्गकाले भूतानां परस्परसंकीर्णत्वं महाप्रलयकाले च परस्परव्यवकीर्णत्वं जायते। मनुष्यशक्त्या त्रसरेणूनां महा-

---

पहिले ही लिखा जा चुका है कि भूत परमाणुस्वरूप हैं। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की इच्छा से यह भूत परस्पर मिलकर द्व्यणुकादि क्रम से महाभूतों को उत्पन्न करते हैं वे महाभूत भी परस्पर (एक दूसरे में) अनुप्रविष्ट होकर दृश्य अर्थात् स्थूल चक्षु आदि से अथवा सूक्ष्मदर्शक यन्त्रादि से प्रत्यक्ष करने के योग्य पांचभौतिक कार्यसमूह को उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार 'सब ही दृश्य पदार्थ पांचभौतिक हैं' यह तो आप्तवचन और अनुमान से सिद्ध हो चुका। महाप्रलय में ईश्वर-इच्छा से फिर पांचभौतिक द्रव्य पांच महाभूतों में और महाभूत परमाणु में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर की

भूतानां वा नाद्यापि व्यवकीर्णत्वं संजातमग्रे कस्यचित्पुरुषकारेण भविष्यति नवेतीश्वर एव जानाति न तु मादृश इति ।

तथा च श्लोकौ—

इदानीं मिलितानां तु विश्लेषणं भवेदपि ।
सर्गादौ मिलितानां तु विश्लेषको न दृश्यते ॥ १ ॥
संयोगो जायतेऽणूनां सर्गादौ हि यदिच्छया ।
महाप्रलयकालेऽपि विश्लेषणं तदिच्छया ॥ २ ॥

इच्छा से ही भूतों का परस्पर मिलन और महाप्रलयकाल में विश्लेषण होता है। मनुष्य शक्ति से अब तक त्रसरेणु या भूत का विश्लेषण (पृथक् करण) सम्भव नहीं हुआ, आगे किसी के पुरुषार्थ से इनका भी विश्लेषण होगा या नहीं यह ईश्वर ही जानता है। इसलिये हम कुछ नहीं कह सकते।

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

इस समय जिनका मिलन होता है उनका विश्लेषण भी हो सकता है किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में जिनका मिलन हुआ है उनके विश्लेषण करने में कोई पुरुष समर्थ नहीं देखा जाता। सृष्टि के प्रारम्भ में जिसकी इच्छा से इनका संयोग होता है महाप्रलय में उसकी ही इच्छा से इनका विभाग हो जाता है।

भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदृक्—

सर्वेषामेव कार्याणामुत्पत्तौ त्रिविधानि कारणानि व्याप्रियन्ते-

(१) समवायिकारणमुपादानापरपर्यायम्, एतदेव कारणं कर्तुर्व्यापारात्कार्यरूपमवलम्बतेऽस्यैव व्यक्तोऽव्यक्तो वा विशेषगुणः कर्तुर्व्यापारात्संयोगादिवैचित्र्याद्वा कार्येष्वाविर्भवति तिरोभवति वा। एतत्कारणं कार्येषु सर्वदाऽनुस्यूतं तिष्ठति। अस्य नाशात्परमपि कार्यद्रव्यस्य स्थितिर्न सम्भवति। कार्यद्रव्यमस्मिन्नेव लीनमवतिष्ठते। कारणव्यापारेणास्मादेव कार्यद्रव्यमाविर्भवती पुनरप्य-

---

सृष्टि की रचना में भूत किस प्रकार कारण है ?

सब ही कार्यों की उत्पत्ति में तीन प्रकार के कारण होते हैं।

(१) समवायी कारण, जिसको उपादान कारण भी कहते हैं। यह कारण ही कर्ता के व्यापार से कार्य रूप में परिणत हो जाता है, इसी के व्यक्त या अव्यक्त विशेष गुण (शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध) कर्ता के व्यापार से अथवा विचित्र संयोगादि से कार्य में अविर्भूत अथवा तिरोभूत (विलीन) हो जाते हैं। यह कारण कार्य में सर्वदा सम्बद्ध रहता है। इसके नाश के बाद कार्य द्रव्य का रहना असम्भव है। सत्कार्यवादी कहता है कि कार्य समवायी कारण में अव्यक्त रूप से लीन रहता है और कर्ता के व्यापार

स्मिन्नेव लीयत इति सत्कार्यवादिनां मतम् । वस्त्रकुण्डला-दीनां सूत्रसुवर्णादयः समवायिकारणान्युपादानकारण मित्युच्यते ।

(२) ये खलु विशिष्टसंयोगादयः समवायिकारणे-ऽवस्थिताः कार्यं जनयन्ति ते वै असमवायिकारण-संज्ञां लभन्ते । एतत्कारणस्य नाशादवस्थितेऽपि समवायि-कारणे कार्यद्रव्यस्य नाशोऽवश्यम्भावी यथा वस्त्रारम्भकाणां सूत्राणामवस्थानेऽपि सूत्राणां विचित्रसंयोगनाशाद्वस्त्रनाश इति । असमवायिकारणनाशमन्तरेण कार्यद्रव्यं न नश्य-

---

द्वारा इसी से अभिव्यक्त होता है । वस्त्र का सूत्र, कुण्डल का सुवर्ण समवायी कारण या उपादान कारण कहलाता है ।

(२) जो विशिष्ट संयोगादि समवायीकारण में रहकर कार्य के उत्पादक बनते हैं उनको 'असमवायी कारण' कहते हैं । इस कारण के नाश से समवायीकारण के रहते हुये भी कार्य का नाश हो जाता है । जैसे वस्त्र के उपादान सूत्रों के रहते हुये भी सूत्रों के विचित्रसंयोगरूप असमवायी कारण के नाश से वस्त्र का नाश हो जाता है । 'असमवायी कारण का नाश न होने से कार्य का नाश नहीं हो सकता' ऐसा नियम है । समवायी कारण का नाश होने पर अपने आश्रय के नाश से असमवायी

तीति नियमः । यत्र समवायिकारणस्य नाशः संजायते तत्राश्रयनाशादसमवायिकारणस्य नाशस्ततः कार्यनाश इति नियमः ।

(३) निमित्तं कारणम्—पूर्वोक्तकारणद्वयातिरिक्तं सर्वमेव कारणं निमित्तमभिधीयते । कर्त्ता कर्तुः साधनानि कार्यस्य प्रयोजनादिकं च सर्वं निमित्तकारणमुच्यते । निमित्त-कारणमुपादानकारणगुणेषु वैशिष्ट्यमापादयितुं शक्नोति किन्तु स्वकीयविशेषगुणं कार्येषु नोत्पादयितुं शक्नोति । अस्य नाशात् न कदाचित् कार्यं नश्यति । द्रव्यमेव सम-वायिकारणं, गुणः कर्म चासमवायिकारणं भवितुमर्हतीति

कारण का भी नाश हो जाता है, तब कार्य का नाश होता है, ऐसा नियम है ।

(३) निमित्त कारण—उपरिलिखित दो कारणों के अतिरिक्त सब ही कारण निमित्तकारण कहलाते हैं । कर्ता, उनके साधन अर्थात् जिससे कार्य को करता है, कार्य के प्रयोजन अर्थात् जिस के लिए कार्य को करता है यह सब ही निमित्तकारण हैं । निमित्त कारण उपादान कारण के विशेष गुण में वैशिष्ट्य तो कर सकता है किन्तु अपने विशेष गुण को कार्य में उत्पन्न नहीं कर सकता । निमित्तकारण के नाश से कार्य का नाश कभी नहीं होता । द्रव्य

नियमः।

तत्र भूतानां द्रव्यत्वादसमवायिकारणता न सम्भवति। 'विज्ञानं चाविज्ञानं चाभवत्', 'विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यती'त्यादिश्रुत्या चेतनवदचेतनस्यापि अनादित्वम्। तत् खल्वचेतनं नित्यानि भूतान्येव। तथाचोक्तं चरकेण–'षड्धातवः समुदिता लोकशब्दं लभन्त' इति। तद्यथा पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चाव्यक्तमिति।

ही समवायी कारण हो सकता है। गुण और कर्म ही असमवायी कारण हो सकते हैं।

भूत द्रव्य हैं अतः असमवायी कारण नहीं हो सकते। श्रुति में लिखा है कि "विज्ञान (चेतन) और अविज्ञान (जड़) दोनों थे।" और भी लिखा है "कि विज्ञान घन इन भूतों से समुत्थित होकर भूतों में ही विलीन होता है।" इन श्रुतियों से मालूम पड़ता है कि चेतन ब्रह्म (आत्मा अथवा ईश्वर) के समान अचेतन भी अनादि है। वह अचेतन ही नित्य भूत है। श्रीमान् चरक जी ने भी लिखा है कि पृथिवी, जल, तेज वायु आकाश और अव्यक्त ब्रह्म ये ६ धातु मिलकर जगत संज्ञा को प्राप्त करते हैं।

वा कार्यद्रव्यमिति विचार्यते। परिणामारम्भयोः को विशेष इति चेत्। उच्यते—अवस्थितस्यैव धर्मिणः पूर्वधर्मपरित्यागाद् धर्मान्तरग्रहणं परिणामः। परमाणुतो द्व्यणुकादिक्रमेण स्थूलोत्पत्तिः परमाणूनां कार्यारम्भः कथ्यते। सांख्यनये परिणामस्वभावा हि गुणा नापरिणम्य क्षणमप्यवतिष्ठन्त इति नियमात् सर्गकाले गुणानां विषमपरिणामात् कार्य-जातमुत्पद्यते। तेन महदादिक्रमेण प्रकृतेराविर्भूताः सर्व एव त्रिगुणात्मकाः कथ्यन्ते। तथा प्रकृतेरुत्पन्नौ महदहंकारौ

ही सिद्ध किया जा चुका है। अब विचार करना है कि भूत समूह कार्य रूप में परिणत होते हैं या कार्यों का आरम्भ (उत्पत्ति) करते हैं। परिणाम और आरम्भ में क्या भेद है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जहां धर्मी विद्यमान रह कर पूर्व धर्म को छोड़ धर्मान्तर को ग्रहण करता है, वहां 'परिणाम' माना जाता है और परमाणु से द्व्यणुक, द्व्यणुक से त्रसरेणु इत्यादि क्रम से स्थूल की उत्पत्ति को परमाणु का 'कार्यारम्भ' कहते हैं। सांख्यशास्त्र में माना जाता है कि "सत्त्वादिगुण नियतपरिणामस्वभाव वाले हैं, अपरिणामी रूप से एक क्षण भर भी नहीं रह सकते हैं। इस नियम के अनुसार सृष्टि काल में सत्त्वादि गुणों के विषम परि-णाम से सब कार्य उत्पन्न होते हैं अतः प्रकृति से महदादि क्रम [से] उत्पन्न होने वाले सब पदार्थ त्रिगुणात्मक माने जाते हैं।

प्राकृतौ उच्येते। अहंकारादुत्पन्नानीन्द्रियाणि तन्मात्राणि चाहंकारिकाणि कथ्यन्ते। तन्मात्रेभ्यो जातानि महाभूतानि तज्ज्ञानि च भौतिकानि उदीर्यन्ते। कारणादाविर्भवत् कार्यं जातमित्युच्यते कारणे च तिरोभवन्नष्टमिति व्यवह्रियते। आविर्भावतिरोभावौ च सत एव धर्मिणो धर्मान्तरग्रहणरूपपरिणाम एव। एवं परिणामभेदात्सदेव कार्यं कदाचिदाविर्भवति कदाचिच्चाविर्भूतं कार्यमपि परिणामवशात्तिरोभवतीति।

प्रकृति से उत्पन्न होने वाला महान् और उस से उत्पन्न होने वाले अहंकार को प्राकृत कहते हैं। अहंकार से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियां और पंचतन्मात्राओं को 'आहंकारिक' कहते हैं। तन्मात्रासे उत्पन्न हुओंको महाभूत (स्थूल भूत) और महाभूतों से उत्पन्न को भौतिक कहते हैं। कारण से आविर्भूत कार्य को जात (उत्पन्न) और कारण में तीरोभूत (विलीन) कार्य को नष्ट शब्द से व्यवहार किया जाता है। आविर्भाव (उत्पत्ति) और तिरोभाव (लय) दोनों ही में धर्मी स्थिर रहता है केवल उसका धर्मान्तरग्रहण रूप परिणाम होता है। इस प्रकार परिणाम के भेद से कारण में—अव्यक्त रूप से विद्यमान कार्य कारण से आविर्भूत होता है और कभी परिणाम भेद

न्यायवैशेषिकनये पूर्वोक्तत्रिविधकारणानि असदेव कार्यमारभन्ते । स्थूलशरीरारम्भका अपि शुक्रशोणितघटकाः परमाणवः प्राग् वियुज्यन्ते ततो द्व्यणुकादिक्रमेण शरीरमारभन्ते इति भाष्यकारमतमग्रे उदाहरिष्यामः। अपक्वश्यामघटस्य पाकाद्रक्तवर्णता प्रत्यक्षसिद्धा । तत्रापि वह्नियोगाद् घटारम्भकाः परमाणवो वियुज्यन्ते ततः परमाणुगतं श्यामरूपं विनश्यति, ततो रक्तरूपमुत्पद्यते, पुना

से विद्यमान कार्य अपने कारण में तिरोभूत (लीन) हो जाता है।

न्याय और वैशेषिक शास्त्र में लिखा है कि पूर्वोक्त तीन कारण (समवायी-असमवायी और निमित्त कारण) असत् कार्य को ही उत्पन्न करते हैं। "स्थूलशरीर के आरम्भक शुक्र शोणितके घटक (उत्पादक) परमाणु पहिले वियुक्त (पृथक) होकर फिर द्व्यणुकादि क्रम से शरीर को उत्पन्न करते हैं।" भाष्यकार के इस मत का आगे उल्लेख किया जावेगा। मिट्टी के अपक्व (कच्चे) श्यामवर्ण घट को पकाने से लाल वर्ण हो जाता है, यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। यहाँ भी वैशेषिक मत यह है कि—'अग्नि संयोग से घट के आरम्भक परमाणु-समूह पृथक हो जाते हैं फिर परमाणुस्थित श्यामरूप नष्ट होता है अनन्तर परमाणुओं में रक्तरूप उत्पन्न होता है फिर रक्तवर्ण परमाणु से द्व्यणुकादि क्रम से पक्व घट उत्पन्न होता है।" इस प्रकार से न्याय और वैशेषिक मत

रक्तेभ्यः परमाणुभ्यो द्व्यणुकादिक्रमेण पक्वघट उत्पद्यत इति वैशेषिकमतम् । वयं तु मन्यामहे न खलु शुक्रशोणिता-रम्भकाः परमाणवो वियुक्ता भवितुमर्हन्ति यतो वियुक्ताः पंच-विधाः परमाणवः पुनः शरीरमेवारभन्ते न मुद्गमाषादिकमिति नियमे कारणं नास्ति । अपरं च शुक्रशोणितारम्भकेषु मुद्ग-माषारम्भकेषु च परमाणुषु भेदः कश्चित् प्रतिपादयितुं न शक्यते । तथापि गर्भगताभ्यां शुक्रशोणिताभ्यामेव शरीरो-त्पत्तिर्न मुद्गमाषाभ्यामिति नियमेऽपि कारणं नास्तीति । यत्तु

में आरम्भवाद माना जाता है । किन्तु हम समझते हैं कि शुक्र शोणित के आरम्भक परमाणु वियुक्त होकर द्व्यणुकादि क्रम से शरीर को उत्पन्न नहीं करते क्योंकि शुक्र शोणित के घटक पांच प्रकार के परमाणु पृथक हो जावें तो फिर उससे शरीर की हीं उत्पत्ति होगी और मूंग, उर्द आदि की उत्पत्ति नहीं होगी ऐसे नियम में कोई हेतु नहीं मिलता । और भी सोचना चाहिये कि शुक्र शोणित के आरम्भक और मूँग, उर्द आदि के आरम्भक परमाणुओं के भेद में कोई प्रमाण नहीं है । तब गर्भाशय में शुक्र शोणित ही जाकर गर्भ को उत्पन्न कर सकता है, मूंग उर्द आदि नहीं, ऐसे नियम में भी कोई कारण नहीं मिलता । पृथिवीपर-माणु में श्याम, रक्त आदि गुणों की कल्पना भी अयुक्त है क्योंकि प्रत्येक परमाणु में एक ही विशेष गुण रह सकता है न कि अनेक

पृथिवीपरमाणौ श्यामरक्तादिरूपकल्पनं, तदप्ययुक्तम्। सर्वेषामेव परमाणूनामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वस्य प्राक् प्रतिपादितत्वात्। निपुणं विचार्यावगम्यते यत् स्थूलघटारम्भकस्थूलमृत्तिकायां तेजःसंसर्गादेव श्यामरूपमासीत् पुनरधिकतेजःसंसर्गाद्रक्तरूपं जातमिति तथ्यम्। सर्गादौ द्व्यणुकादिक्रमेण महाभूतारम्भो महाप्रलये पुनः परमाणूनां विश्लेष इति प्रागुक्तं यदि कश्चित् वह्निसंयोगादिना परमाणूनां पृथक्करणे समर्थो विद्यते नाम स एकभूतात् स्थूलं किंचिदुत्पाद्यास्माकं भ्रमं निराकरोतु।

गुण, यह पहिले ही युक्तितर्कादि से सिद्ध किया है। इसके अनुसार पृथिवीमें केवल गन्ध ही है। सूक्ष्मरूप से विचार करने से मालूम पड़ता है कि स्थूल घट के आरम्भक स्थूल मृत्तिका में तेज के संयोग से ही श्याम वर्ण था और घट को पकाने से अधिक तेज के संयोग से रक्त रूप बन जाता है, इतना ही सत्य है।

सृष्टि के प्रारम्भ में द्व्यणुकादि क्रम से महाभूतों की उत्पत्ति होती है और महा प्रलय में परमाणु फिर अलग रह जाते हैं यह पहिले लिखा है। अग्नि संयोगादि द्वारा यदि कोई भी परमाणुओं को पृथक कर सकता है तो वह एक भूत से कुछ स्थूल द्रव्य को उत्पन्न करके हमारे भ्रम को दूर कर देवे। कज्जली के

कज्जलीजनकयोः पारदगन्धकयोर्यदि मर्दनादेव पारद-गन्धकजनकोनां परमाणूनां विभागस्तर्हि कज्जल्यां पारदगुणो गन्धकगुणश्च कथं समुपलभ्यते इत्यपि वाच्यम्। निपुणं विभाव्यमाने परिणामारम्भयोर्न कश्चिद् भेद उपलभ्यते। सांख्येऽपि 'अविशेषाद्विशेषारम्भ' इति सूत्रकारेणा-रम्भशब्दप्रयोगः कृतः। कार्यारम्भकाणि कारणानि कार्येष्व-नुस्यूतानि स्वधर्मं सर्वथा न त्यजन्ति धर्मान्तरं च किंचि-दुपाददत इति परीक्षादिसिद्धमेव। सर्गकालेऽपि परमाणुपर्यन्त-

---

उपादान पारद और गन्धक को मर्दन करने से ही यदि पारद और गन्धक के उत्पादक परमाणु पृथक २ हो जाते हैं तो कज्जली में पारद और गन्धक के गुण क्यों मालूम पड़ते हैं ? इसका भी उत्तर देना चाहिये।

सूक्ष्म विचार करने से परिणाम और आरम्भ में कुछ भेद प्रतीत नहीं होता। सांख्य सूत्र में भी अविशेष से विशेषका आरम्भ होता है।' ऐसा आरम्भ शब्द का प्रयोग सूत्रकार ने ही किया है। कार्यों के आरम्भक कारण कार्य के साथ सम्बद्ध रह कर अपने गुण को सम्पूर्ण रूप से न छोड़ कर कुछ नये गुणों को ग्रहण कर लेते हैं, यह परीक्षादि से सिद्ध ही है। सृष्टि काल में भी स्थूल कार्य के परमाणुओं के पृथक हो जाने का कुछ प्रमाण नहीं मिलता। इससे मालूम होता है कि आरम्भ और परिणाम में

वचनैरुद्घोषितं दृश्यानां सर्वेषामेव पांचभौतिकत्वमायुर्वेदाचार्यैः स्वस्वतन्त्रेषु, तथापि युक्त्या विरुद्धमतखण्डनपूर्वकं दृश्यानां पांचभौतिकमतस्य यौक्तिकता निर्णीयते। विरोधिषु न्यायवैशेषिकाचार्याः प्रधानास्तस्मात्तेषां वाक्यान्युद्धृत्यायौक्तिकत्वं तेषां प्रतिपादयिष्यामः।

तत्र किञ्चिदपि पाञ्चभौतिकं न भवतीति, शरीरपरीक्षायां भगवान् न्यायभाष्यकारः—शरीरं किं घ्राणादिवदेकप्रकृतिकमुत नानाप्रकृतिकमिति। कुतः संशयः? विप्रतिपत्तेः

होने से इसमें पृथिवी का लक्षण स्पष्ट है ऐसेही जलादि में भी समझना चाहिये।' इस प्रकार अनेक स्पष्ट वाक्यों से आयुर्वेदाचार्यों ने अपने २ ग्रन्थों में दृश्य पृथिवी जलादि को पांचभौतिक करके उद्घोषित किया है फिर भी युक्ति से विरुद्ध मतोंको खण्डन करके इनको पांचभौतिक सिद्ध किया जाता है।

आयुर्वेद-विरोधी मत में न्याय और वैशेषिक मत प्रधान हैं इसलियेन्यायवैशेषिकाचार्यों के वाक्यों का उल्लेख करके उनके किये हुये आक्षेपों की अयुक्तता का प्रतिपादन करेंगे। शरीर की परीक्षा करते हुए भगवान् न्याय भाष्यकार ने प्रतिपादित किया है कि 'कुछ भी पांचभौतिक नहीं हो सकता अर्थात् पांचों भूत मिलकर किसी के उपादान नहीं हो सकते' भाष्यकार लिखते हैं घ्राण

संशयः। पृथिव्यादीनि भूतानि संख्याविकल्पेन शरीरप्रकृति-रिति प्रतिजानत इति । किं तत्र तत्त्वम् ।

सूत्र—पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ३ । १ । २७

भाष्यम्—तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम् । कस्मात् ? गुणान्तरोपलब्धेः । गन्धवती पृथिवी, गन्धवच्च शरीरं, अबादीना-

---

[इन्द्रिय आदि के समान शरीर का एक ही भूत उपादान है या अनेक भूत ? (प्रश्न) ऐसा सन्देह क्यों होता है ? (उत्तर) विप्रतिपत्ति अर्थात् विरुद्ध मतों से संशय होता है । तात्पर्य यह है कि कोई तो केवल पृथिवी को शरीर का उपादान मानता है, कोई पृथिवी और जल को, कोई पृथिवी जल और तेज को, कोई पृथिवी जल तेज और वायु को, तथा कोई पृथिवी जल तेज वायु और आकाश को शरीर का उपादान मानते हैं अतः संशय होता है ।

प्रश्न—इसमें तत्त्व अर्थात् ठीक सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—(सूत्र) शरीर पार्थिव है अर्थात् शरीर का उपादान पृथिवी है क्योंकि शरीर में ऐसा गुण (गन्ध) है जो और किसी भूत में नहीं है केवल पृथिवी में ही है ।

भाष्य—मनुष्य का शरीर पार्थिव है ।

प्रश्न—क्यों

उत्तर—और किसी भूत में न रहने वाले गन्ध गुण की उपलब्धि से । पृथिवी में गन्ध है, शरीर में भी गन्ध है ।

मगन्धत्वात् तत्प्रकृत्यगन्धं स्यात्। न त्विदमबादिभिरसंपृक्तया पृथिव्यारब्धं चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयभावेन कल्पत, इत्यतः पञ्चानां भूतानां संयोगे सति शरीरं भवति। भूतसंयोगो हि मिथः पञ्चानां न निषिद्ध इति। आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि तेष्वपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्र इति। स्थाल्यादिद्रव्यनिष्पत्तावपि निःसंशयं नाबादिसंयोगमन्तरेण निष्पत्तिरिति।

सूत्राणि—पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः। ३-१-

जलादि में गन्ध नहीं है इसलिए, जलादि से आरब्ध (उत्पन्न) शरीर अगन्ध (गन्ध रहित) होता। जलादि के सम्बन्ध को छोड़कर केवल पृथिवी से उत्पन्न शरीर चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थ (शब्दादि इन्द्रियग्राह्य विषय) के आश्रय रूप में परिणत नहीं हो सकता; इसलिए माना जाता है कि पांचों भूतों के संयोग से शरीर उत्पन्न होता है। पांचों भूतोंके परस्पर संयोग का निषेध नहीं किया जाता है। भिन्न भिन्न लोक में जलीय (वरुण लोक में) तैजस (सूर्य लोक में) और वायवीय (वायुलोक में) शरीर हैं उनमें भी पुरुषार्थ के अधीन अर्थात् शरीर को भोगायातन बनाने के लिए अन्यान्य भूतों का संयोग है। जलादि का संयोग जिसमें नहीं है ऐसी मृत्तिका से स्थाली (हंडी) आदि द्रव्य की उत्पत्ति भी नहीं होती है (भोगायतन शरीर की उत्पत्ति तो सर्वथा ही असम्भव है)

२८ । निःश्वासोच्छ्वासोपलब्धेश्चातुर्भौतिकम् ३-१-२९

गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पांचभौतिकम् ३-१-३०

भाष्यम्—एतेसन्दिग्धा हेतव इत्युपेक्षितवान् सूत्रकारः। कथं सन्दिग्धाः—सति च प्रकृतिभावे भूतानां धर्मोपलब्धि-रसति च संयोगाप्रतिषेधात् सन्निहितानामिति। यथास्थाल्या

सूत्र—"पृथिवी जल और तेज के विशेष गुण शरीर में हैं इसलिए ये तीनों भूत शरीरके उपादान हैं।" "शरीरमें श्वास और प्रश्वास की भी उपलब्धि होती है जिससे चार भूतों को उपादान मानना चाहिये।" "गन्ध, क्लेद, पाक, व्यूह और अवकाश ये पांच गुण शरीर में हैं इसलिए शरीर पांचभौतिक है।"

भाष्य—ये सब ही हेतु सन्दिग्ध हैं इसलिए सूत्रकार ने इनकी उपेक्षा की है।

प्रश्न—सब ही हेतु सन्दिग्ध क्यों हैं?

उत्तर—पांचों भूत शरीर का उपादान होने से शरीर में उनके गुणों की उपलब्धि हो सकती है और एक भूत शरीर का उपादान हो तथा और चारों भूतों का संयोग उसके साथ हो तो भी पांचों भूतों के गुणों की उपलब्धि हो सकती है जैसे कि स्थाली का उपादान पृथिवी मात्र है किन्तु उसके साथ जल, तेज, वायु और आकाश का संयोग रहने से जलादि के गुण भी स्थाली में पाये जाते हैं। यदि पृथिवी के अतिरिक्त और भी कोई भूत

मुदकतेजोवाय्वाकाशानामिति । तदिदमनेकभूतप्रकृति शरीरमगन्धमरसमरूपमस्पर्शं च प्रकृत्यनुविधानात् स्यात् । न त्विदमित्थम्भूतं तस्मात् पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ।

सूत्र—श्रुति प्रामाण्याच्च ।

भाष्यम्—"सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतात्" इत्यादिमन्त्रे 'पृथिवीं ते शरीरमि'ति श्रूयते तदिदं प्रकृतौ विकारस्य प्रलयाभिधानमिति । "सूर्यं ते चक्षुः स्पृणोमि" इत्यत्र मन्त्रान्तरे 'पृथिवीं ते शरीरम्' इति श्रूयते । सेयं कारणाद्विकारस्य

शरीर का उपादान होता तो अनेक भूतों से आरब्ध शरीर प्रकृति के अनुविधान के अनुसार अगन्ध, अरस, अरूप और अस्पर्श होता, किन्तु शरीर ऐसा नहीं है इसलिए शरीर में गन्ध के अनुभव को देखकर अनुमान किया जाता है कि पृथिवी ही शरीर का उपादान कारण है और चार भूत इसके निमित्त कारण हैं।

सूत्र—श्रुति प्रमाण से भी सिद्ध होता है कि शरीर पार्थिव है।

भाष्य—अग्निहोत्री के मृत शरीर को दाह करने के समय मन्त्र में बोला जाता है कि तेरे चक्षुः सूर्य में चले जावें—इत्यादि मन्त्रमें शरीर को पृथिवी में चले जानेके लिए कहा जाता है। यहां प्रकृति अर्थात् उपादान कारण में विकारके लयका वर्णन है। दूसरे मन्त्र में लिखा है कि तेरे चक्षु को सूर्य में तृप्त करता हूँ। इसी मन्त्र में लिखा है कि शरीर को पृथिवी में तृप्त करता हूँ। यहां भी

स्मृतिरभिधीयत इति। स्थाल्यादिषु च तुल्यजातीयानामेककार्य दर्शनात्। भिन्नजातीयानामेककार्यारम्भानुपपत्तिः। इति।

स्थूलानां भूतत्वमङ्गीकृत्य भाष्यकारेण शरीरस्य पांचभौतिकत्वं निराकृतमतः स्थूलानामेव भूतत्वमङ्गीकृत्य पांचभौतिकत्वं प्रमाणीकृत्य पश्चात् स्थूलभूतानां पांचभौतिकत्वं प्रतिपादयिष्यामः।

उल्लिखित सूत्रभाष्ययोरयमभिप्रायः—मनुष्यशरीरे गन्धानुभवाद् गन्धवती पृथिवी एव शरीरस्योपादान-

---

कारण से विकार को तृप्त करना अर्थात उपादान कारण से कार्य की उत्पत्ति से अभिप्राय है। स्थाली आदि की उत्पत्ति में देखा जाता है कि समान जातीय द्रव्य से ही किसी कार्य की उत्पत्ति होती है इसलिए भिन्न जातीय अनेक द्रव्यों से शरीर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यहां भाष्यकार ने स्थूल पृथिवी जल आदि को भूत मानकर शरीर के पांचभौतिकत्व का खण्डन किया है, इसलिए हम स्थूल पृथिवी आदि को भूत मान कर शरीर का पांचभौतिकत्व सिद्ध करेंगे, फिर स्थूल पृथिवी आदि का पांच भौतिकत्व सिद्ध करेंगे।

उपरिलिखित सूत्र और भाष्य का अभिप्राय यह है कि मनुष्य शरीर में गन्ध का अनुभव होता है, इसलिए गन्धवती पृथिवी को

सिति निर्णीयते । नैतावता जलादिसंसर्गरहितया केवलपृथिव्या शरीरस्योत्पत्तिरभिधीयते । दूरमास्तां भोगायतनं शरीरं मृद्घटादिकमपि केवलमृत्तिकया न निर्मातुं शक्यते । शरीरे तु पञ्चभूतानां गुणधर्मादिकमपि प्रत्यक्षेण गृह्यते । तथापि पञ्चानामेवोपादानत्वं न सिध्यति, सिध्यति च पृथिव्येवोपादानमन्यानि च पृथिवीसंयुक्तानि निमित्तकारणानीति । सर्वेषामुपादानत्वे कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इति नियमाच्छरीरमिदमगन्धमरसमरूपमस्पर्शं च स्यात् । कथमिति चेत् ।

शरीर का उपादान निर्णय किया जाता है । इससे जलादि के संसर्ग रहित केवल मृत्तिका से शरीर की उत्पत्ति होती है ऐसा अभिप्राय नहीं समझना चाहिए । भोगायतन शरीर तो दूर रहा मिट्टी का एक घट भी ऐसी मृत्तिका से नहीं बन सकता जिसमें जलादि का संसर्ग न हो । शरीर में पांचों भूतों के गुणधर्मादि भी प्रत्यक्ष सिद्ध हैं तथापि पांचों भूत शरीर के उपादान कारण हैं ऐसा सिद्ध नहीं होता, किंतु केवल पृथिवी शरीर का उपादान कारण हैं और भूत निमित्त कारण हैं ऐसा सिद्ध होता है । पांचों भूत उपादान कारण होते तो कारण के गुण कार्य के गुण के उत्पादक हैं इस नियम के अनुसार यह शरीर अगन्ध अरस

उच्यते—पृथिव्यां गन्धरसरूपस्पर्शाः, जले रसरूपस्पर्शाः, तेजसि रूपस्पर्शौ, वायौ स्पर्श, आकाशे च शब्द इति गुणविभागस्तत्र यदि पृथिवीजलपरमाणुभ्यामेको द्व्यणुक आरभ्यते, तस्मिन् द्व्यणुके पृथिवीजलयोरुभयोर्गुणाः रसरूपस्पर्शा विशिष्टा भवितुमर्हन्ति न तु तत्रैकपृथिवीपरमाणुना विशिष्टो गन्ध आरभ्यते। एवं यदि द्व्यणुके विशिष्टगन्धोत्पत्तिर्न स्यात् त्रसरेणौ ततः स्थूले वा गन्धोत्पत्तिर्न

अरूप और अस्पर्श होता।

प्रश्न—ऐसा क्यों हो जाता ?

उत्तर–पृथिवी में गन्ध,रस, रूप और स्पर्श ये चार गुण हैं, जल में रस रूप और स्पर्श, तेजमें रूप और स्पर्श तथा वायु में केवल स्पर्श और आकाश में केवल शब्द है, ऐसा भूतों का गुण विभाग न्याय मतमें है। इसमें यदि एक पृथिवी-परमाणु और एक जल परमाणु से एक द्व्यणुककी उत्पत्ति होती है तो पृथिवी और जल दोनोंके गुण रस, रूप, और स्पर्श तो उस द्व्यणुक में कुछ विशिष्ट होकर उत्पन्न होंगे किंतु केवल एक पृथिवी परमाणु की गन्धसे द्व्यणुकमें विशिष्ट गन्ध उत्पन्न नहीं हो सकती है। इस प्रकार यदि द्व्यणुक में विशिष्ट गन्ध की उत्पत्ति न हो तो ऐसे द्व्यणुक से उत्पन्न त्रसरेणु में भी विशिष्ट गन्ध नहीं होगी तथा उस त्रसरेणु से बने हुए स्थूल शरीर में भी गन्ध की उत्पत्ति नहीं

सम्भवति। एवं जलानलपरमाणुभ्यामारब्धे द्व्यणुकादौ गन्धरसयोरभावस्तेजोवायुपरमाणुभ्यामारब्धे गन्धरसरूपाणामभावो, वाय्वाकाशाभ्यामारब्धे गन्धरसरूपस्पर्शाणामभावः स्यात्। एवं पृथिवीतेजोभ्यामारब्धे गन्धरसयोरभावः, पृथिवीवायुभ्यामारब्धे गन्धरसरूपाणामभावः, पृथिव्याकाशाभ्यामारब्धे गन्धरसरूपरसस्पर्शाणामभावः स्यात्। (न्यायनये विभुत्वादनारम्भकत्वाच्चाकाशस्येन्येषां सर्वेषामेकरूपर्शवत्त्वादस्पर्शमिति भाष्यपाठस्य तथा वार्तिकका-

---

होगी। इस प्रकार एक जल परमाणु और एक तेज परमाणु से उत्पन्न द्व्यणुकमें जल और तेज दोनों के गुण रूप और स्पर्श तो विशिष्ट होकर उत्पन्न होगें किन्तु केवल एक जलपरमाणु से उस द्व्यणुक में विशिष्ट गन्ध रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती अतएव जलपरमाणु और तेजपरमाणु से बने हुये द्व्यणुक में और उससे स्थूल त्रसरेणु आदिमें गन्ध और रस नहीं होगा। तेज और वायु परमाणुसे बने हुए द्व्यणुक और उससे स्थूल त्रसरेणुमें गन्ध रस और रूप नहीं होगें। वायु और आकाशसे उत्पन्न द्रव्यमें गन्ध रस, रूप और स्पर्श नहीं होंगे। (न्याय मत में आकाश विभु है और किसी कार्य का आरम्भक नहीं है और सब ही भूतों के परमाणुओं में स्पर्श है फिर भी भाष्य के अस्पर्श पाठ और वार्तिक

रेणोक्तस्य वाय्वाकाशाभ्यामारब्धेस्पर्शाभावोदाहरणस्य रहस्यं नावबुध्यते) अथ च शरीरे सर्वेषामेवैतेषां गुणानामुपलब्धिः प्रत्यक्षासिद्धा तस्मान्न पंचैवोपादानानि किंतु पृथिव्येवोपादानं इतराणि च निमित्तकारणमिति। श्रुतिप्रामाण्याच्च शरीरस्य पार्थिवत्वमवगम्यते तथाच 'सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतादि त्यादि मन्त्रे पृथिव्यां शरीरस्य लयः कथितः। कार्यं स्वकारणे लीयत इति न्यायात् पृथिव्येव शरीरोपादानमिति ।

के वायु आकाश से आरब्ध में स्पर्शाभाव के दृष्टान्त का रहस्य समझमें नहीं आता)इस प्रकार एक पृथिवी परमणु और एक तेज परमाणु से उत्पन्न द्व्यणुक में गन्ध और रस नहीं बनेगा, एक पृथिवी परमाणु और एक वायु परमाणु से उत्पन्न द्व्यणुक में गन्ध, रस और रूप नहीं होगा। पृथिवी और आकाश से उत्पन्न द्रव्य में गन्ध, रस, रूप और स्पर्श नहीं बनेगा किन्तु शरीर में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श यह सब ही गुण प्रत्यक्ष सिद्ध हैं, अतः पांचों ही भूत शरीर के उपादान नहीं हैं किन्तु केवल पृथिवी ही शरीर का उपादान है शेष चार भूत निमित्त कारण हैं। श्रुति से भी मालूम पड़ता है कि शरीर का उपादान केवल पृथिवी है जैसा कि 'तेरे चक्षु सूर्य में जावें' इत्यादि मन्त्र से पृथिवी में शरीर का लय बताया गया है। कार्य अपने कारण में लीन होता है इस नियम के अनुसार पृथिवी ही शरीरका कारण सिद्ध होती है। दूसरे मन्त्रमें

'सूर्यं ते चक्षुः स्पृणोमी'त्यादि मन्त्रान्तरे, पृथिवीं ते शरीर मित्यत्रापि कारणरूपायाः पृथिव्याः विकाररूपस्य शरीरस्योत्पत्तिरभिहिता तस्मात् स्थाल्यादिनिर्माणे तुल्यजातीयानामेवोपादानतादर्शनात् पृथिव्येव शरीरस्योपादानमिति। पूर्वोद्दिष्टया युक्त्या प्रतीयते—यदि दृश्यं पृथिवीजलादिकमनेकभूतोपादानं स्यान्न तत्र गन्धादिकमुपलभ्येत। दृश्यानि तु भूतानि स्वस्वैकानेकगुणवन्त्येवोपलभ्यन्ते तस्मान्नानेकोपादानानि तानि किंतु एकजातीयपरमाणुजानि तान्येव भूतानीति।

न्यायमतोक्तानामाक्षेपाणां परिहारः—

भी कारण रूप पृथिवी से विकार रूप शरीर की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। स्थाली आदि के निर्माणमें भी एक जतीय द्रव्य ही उपादान कारण देखे गये हैं अतः पृथिवी ही शरीर का उपादान कारण है और सब निमित्त कारण हैं। पूर्वोक्त युक्ति से यह भी सिद्ध होता है कि यदि दृश्य पृथिवी आदि अनेक भूतों से उत्पन्न होते तो इनमें भी गन्ध रस, रूप और स्पर्श नहीं बन सकते किन्तु दृश्य पृथिवी आदि में भी गन्धादि गुण प्रत्यक्ष सिद्ध हैं जिससे सिद्ध होता है कि ये भी पांच भूतों से उत्पन्न नहीं है किन्तु एक एक जातीय भूत (परमाणु) से उत्पन्न होते हैं।

एवमाक्षेपो निराक्रियते—गर्भाशयगतयोः शुक्रार्तवयो-र्विशिष्टसंयोगाद् गर्भोत्पत्तिरिति प्रमाणसिद्धमेव । तत्र सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयम्, इतरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण परस्परोपकारात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्चे'ति सुश्रुतवचनाच्छुक्रार्तवयोः पंचभूतगुणदर्शनाच्च तयोरपि पांच-भौतिकत्वं सिद्धम्। गर्भाशयगतयोः शुक्रार्तवयोः परमाणवो-नैव वियुज्यन्ते न वा पुनर्द्व्यणुकादिक्रमेण शरीरमारभन्ते

न्यायमतोक्त आक्षेपों का परिहार—

अब न्यायमतोक्त आक्षेपों का परिहार किया जाता है। गर्भाशयगत शुक्र और शोणित (स्त्री बीज) के विशिष्ट संयोग से गर्भोत्पत्ति होती है, यह प्रमाण सिद्ध है। सुश्रुत में लिखा है कि "शुक्र सौम्य है और आर्तव आग्नेय है और सब भूत भी शुक्र और आर्तव में सूक्ष्म रूप से विशेषसम्बन्ध द्वारा मिलित हैं क्योंकि पांचों भूत परस्पर के (एक दूसरे के) उपकारक, परस्पर के अनुग्राहक (उसके कार्य करने में सहायक) और परस्पर (एक में दूसरे) अनुप्रविष्ट हैं। इस लिये सब ही द्रव्यों के समान शुक्र और शोणित भी पांचभौतिक हैं।" सुश्रुत के इस वाक्य से तथा शुक्र शोणित में पांचों भूतों के गुणों (शब्द, स्पर्शादि) को देखने से शुक्र और शोणित भी पांचभौतिक हैं, यह भी सिद्ध है। गर्भाशय गत शुक्र और शोणित के घटक परमाणुओं का विश्लेषण नहीं

तथासति केवलाच्छुक्रात् केवलादार्तवान्मुद्गान्माषाद्वा गर्भाशयप्रविष्टाद् गर्भोत्पत्तिः सम्भवेच्छुक्रार्तवमुद्गमाषारम्भकपरमाणूनामभेदात्। यस्तु शरीरोपादानभूतया पृथिव्या सह जलादीनां संसर्गोऽभिहितस्तत्र पृच्छ्यते—किं परमाणुस्वरूपया पृथिव्या सह परमाणुस्वरूपाणां जलादीनां संसर्ग उत स्थूलया पृथिव्या सह स्थूलजलादीनां संसर्ग इति। आद्ये भाष्यकारोक्तो दोषः संसर्गेऽपि समानः। द्वाभ्यामेव परमाणुभ्यां द्व्यणुकोत्पत्तिः सम्भवति नाधिकैः

होता, नहीं फिर द्व्यणुकादि क्रम से शरीर की उत्पत्ति होती है। ऐसा होता तो केवल शुक्र या केवल शोणित किम्वा मूंग, उर्द आदि भी गर्भाशय में जाकर गर्भ को उत्पन्न कर सकते। क्योंकि शुक्र, आर्तव अथवा मूंग उर्द आदि के आरम्भक परमाणु सब ही एक प्रकार के हैं। भाष्यकार महोदय ने शरीरारम्भक पृथिवी के साथ भी जलादि का संसर्ग स्वीकार किया है। उस पर यह प्रष्टव्य है कि परमाणु स्वरूप पृथिवी के साथ परमाणु स्वरूप जलादि का संसर्ग होता है या स्थूल पृथिवी के साथ स्थूल जलादि का संसर्ग होता है? पृथिवी परमाणु के साथ जलादि परमाणु का संसर्ग मानने से फिर भी भाष्यकारोक्त सब ही दोष रह जाते हैं, क्योंकि दो परमाणुओं से ही द्व्यणुक की उत्पत्ति हो सकती है, इसको स्मरण रखना चाहिए। यदि स्थूल पृथिवी के साथ स्थूल

परमाणुभिरित्यपि स्मर्तव्यम् । अन्त्ये सर्वेषामेवोपादानत्वेऽपि न कश्चिद्दोषलेशः सम्भवतीति । चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरमिति भाष्यकारेणाप्युक्तमिन्द्रियाणाञ्चैकैकभूतोपादानत्वं तत्रैव लिखितम्, तत्र पंचेन्द्रियोपादानानि पंचभूतानि न शरीरस्योपादानानीति कथं कथयितुं शक्यते। प्रदर्शितायां श्रुतावपि सूर्य एव चक्षुष उत्पत्तिलयहेतुर्वर्णितः। नतु सूर्योऽपि पार्थिव इति। चक्षुरादिरहितं शरीरं पार्थिवं चक्षुरादिसहितं वा श्रुत्या प्रमाणीकर्तुमिष्यते, चक्षुरादिरहितस्य

जलादि का संसर्ग स्वीकार किया जावे तो पांचों भूतों को उपादान मानने में भी किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नहीं है। भाष्यकार ने भी चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थ (शब्दादि) के आश्रय को शरीर माना हैं। सब ही इन्द्रियों का एक एक भूत उपादान है यह तो यहां ही लिखा है, फिर पांच इन्द्रियों के उपादान पांच भूत शरीर के उपादान नहीं हैं यह कैसे कह सकते हैं। भाष्यकारोक्त श्रुति में भी सूर्य को ही चक्षु की उत्पत्ति और लय का कारण बताया हैं। यह सूर्य पार्थिव नहीं है किन्तु तैजस है। अब प्रष्टव्य यह है कि इस श्रुति के द्वारा आप चक्षुरादि रहित अथवा चक्षुरादि सहित शरीर को पार्थिव सिद्ध करना चाहते हैं ? चक्षु आदि इन्द्रिय रहित शरीर भोगायतन नहीं हो सकता

द्रव्यं च यावन्निमित्तकारणस्थायीति कथयन्ति तैरवगन्तव्यं यत्तत्र वर्तितैलयोः शिखां प्रत्युपादानत्वं, शिखाच प्रदीपोदानमिति वर्तितैलनाशे शिखानाशस्तन्नाशे च प्रदीपनाश इति समवायिकारणनाशादेव कार्यनाशो न तु निमित्तनाशादिति। असमवायिकारणनाशादेव कार्यनाश इति न्यायसिद्धान्तस्तत्र समवायिकारणस्यासमवायिकारणाश्रयत्वात्समवायिकारणनाशेऽसमवायिकारणस्यापि नाशात्

का संसर्ग रहता है अथवा यों कहिए कि जब तक निमित्तकारण रहता है तबतक कार्य रह सकता है, इसलिए केवल उपादान के नाश से ही सर्वत्र कार्य का नाश नहीं होता किन्तु निमित्त के नाश से भी कार्य का नाश होता है, ऐसा कहनेवालों को समझना चाहिए कि प्रदीप का उपादान शिखा है और शिखा का उपादान वत्ति तैल आदि हैं। इसलिए वत्ति,तैल, आदि के नाश से शिखा का नाश और शिखा के नाश से प्रदीप का नाश होता है; इसलिए यहां भी उपादान कारण के नाश से ही कार्य का नाश होता है। निमित्तकारणके नाशसे कार्य का नाश नहीं हो सकता। इसके लिये और भी सोचना चाहिए कि असमवायो कारण के नाश से कार्य नाश होता है, ऐसा न्याय-वैशेषिक दर्शन का सिद्धान्त है। समवायी कारण तो असमवायीकारण का आश्रय है इसलिये समवायीकारण के नाश से असमवायीकारण

कार्यनाशो नियत एव किन्तु निमित्तकारणस्यासमवायिकारणानाश्रयत्वान्निमित्तनाशे कार्यनाशो न भवितुमर्हति। एवं सति यावदुपादानभूतानां पंचभूतानां स्थितिस्तावत् शरीरस्थितिर्यावच्च शरीरस्थितिस्तावदेवोपादानभूतपंचभूतस्थितिस्तत्रेति पंचैव भूतान्युपादानकारणामिति सत्यम्।

ये तु जलादीनां नाशेऽपि शरीरत्वेन प्रत्यभिज्ञायमानत्वादित्याहुस्तैरवगन्तव्यं यदत्यन्तशुष्केऽपि शरीरे स्नेहादीनां तत्कथितजलधर्माणां विद्यमानत्वाज्जलादीनां

का नाश और उससे कार्य का नाश तो निश्चित रूप से होता ही है, किन्तु निमित्तकारण असमवायीकारण का आश्रय नहीं है इसलिए निमित्तकारण के नाश से कार्य का नाश नहीं हो सकता। इस नियम के अनुसार विचार करने से भी देखा जाता है कि शरीर में जब तक उपादानस्वरूप पांचों भूत विद्यमान रहते हैं तब तक शरीर भी रहता है और जब तक शरीर रहता है तब तक उसमें उपादानस्वरूप पांचों भूत रहते हैं अतएव पांचों भूत शरीर के उपादान हैं यह सत्य है।

एक सम्प्रदाय कहता है कि "शरीर से जब जलादि का नाश हो जाता है तब भी शरीर करके पहिचाना जाता है इसलिए जलादि निमित्तकारण हैं और पृथिवी उपादान है।" ऐसा कहने वालों को सोचना चाहिए कि अत्यन्त शुष्क शरीर में भी स्नेहादि रहते हैं

शरीरतः सर्वथा नाशो न सम्भवति। अस्थ्यपि यथा-सम्भवं शुष्कं स्थूलजलहीनं न भवति का कथा मांसादीनामिति। यत्तु गन्धवत्त्वेन हेतुना पार्थिवपरमाणुदृष्टान्तेन शरीरस्यैकात्मकत्वं प्रत्यक्षविरुद्धमनुमितं वार्तिककारेण (शरीरमेकात्मकं गन्धवत्त्वात् पार्थिवपरमाणुवदिति) तत्र ताभ्यामेव हेतूदाहरणाभ्यां शरीरस्य नित्यत्वमपि अनु-

---

जो न्याय वैशेषिक मतमें जलके धर्म हैं, वे पृथिवी में नहीं रहते। इसलिये शरीर से जलादिका सर्वथा नाश नहीं हो सकता। परीक्षा से सिद्ध होता है कि अस्थि को यथासम्भव सुखाने पर भी सर्वथा जलशून्य नहीं होती है फिर मांसादि जलशून्य कैसे होंगे। यहां वार्तिककार ने अनुमान किया है कि जैसे पृथिवी-परमाणु में गन्ध होने से वह एकात्मक है (एकभूतात्मक) ऐसे ही शरीर भी गन्धयुत होने से एकात्मक होगा। इस अनुमान के ऊपर वक्तव्य यह है कि यदि ऐसे हेतु और दृष्टान्त से शरीर को एकात्मक माना जावे तो इस हेतु और दृष्टान्त से शरीर को नित्य भी सिद्ध कर सकते हैं अर्थात् ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि जैसे पृथिवी-परमाणु में गन्ध होने से वह नित्य है ऐसे ही शरीर भी गन्धयुत होने से नित्य है। वास्तव में यहां विचारणीय तो यह है कि शरीर का उपादान एक पृथिवी है अथवा पांचों भूत, इसके निर्णय के लिए नित्य निरुपादान (जिसका कुछ उपादान

मातुं शक्यते। शरीरस्योपादानविचारे नित्यो निरुपादानः परमाणुः कथं दृष्टान्तो भवितुमर्हतीति नास्माभिरवबुध्यते।

वैशेषिकमते शरीरस्य पांचभौतिकत्वनिरासः—

वैशेषिकैरपि शरीरस्य पांचभौतिकत्वनिरासाय कृतः प्रयासस्तत्र सूत्रम्।

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणामप्रत्यक्षत्वात्पञ्चात्मकं न विद्यते वै० द० ४–२–२।

अस्यायमभिप्रायः—यथा प्रत्यक्षस्य वृक्षस्याप्रत्यक्षस्य चाकाशस्य संयोगो द्रष्टुं न शक्यते, प्रत्यक्षयोस्तु वृक्षपक्षिणोः संयोगो द्रष्टुं शक्यते, एवं यदि प्रत्यक्षाप्रत्यक्षैः

नहीं है) परमाणु दृष्टान्त कैसे हो सकता है यह समझ में नहीं आता है।

वैशेषिक मत में शरीर का पांचभौतिकत्व खण्डन—

वैशेषिकदर्शन में भी शरीर के पांचभौतिकत्व के खण्डन का प्रयत्न किया गया है। उनका सूत्र यह है कि—प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणाम प्रत्यक्षत्वात् पंचात्मकं न विद्यते।' इस सूत्र का अभिप्राय यह है—जैसे प्रत्यक्ष वृक्ष और अप्रत्यक्ष आकाश के संयोग को देख नहीं सकते किन्तु प्रत्यक्ष वृक्ष और प्रत्यक्ष पक्षी के संयोग को देख

पंचभूतैरिदं शरीरमारभ्येत नास्य प्रत्यक्षयोग्यता स्यात्। प्रत्यक्षं चेदं शरीरमतो न पांचभौतिकमिति। यया युक्त्या शरीरस्य पांचभौतिकत्वं निरस्तमनयैव युक्त्या सर्वेषामेव दृश्यानां पांचभौतिकता निरस्यते।

वैशेषिकाक्षेपनिरासः—

नैतावता संयोगदृष्टान्तेन द्रव्यभूतस्य शरीरस्य पांचभौतिकता निरस्यते। यतः संयोगस्य नीरूपस्याश्रयद्रव्यप्रत्यक्षादेव प्रत्यक्षत्वम्। दीर्घयोर्दण्डयोर्दीर्घः संयोगो ह्रस्व-

---

सकते हैं, ऐसे ही यदि प्रत्यक्ष (पृथिवी, जल और तेज) और अप्रत्यक्ष (वायु और आकाश) इन पांच भूतों से शरीर की उत्पत्ति होती तो शरीर भी अप्रत्यक्ष होता; किन्तु शरीर प्रत्यक्ष है। इसलिये पांचभौतिक नहीं है। इसी युक्ति से शरीर के पांचभौतिकत्व निरास के समान सबही दृश्य पदार्थों का पांचभौतिकत्व निरस्त हो जाता है।

वैशेषिककृत आक्षेप का निरास—

इस संयोग के दृष्टान्तमात्र से द्रव्यभूत शरीर के पांचभौतिकत्व का खण्डन नहीं हो सकता, क्योंकि संयोग गुणपदार्थ है, इसमें रूपादि नहीं हैं, इसलिये संयोग के आश्रय द्रव्य के प्रत्यक्ष से संयोग का प्रत्यक्ष होता है। दीर्घ दो दण्डों के संयोग को दीर्घसंयोग और ह्रस्व दो दण्डों के संयोग को ह्रस्वसंयोग कहते हैं।

योश्च ह्रस्व इति। सर्वत्रैवाश्रययोः प्रत्यक्षात्तस्य प्रत्यक्षत्वम्। अत्र संयोगस्य गुणत्वात्परिमाणानाश्रयत्वेऽपि स्वाश्रय-परिमाणं संयोगस्य कल्प्यते। गुणत्वात् रूपरहितः संयोगो निराश्रयो न दृश्यते। तत्र प्रत्यक्षाश्रितः संयोगोऽपि प्रत्यक्षो यथा दण्डयोः संयोगः। अप्रत्यक्षाश्रितः संयोगो न द्रष्टुं शक्यते यथा परमाण्वोः संयोगः। एवं प्रत्यक्षा-प्रत्यक्षाश्रितः संयोगोऽपि न द्रष्टुं शक्यते। नैतावता संयोगदृष्टान्तेन पांचभौतिक द्रव्याणामप्रत्यक्षता कल्पयितुं

यहां भी आश्रय के प्रत्यक्ष से ही संयाग का प्रत्यक्ष माना जाता है। संयोग गुण है इसमें परिमाण नहीं होता, किन्तु संयोग का आश्रय दीर्घ हो तो संयोग को दीर्घ कहा जाता है। यहां संयोग के आश्रय द्रव्य का परिमाण संयोग में आरोपित होता है। संयोग गुण में रूप नहीं है इसलिये निराश्रय संयोग को कोई देख नहीं सकता। अतः जहां संयोग के दोनों आश्रय प्रत्यक्ष हैं, जैसे—दो दण्ड के संयोग में, वहां संयोग भी प्रत्यक्ष होता है। जहां संयोग के दोनों आश्रय ही अप्रत्यक्ष हैं वहां संयोग भी अप्रत्यक्ष है, जैसे-दो परमाणुओं का संयोग अप्रत्यक्ष है। इस प्रकार प्रत्यक्षाप्रत्य-क्षाश्रित संयोग अर्थात् जिस संयोग का एक आश्रय प्रत्यक्ष और दूसरा आश्रय अप्रत्यक्ष है वह संयोग भी अप्रत्यक्ष ही रहेगा। इस संयोगमात्र के दृष्टान्त से पांचभौतिक द्रव्य भी अप्रत्यक्ष हो

शक्यते । द्रव्यस्य स्वप्रतिष्ठत्वात् स्फुटं दृष्टान्तवैषम्यम् । पार्थिवयोः संयोगेषु गुरुत्वं नास्तीति दृष्टान्तेन पार्थिवस्य गुरुत्वाभावो यदि भवद्भिरङ्गीकर्तुं शक्यते तर्हि दृष्टान्तेनैवाविरोधेन शरीरस्य पांचभौतिकता कामं निराक्रियतां, यदि न शक्यते शरीरमपि पांचभौतिकमिति स्वीक्रियताम् ।

सर्वेषामेव भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वं प्राक् प्रतिपादितम् । दृश्येषु महाभूतसंज्ञकेषु पृथिव्यादिषु भौतिकसंज्ञकेषु च शरीरादिषु पंचानामेव भूतानां गुणदर्शनात्

जावेगा ऐसी कल्पना नहीं हो सकती । क्योंकि गुण पराश्रित हैं, द्रव्य स्वप्रतिष्ठ है इसलिये दृष्टान्त में वैषम्य स्पष्ट है । 'दो पार्थिव द्रव्यों के संयोग में गुरुत्व नहीं है' इस दृष्टान्त से यदि आप पार्थिव द्रव्य के गुरुत्व का खण्डन कर सकते हैं तब तो संयोग के दृष्टान्त से शरीर के पांचभौतिकत्व का भी खण्डन कर सकते हैं । अगर संयोग के गुण होने से उसके साथ द्रव्य की समानता नहीं मान सकते तो शरीर को भी पांचभौतिक मान लीजिये ।

सब भूतों में एक एक इन्द्रियार्थ (शब्द-स्पर्शादि) हैं इसको पहिले ही सिद्ध किया है । दृश्य पृथिवी आदि महाभूत नामक द्रव्यों में तथा शरीरादि भौतिक द्रव्यों में पांचों भूतों के गुण देखे जाते हैं तथा गुण पदार्थ कभी अपने आश्रय को छोड़ कर नहीं

गुणानां च स्वाश्रयमन्तरेण स्थातुमशक्यत्वात् सर्वेषामेव पांचभौतिकता सिद्ध्यति। दृश्यानां हि पृथिव्यादीनां यौगिकत्वं वैज्ञानिकै रासायनिकैश्च यन्त्रादिभिः शतधा प्रतिपादितमिति दृश्यानां भूतत्वभ्रमं विहाय सर्वेषाँ पांचभौतिकत्वमित्यायुर्वेदसिद्धान्त एव वरणीयो यतः स्थूलदृष्ट्याऽपि पृथिव्यादीनां पांचभौतिकता सिद्ध्यति। तथाहि—शुष्कायामपि मृत्तिकायां किंचिज्जलं तिष्ठत्येव। तेजोऽपि तत्र

रह सकता अतः ये सब ही पांचभौतिक हैं ऐसा सिद्ध हो जाता है। दृश्य पृथिवी, जल आदि पदार्थ भौतिक द्रव्य हैं, मूलभूत नहीं हैं यह तो वैज्ञानिक और रासायनिकों की यान्त्रिक परीक्षा से बहु प्रकार से सिद्ध हो चुका है। दृश्य पृथिवी आदि के भ्रमात्मक भूतत्वज्ञान को छोड़कर आयुर्वेद प्रतिपादित सब पदार्थों के पांचभौतिकत्व को स्वीकार कीजिये क्योंकि स्थूलदृष्टि से भी दृश्य पृथिवी आदि पांचभौतिक सिद्ध हो जाते हैं, जैसा कि—शुष्क मृत्तिकामें भी कुछ जलका अंश अवश्य रहता है उस मृत्तिका में ताप जनक (यहां ताप शब्द से हमारे शरीर के ताप से अधिक ताप नहीं समझना चाहिए, हमारे शरीर में ताप अधिक (९८ डीग्री) है, जो तेज से बनता है। इससे कम ताप भी तेज से ही बनता है जो हमारे हाथ से शीतल मालूम पड़ता है; किन्तु (तापमान से उसके ताप को जान सकते हैं)

तापजनकमस्ति। वायुरपि मृत्तिकाछिद्रेषु तिष्ठत्येवाकाशंतु सर्वमूर्तसंयोगित्वात्मृत्तिकायामप्यस्त्येव। एवं स्थूलजले बहुविधाः पार्थिवा द्रवीभूता अद्रवीभूताश्च तिष्ठन्ति। तेजोऽपि तापरूपेण तत्र स्थित्वा द्रवत्वं जनयति। निःसारिते च कियत्परिमिते तेजसि जलमपि काठिन्यमवलम्बते। वायुस्तत्र जलचराणां निश्वासयोग्योऽस्ति। सर्वमूर्तसंयोगित्वमाकाशस्य प्रागेवोक्तम्। दृश्ये वह्नौ कज्जलसम्पादिका पृथिवी, जलविन्दुजनकं जलं, गतिसम्पादको ज्वलनसहायको वायुराकाशश्च सर्वमूर्तसंयोग्यस्तीति। स्थूले वायौ धूलिरूपा

तेज भी है। मृत्तिका का छिद्र-स्थान वायु से भरा रहता है और आकाश सर्वमूर्तसंयोगी है, इसलिए मृत्तिका में भी आकाश है। इस प्रकार स्थूल जलमें बहुविध पार्थिव पदार्थ द्रवरूप में या अद्रव रूप में रहते हैं। तेज भी जल में रहकर उसको तरल रखता है। कुछ ताप को हटा लेने से वह जल बर्फ बन जाता है। जलचर प्राणियोंके श्वास लेनेके योग्य वायु भी जल में है। आकाश तो सब मूर्तके साथमें युक्त है ही। दृश्य अग्निमें कज्जल जनक पृथिवी, जल-बिन्दु-जनक जल, गतिसम्पादक और ज्वलनक्रिया का सहायक वायु तथा सर्वसंयोगी आकाश भी वर्तमान है। स्थूल वायु में धूलिरूप और कज्जलरूप पृथिवी, वाष्परूप जल, तापजनक तेज और सर्वसंयोगी आकाश है। स्थूल आकाश

कज्जलरूपा च पृथिवी, वाष्परूपं जलं, तापजनकं तेजः,सर्वमूर्तसंयोग्याकाशश्चास्तीति । स्थूले गगनेऽपि धूलिरूपा कज्जलरूपा पृथिवी, वाष्परूपं जलं, तापजनकं तेजः,स्पर्शग्राह्यश्च वायुरस्तीति सर्वेषामेव पांचभौतिकत्वमायुर्वेदविहितं साधु संगच्छत इति । तथाचोक्तम्—

दृश्येषु पञ्चभूतानां प्रदृश्यन्ते गुणा यतः ।
पंचभूतप्रजातं हि ततः सर्वं प्रकीर्तितम् ॥

इति दृश्यानां पृथिव्यादीनां पांचभौतिकत्वनिरूपणाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

में भी धूलि-रूप और कज्जल-रूप पृथिवी, वाष्परूप जल, तापजनक तेज और स्पर्श-ग्राह्य वायु विद्यमान है। इसलिए "ये सब ही पांचभौतिक हैं," ऐसा आयुर्वेदवर्णित सिद्धान्त ही ठीक संगत होता है।

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

क्योंकि दृश्य पृथिवी आदि में पांच भूतों के गुण देखे जाते हैं इसलिए ये सब पांच भूतों से उत्पन्न हुये हैं ऐसा माना जाता है।

दृश्य पृथिवी आदि के पांचभौतिकत्वनिरूपण नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।

पुनर्विश्लेषणादर्शनात्तेषामेव भूतसंज्ञासमानार्थां तत्त्वसंज्ञां कृतवन्तस्तत्त्वलक्षणं चैवम्—

१ विश्लेषणे विभागे वा यथाशक्ति कृते यतः ।
विजातीयो न निर्गच्छेत् सारस्तत्त्वं तदुच्यते ॥

अपराण्यपि—

२ तत्त्वानां परमः सूक्ष्मः कश्चिदणुर्भवेद्ध्रुवम् ।
३ आयतनं गुरुत्वं च घनत्वं रूपमेव च ।
भवेयुः सर्वतत्त्वेषु चत्वार्येतानि सर्वदा ॥
४ तत्त्वमेकं सदा भिन्नं स्वभावगुणतोऽन्यतः ।

ऐसा देखकर उन्हीं के लिए भूत शब्द का समानार्थक तत्त्व (Element) नाम रख लिया था। उन्होंने तत्त्वों का लक्षण इस प्रकार निश्चय किया था—

(१) यन्त्रादि द्वारा यथाशक्ति विभाग या विश्लेषण करने से भी जिससे विजातीय सार (Substance) नहीं निकलता उसको तत्त्व (Element) कहते हैं।

और भी तत्त्वों लक्षण यह हैं:-

(२) तत्त्वों का परम सूक्ष्म कोई अणु अवश्य होगा।

(३) आयतन, गुरुत्व, घनत्व, और रूप ये चारों गुण सब ही तत्त्व में होंगे।

५ अन्तरा प्रबलां शक्तिं सूक्ष्मांशोऽस्य न भिद्यते ।

६ तत्त्वं हि जनयेत् कार्यं स्वयं न जन्यतेऽन्यतः ॥

तत्त्वं कुर्वत् स्वकं कार्यं स्वस्वरूपं न मुञ्चति ॥

आयतनादिकं कार्ये विभिन्नं कारणाद् ध्रुवम् ।

७ नियतेनानुपातेन तत्त्वसंश्लेषणं सदा ॥

एतेषां लक्षणानां युक्तायुक्तत्वं विचार्य युक्तिसिद्धानि लक्षणान्येलिमेण्टसंज्ञकेष्वपि घटन्ते नवेति विचारयामः ।

---

(४) एक तत्त्व का स्वभाव, गुण, धर्मादि दूसरे तत्त्व के गुण धर्मादि से सर्वदा भिन्न होंगे।

(५) प्रबल शक्ति की सहायता को छोड़कर तत्त्व के सूक्ष्मांश को कोई भी नहीं तोड़ सकता।

(६) तत्त्व दूसरे यौगिकों को उत्पन्न करता है किन्तु स्वयं किसी से उत्पन्न नहीं होता। जब कोई तत्त्व किसी कार्य को उत्पन्न करता है तब भी वह तत्त्व अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता किन्तु कारण में विद्यमान आयतन, गुरुत्व आदि की अपेक्षा कार्य में विभिन्न प्रकार के आयतन गुरुत्व आदि उत्पन्न होते हैं।

(७) तत्त्वों का संश्लेषण (रासायनिक मिलन) किसी निश्चित अनुपात में ही हो सकता है।

इन लक्षणों में युक्तायुक्त का विचार करके युक्तिसिद्ध लक्षण एलिमैंट में लागू हो सकता है या नहीं इसका विचार करेंगे।

तत्राद्ये लक्षणे यथाशक्तिपदमेव तत्त्वज्ञानबाधकं प्रयुक्तं, तथाहि-यस्य यौगिकत्वं युक्तितर्कसिद्धं तस्य विश्लेषणे येषां सामर्थ्यं नास्ति तेषामेव अल्पसामर्थ्यं सिध्यति नैतावता यौगिकस्य मूलभूततेति। तथोत्तरार्धमपि लक्षणस्य व्यर्थमेव।तथाहि-विश्लेषणात् सजातीयो विजातीयो वा सारो निर्गच्छतु नास्ति तत्र वैशिष्ट्यम्। यस्य विभागो विश्लेषणं वा सम्भवति तस्य अनेकावयवत्वाज्जन्यत्वं, जन्यं च आदिकारणमिति युक्तितर्कादिविरुद्धमेव। तस्मात्—

"विश्लेषणं विभागो वा पुनर्यस्य न जायते। एता-

प्रथमलक्षण में यथाशक्ति पद का प्रयोग सत्यज्ञान का बाधक है; क्योंकि जो द्रव्य युक्ति-तर्कादि से यौगिक सिद्ध होता है उसका विश्लेषण करनेमें सामर्थ्यहीन, स्वयं शक्तिहीन सिद्ध होता है किन्तु इससे यौगिक द्रव्य मूल भूत नहीं बन सकता। लक्षण का उत्तरार्ध भी निरर्थक है क्योंकि विभाग या विश्लेषण से विजातीय या सजातीय सार निकलने में कुछ वैशिष्ट्य नहीं है। जिसका विभाग वा विश्लेषण हो सकता है वह अपने अवयवों से बना होने से जन्य (उत्पत्तिशील) है। जन्य द्रव्य को आदिकारण कहना युक्तितर्क-विरुद्ध है। अतः जिसका फिर विभाग या विश्लेषण नहीं हो सकता इतना ही लक्षण पर्याप्त है। प्रत्यक्षमात्र के ऊपर विश्वास करने वाले जब

वन्मात्रमेव लक्षणं पर्याप्तमासीत्। प्रत्यक्षमात्रविश्वासिनो यावन्न पश्यन्ति तावद् युक्तितर्कादिसिद्धमपि सिद्धान्तं न विश्वसन्ति तस्मादेषां परिकल्पना अति चंचला नैव विश्वसनीया। तथा चोक्तम्—

स्वशक्तिगर्वितानां हि युक्तितर्कावमानिनाम्।
कल्पनां विश्वसेन्नैव सर्वदैवातिचञ्चलाम्॥

द्वितीयलक्षणे—स एव परमः सूक्ष्मः परमाणुर्यस्य पुनर्विभेदः कथमपि न सम्भवति यस्य विभागो विश्लेषणं वा सम्भवति जन्यं तत्, न मूलकारणं,

---

तक अपनी आंखसे नहीं देखते तब तक युक्ति-तर्क-सिद्ध-सिद्धांत को भी विश्वास नहीं करते अतः इनकी परिकल्पना (Theory) अत्यन्त चंचल होने से विश्वास योग्य नहीं होती अतः कहा गया है कि जो लोग युक्ति तर्क की अवमानना करके केवल अपनी शक्ति से गर्वित होते हैं उनकी कल्पना भी सर्वदा अत्यन्त चंचल होती है अतः उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

द्वितीय लक्षण में—जिसका विभाग या विश्लेषण किसी प्रकार से न हो सके उस परमसूक्ष्म द्रव्य को परमाणु कहते हैं। जिसका विभाग या विश्लेषण हो सके वह जन्य द्रव्य है अतः वह मूल कारण नहीं बन सकता। मूल कारण उसको कहते हैं जिसकी

मूलकारणं हि तदुच्यते यस्योत्पत्तिरेव न सम्भवति तस्मादत्र लक्षणे तत्त्वानामिति भेदबोधिका षष्ठी न युज्यते किन्तु "तत्त्वं तु परमः सूक्ष्मो ह्यणुरेव भवेद्ध्रुवम्" इत्येवं लक्षणमुक्त्वा परमाणुरेव मूलकारणं तज्जानि मौलिकानि विजातीयमौलिकजानि यौगिकानिइति वाच्यमासीत् ।

तृतीये लक्षणे—परमाणूनामेकावयवानामदृश्यानां विभिन्नायतनत्वे प्रमाणं किंचिन्नोपलभ्यते, परमाणुद्वय-जातेषु द्व्यणुकेषु द्व्यणुक-त्रयजातेषु तदधिकद्व्यणुक

उत्पत्ति नहीं हो सकती अतः इस लक्षण में "तत्त्वोंका" इस प्रकार भेद बोधिका षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त नहीं हो सकती अर्थात् 'तत्त्वों का परम सूक्ष्म अणु होगा' यह न कह कर 'परम सूक्ष्म अणु ही तत्त्व है' ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार परमाणु ही मूल होने से मूल द्रव्य सिद्ध होते हैं और सजातीय परमाणु से उत्पन्न द्रव्य को मौलिक और विजातीय मौलिक या यौगिक से उत्पन्न द्रव्य को यौगिक या पांचभौतिक कहना चाहिये।

तृतीय लक्षण में—सब ही परमाणु एकावयवविशिष्ट और अदृश्य हैं इसलिये उनके आयतनों की विभिन्नता अथवा समानता में कोई प्रमाण नहीं मिलता किन्तु दो परमाणुओं से उत्पन्न द्व्य-णुक में, तीन या अधिक द्व्यणुकों से उत्पन्न त्रसरेणु में तथा इससे भी स्थूल पांचभौतिक द्रव्यों में आयतन भेद होता ही है

जातेषु च त्रसरेणुषु ततोऽपि स्थूलेषु च पांचभौतिकेषु भवत्येवायतनभेदः किन्त्वायतनभेदस्य भौतिकधर्मस्य भूतलक्षणे समावेशो न युज्यते।

एवं गुरुत्वस्य स्वरूपं विचार्यते चेदवगम्यते महाप्रलये सर्वेषामेव जन्यानां विनाशे संजाते नित्याः परमाणव एवावशिष्यन्ते, तदानीं कस्यचिद् गुरुत्वं लघुत्वं वा निश्चेतुं न शक्यते। सृष्टिदशायामधुना पृथिव्या माध्याकर्षणवशाद् गुरुत्वलघुत्वे आपेक्षिके परिगण्येते। तथाहि—यस्मिन् बह्ववयवे जन्ये द्रव्ये नियतपरिमिते स्थाने द्विशतसंख्यका अवयवाः घनसन्निविष्टास्तिष्ठन्ति

क्योंकि आयतन भेद भौतिक का धर्म है, भूत का धर्म नहीं, अतः भूत के लक्षण में उसका समावेश नहीं हो सकता।

इस प्रकार गुरुत्व के स्वरूप पर विचार करने से मालूम पड़ेगा कि महाप्रलय में सब ही जन्य द्रव्य नष्ट हो जाते हैं केवल नित्य परमाणु अवशिष्ट रह जाते हैं। उस समय किसी के गुरुत्व या लघुत्व का निश्चय नहीं हो सकता। अब सृष्टि काल में पृथिवी के माध्याकर्षण द्वारा आपेक्षिक गुरुत्व और लघुत्व की कल्पना की जाती है। गुरुत्व की कल्पना इस प्रकार से की जाती है कि जिस बहु-अवयव-विशिष्ट जन्य द्रव्य में नियत परिमित स्थान में

तस्य यावद्गुरुत्वं कल्प्यते ततोऽर्धमेव गुरुत्वं गण्यते यदि तावत्परिमिते स्थाने शतसंख्यका अवयवा विरलसन्निविष्टास्तिष्ठन्तीति । तत्रापि यस्य यावत् सूक्ष्म-द्रव्यतोलने शक्तिरस्ति स तथैव सूक्ष्मं द्रव्यमेककं कृत्वाऽन्येषामापेक्षिकं गुरुत्वं वर्णयति । अधुना तु परीक्षकैः हाईड्रोजन्संज्ञकस्य अणववयवमेटमाख्यमेककं कृत्वा आणविकगुरुत्वं गण्यते ततः सूक्ष्मस्य तेजस ईथराख्यस्य वा गुरुत्वमिलेक्ट्रोन्संज्ञके च विद्य-

---

दो शत अवयव घनसन्निविष्ट होकर रहते हैं उसका जितना गुरुत्व माना जाता है उससे केवल आधा गुरुत्व होगा यदि उतने ही स्थान में केवल सौ अवयव विरलसन्निविष्ट होकर रहें । इसमें भी देखा जाता है कि जो जितने सूक्ष्म द्रव्य को तौलने की शक्ति रखता है वह उतने ही सूक्ष्म द्रव्य को एकक (Unit) मान कर अन्य द्रव्यों के आपेक्षिक गुरुत्व का निर्णय करता है । आधुनिक वैज्ञानिक हाईड्रोजन् के एटम् (Atom) नामक अणु-अवयव को एकक मान कर आणविकगुरुत्व (Atomic Weight) की गणना करते हैं इसलिये उससे सूक्ष्म, तेज, ईथर आदि के गुरुत्व को तोल नहीं सकते और इलेक्ट्रोन् (Electron) में गुरुत्व मानने पर भी उसकी गणना नहीं कर सकते । यदि

मानमपि गुरुत्वंच कलयितुं न शक्यते। यदि कदाचित् सन्तोलनयन्त्रस्येतोऽप्युन्नतिः स्यात्तदा तेजः-कणा ईथराख्यस्य इलेक्ट्रोन्संज्ञकस्य कणोवाधिकरिष्यत्येकक्स्थानमिति नैतावता भौतिकधर्मेण भूतलक्षणं दूषयितुं युज्यते।

एवं घनत्वमपि बह्ववयवेषु स्थूलेष्ववयविष्ववयवानां घनसन्निवेशं विरलसन्निवेशं वा प्रकाशयति। तस्मादेषोऽपि भौतिकधर्मो भूतलक्षणं दूषयितुं न शक्नोतीति।

यत्तु सर्वेषामेव तत्त्वानां रूपवत्त्वमिहोच्यते, तदप्ययुक्तमेव। तथाहि—सर्वतत्त्वानां रूपवत्त्वं तदारब्धैः पंचभिरेवेन्द्रियैः

कभी सन्तोलनयन्त्र (Scale) की इससे भी उन्नति हो जाय तो तेज के कण, ईथर के कण या इलेक्ट्रोन् एकक के स्थान को अधिकृत करेंगे। ऐसे भौतिक द्रव्य के धर्म से भूत लक्षण को दुष्ट करना ठीक नहीं है।

इस प्रकार घनत्व भी बहु-अवयव-विशिष्ट द्रव्य के अवयवों के घनसन्निवेश अथवा विरल-सन्निवेश को बताने वाला है। अतः यह भी भौतिक का धर्म है इससे भूत के लक्षण को दुष्ट करना ठीक नहीं है।

सब ही तत्त्वों में रूप को मानना भी युक्ति विरुद्ध है क्योंकि

कथं रूपं न गृह्यत इति प्रथमा विप्रतिपत्तिर्द्वितीया तु 'तत्त्वमेकं सदाभिन्नं स्वभावगुणतोऽन्यत' इति वक्ष्यमाणं लक्षणं तत्त्वानां न घटते, सर्वेषां रूपवत्त्वेनैकगुणत्वात् रक्तपीतनीलादयो रूपभेदा एव गुणभेदास्तु शब्दस्पर्शरूपादय इति। तस्माच्चक्षुषः प्रधानोपादाने तेजसि एव रूपमन्येषु भूतेषु शब्दादयो गुणास्तिष्ठन्तीति बोध्यम्। तथा चोक्तम्—

पश्यतां नेत्रमात्रेण भ्रम एवंविधो भवेत्।

सब ही तत्त्वों में रूप होता तो तत्त्वों से उत्पन्न पांचों इन्द्रियों से रूप दिखाई क्यों नहीं देता ? यह तो पहिली विप्रतिपत्ति है। दूसरी विप्रतिपत्ति यह है कि "एक तत्त्वके गुणधर्म दूसरे तत्त्वके गुणधर्म से सर्वदा भिन्न हैं" यह अग्रिम लक्षण भी ठीक नहीं होगा क्योंकि सब ही तत्त्वों में रूप होने पर सब एक गुण वाले हो जाते हैं। लाल, पीला, नीला आदि रूप के भेद हैं गुण के भेद नहीं गुण के भेद तो शब्द, स्पर्श, रूप आदि हैं। इसलिये चक्षु के प्रधान उपादान तेज में ही रूप है, अन्यान्य भूतों में शब्द, स्पर्श आदि गुण रहते हैं ऐसा मानना ठीक है। अतएव कहा गया है कि केवल चक्षु से देखने वाले को इस प्रकार भ्रम होता ही है, किंतु पांचों इन्द्रियों से प्रत्यक्ष करने वालों को ऐसा भ्रम नहीं हो सकता।

न त्वसौ सम्भवेन्नूनं पंचेन्द्रियावलोकिनाम् ॥

चतुर्थे लक्षणे—गुणशब्देन बहिरिन्द्रियग्राह्याः विशेषगुणाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा एवावगन्तव्याः । साधारणगुणानां संयोगविभागगुरुत्वपरिमाणादीना मनेकभूतनिष्ठत्वात् । शुक्लादयो न गुणभेदा रूपभेदा एव ते । गुणत्वजातिमत्त्वं शब्दादीनां शुक्लादीनां च गुणत्वावान्तरजातिमत्त्वमिति ध्येयम् । उक्तं हि—

पंचैवायतनान्येवं शब्दादीनां पृथक् पृथक् ।
शुक्लाद्यायतनानां तु संख्यता न हि दृश्यते ॥ इति ।

पंचमे लक्षणे—

चतुर्थलक्षण में—गुण शब्द से श्रोत्रत्वगादिबहिरिन्द्रिय से ग्राह्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को समझना चाहिए। संयोग, विभाग, गुरुत्व, परमाण आदि साधारण गुण जो अनेक इन्द्रियों से जाने जाते हैं वे अनेक भूतों में रहते हैं। शुक्ल, नील आदि गुण के भेद नहीं हैं किन्तु रूप के भेद हैं। गुणत्व जाति शब्द स्पर्शादि में है और शुक्लत्व नीलत्वादि जाति रूपत्व की अवान्तर जाति हैं इस पर ध्यान देना चाहिए। इसलिए कहा जाता है कि शब्दादि पांच गुणों के आकाशादि पृथक् २ पांच आयतन हैं किन्तु शुक्लादि के आयतन असंख्य हैं।

बलवत्या हि शक्त्यापि यस्य भेदो भवेत् पुनः ।
जन्यं तदेव विज्ञेयं न मूलं हि मनीषिभिः ॥
तस्माद्विश्लेषणं यस्य केनापि न भवेत् पुनः ।
तस्य मूलत्वमाख्यातं तत्तत्त्वं भूतमेव तत् ॥

षष्ठलक्षणे—जन्यद्रव्यं सूत्रवेत्रादिवत् कथंचित् कारणमपि न भूतं भवितुमर्हति । उत्पत्तिविनाशरहित-मेव मूलकारणं भवेदिति प्राक् प्रतिपादितमेव । मूल-कारणस्य नित्यत्वाद् यथा तस्योत्पत्तिर्न कुतोऽपि तथैव

पंचमलक्षण में—प्रबल शक्ति से भी जिसका विभाग वा विश्लेषण हो सके वह पदार्थ जन्य ही होगा मूल द्रव्य नहीं हो सकता, अतः कहना पड़ेगा कि जिसका विभाग वा विश्लेषण किसी प्रकार से नहीं हो सकता वही मूल है, वही तत्त्व है और वही भूत है ।

षष्ठलक्षण में—जन्य द्रव्य सूत्र वेत्रादिवत् कभी किसी का कारण हो सकता है किन्तु भूत नहीं हो सकता । यह तो पहिले ही सिद्ध किया जा चुका है कि उत्पत्ति-विनाश-रहित द्रव्य ही मूल कारण हो सकता है । मूल कारण नित्य है इसलिए जैसे किसी से उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ऐसे ही कार्य को उत्पन्न करते हुए भी नित्य द्रव्य का नाश नहीं हो सकता । इस लक्षण

कार्यं जनयतो नित्यस्य मूलकारणस्य स्वरूपनाशोऽपि नैव सम्भवति । एतल्लक्षणस्योत्तरांशवर्णितोऽर्थो भौतिकाद्भौतिकोत्पत्तावेव सम्भवति न भूताद्भौतिकोत्पत्तौ । यतो विशिष्टायतनादयो यौगिकानां धर्माः भूतलक्षणे न प्रवेशमर्हन्तीति प्रागेव प्रतिपादितम् ।

सप्तमे लक्षणे—आदिकारणस्यैव तत्त्वसंज्ञा भूत संज्ञा च वाच्येति प्राक् प्रतिपादितम् । तत्रादिकारणं नित्यमतः परमाणुरूपमपि वाच्यमेव मध्यमपरिमाणानि जन्यानि नित्यानि इति युक्तितर्कादिविरुद्धमेव । परमाणूनामेव तत्त्वत्वे विजातीयद्व्यणुकादिक्रमेणैव

के उत्तरार्ध में वर्णित अर्थ, भौतिक से भौतिक की उत्पत्ति में ही लागू हो सकता है किन्तु भूत से भौतिक की उत्पत्ति में यह अंश संगत नहीं होता है। क्योंकि विशिष्ट आयतन आदि भौतिक द्रव्य के धर्म हैं इसलिए भूत लक्षण में उसका समावेश नहीं हो सकता है इसका वर्णन पहिले ही किया है।

सप्तम लक्षण में—आदिकारण की ही तत्त्वसंज्ञा और भूतसंज्ञा होनी चाहिये यह पहिले ही लिखा है। आदि कारण को नित्य अतएव परमाणु स्वरूप ही कहना पड़ेगा क्योंकि मध्यम परिमाण द्रव्य जन्य और अनित्य हैं यह तो युक्ति तर्क से सिद्ध हुआ है।

संश्लेषणं युक्तिसिद्धं भवितुमर्हति । विजातीयेन संश्लेषणं तु स्थूलानामेव यतो विजातीयपरमाण्वारब्धे स्थूलेऽपि गन्धादीनामुत्पत्तिर्न सम्भवतीत्यादि प्रागेव युक्त्या प्रतिपादितम् । तस्मात्तत्त्वलक्षणे "नियतेनानुपातेन संश्लेषणं भवेत् सदेति" नियमो न वक्तुं शक्यते । स्थूलानां केषांचिद् भौतिकानां कदाचिन्नियतानुपातेन संश्लेषणं दृश्यते कदाचिच्च अनियतानुपातेन यथा कज्जल्यादाविति । अतश्चोक्तम् ।

नियतेनानुपातेन स्थूलसंश्लेषणं क्वचित ।

यदि केवल परमाणु को ही तत्त्व माना जावे तो स्वजातीय द्व्यणुकादि क्रम से ही इनका संश्लेषण (मिलन) युक्ति सिद्ध हो सकता है विजातीय के साथ संश्लेषण केवल स्थूल द्रव्य का ही हो सकता है क्योंकि विजातीय परमाणुओं से उत्पन्न स्थूल द्रव्य में भी गन्धादि की उत्पत्ति नहीं हो सकती इसको पहिले ही युक्ति से सिद्ध किया है । इसलिए तत्त्व के लक्षण में नियत अनुपात से तत्त्वों का संश्लेषण होगा ऐसा नियम नहीं कर सकते हैं । कुछ स्थूल भौतिक द्रव्यों का संश्लेषण कभी तो नियत अनुपात से होता है ऐसा देखा जाता है कहीं अनियत अनुपातसे भी संश्लेषण देखा जाता है जैसे पारा और गन्धक के संश्लेषण में कुछ अनुपातका नियम नहीं है । अतएव कहा गया है कि स्थूल द्रव्यों का

संश्लेषे परमाणूनां द्व्यणुकादिक्रमो मतः ॥ इति

एषु सप्तसु लक्षणेष्वेकमपि वैज्ञानिकपरिकल्पितानामेलिमेण्टसंज्ञकानामव्याप्त्यतिव्याप्तिरहितं लक्षणं न भवितुमर्हति। तथाहि—हाईड्रोजनाख्यस्य सूक्ष्मोंऽशो मोलिकुलाभिधो द्वाभ्यामेटम्संज्ञकाभ्यामारभ्यते । एटमाख्योऽणववयवोऽपि विरुद्धगुणादियुक्ताभ्यामिलेक्ट्रोन प्रोट्रोन् संज्ञकाभ्यां विजातीयाभ्यामेवारभ्यते । न्यूट्रोन् प्रभृतयोऽन्योऽपि सूक्ष्मतमाः पदार्था उपादानेषूपलभ्यन्त इति

संश्लेषण कहीं २ नियत अनुपात से होता है किंतु परमाणुओं का संश्लेषण तो द्व्यणुकादि क्रम से ही होता है ।

इन सात लक्षणों में से एक भी वैज्ञानिक परिकल्पित ऐलीमेण्ट का अव्याप्ति और अतिव्याप्ति रहित लक्षण नहीं हो सकता । क्योंकि हाईड्रोजन् (Hydrogen) संज्ञक का मोलिकुल (Molecule) नामक सूक्ष्म अंश भी दो एटम (Atom) नामक क्षुद्र अवयव से बनता है और वह एटम भी इलेक्ट्रोन (Electron) और प्रोटोन (Proton) नामक विरुद्ध गुण धर्म विशिष्ट दो विजातीय सूक्ष्मतर अवयवों से उत्पन्न होता है । एटम् के अन्दर न्यूट्रोन (Neutron) पोज़ीट्रोन (Positron) आदि और भी सूक्ष्म सूक्ष्म अवयव हैं यह तो वैज्ञानिकों ने ही

वैज्ञानिकैरेव प्रतिपादितम्। एवं सर्वेषामेवैलिमेण्टसंज्ञकानामेटमाख्यस्याणुतरावयवस्य यौगिकत्वं प्रतिपादितम्। तस्मात् प्रथमलक्षणमेलिमेण्टसंज्ञकेषु न घटते, घटते त्वस्मद्वर्णितेषु पंचसु भूतेष्विति।

एलिमेण्टसंज्ञकस्य परमाणुत्वेनाभिमतस्यैटमाख्यस्य परमसूक्ष्मत्वं तावदेव भ्रमकल्पितमासीत् यावदिलेक्ट्रोनादि संज्ञकानामाविष्कारो नाभूदधुनात्वेटमाख्यस्यैलेक्ट्रोनादि संज्ञकापेक्षया स्थूलत्वमेव वैज्ञानिकैः प्रतिपादितम्, तस्माद् द्वितीयमपि लक्षणमेलिमेण्टसंज्ञकेषु न घटते, घटते तु पंचभूतेष्विति।

सिद्ध कर दिया है। इसलिए सब ही एलिमेण्ट और एटम् यौगिक द्रव्य हैं यह सिद्ध हो चुका है। इसलिए प्रथम लक्षण एलिमेण्ट में तो लागू नहीं हो सकता है किन्तु हमारे वर्णित पांचों भूतों में ही प्रथम लक्षण ठीक लगता है।

जिस एटम् को एलीमेण्ट का परमाणु कहा जाता है वह ही परम सूक्ष्म द्रव्य है, ऐसा भ्रम तब तक था जब तक इलेक्ट्रोन् आदि का अविष्कार नहीं हुआ था। अब तो वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि इलेक्ट्रोन आदि से एटम स्थूल है इसलिए द्वितीय लक्षण भी एलिमेण्ट में ठीक नहीं लगता

तृतीयं लक्षणं भूतानां लक्षणमेव न भवितुमर्हतीति प्राक्प्रतिपादितम्, तथाप्येलिमेण्टसंज्ञकस्यैतदपि निर्दोषं लक्षणं न भवति जन्यानां स्थूलानां सर्वेषामेव यौगिकानां मंचादीनामप्यायतनगुरुत्वघनत्वरूपशालित्वादतिव्याप्तं तत्र लक्षणमिति । एलिमेण्टसंज्ञकानां सर्वेषामेव रूपशालित्वाच्चतुर्थमपि लक्षणमेलिमेण्टसंज्ञकेषु न घटते, घटते तु शब्दाद्येकैकगुणवत्सु परमाणुस्वरूपेषु पंचसु भूतेष्विति । पञ्चमलक्षणमपि भूतस्य न युज्यत इति प्रागुक्तमेव ।

है किन्तु पांच भूतों में ठीक २ लग सकता है।

तृतीय लक्षण भूत का लक्षण तो नहीं हो सकता यह तो पहिले ही दिखाया है फिर भी एलिमेण्ट के लिए यह भी निर्दोष लक्षण नहीं हो सकता क्योंकि सब ही जन्य स्थूल द्रव्य जो यौगिक द्रव्य हैं यहां तक कि मंच आदिके भी आयतन, गुरुत्व, घनत्व और रूप हैं अतः उन सब में लक्षण की अतिव्याप्ति हो जाती है। सब ही एलिमेण्टों में रूप है तो चौथा लक्षण भी एलिमेण्ट में नहीं लगता है किन्तु शब्द, स्पर्शादि एक एक गुण विशिष्ट परमाणु में चतुर्थ लक्षण भी ठीक लगता है। तत्त्व का पंचम लक्षण भी मूल तत्त्वों में नहीं लग सकता यह तो पहिले सिद्ध किया है और यह भी बात है कि शक्ति की प्रबलता का भी निर्णय नहीं होता है। जिसको प्रबल शक्ति करके

किंच शक्तेः प्राबल्यमपि न निर्णीयते। यामेकः प्रबलां शक्तिं मन्यते तामेवापरः साधारणीमिति सर्वत्र दृश्यते। प्रबलशक्तिमन्तरेण शर्करालवणादीनां सूक्ष्मांशोऽपि न भिद्यते। ततोऽतिव्याप्तिदुष्टं हि लक्षणं पंचमं मतम्।

इलेक्ट्रोनादिसंज्ञकानामाविष्कारकैर्वैज्ञानिकैरेवैलिमेण्ट संज्ञकानां जन्यत्वं प्रमाणीकृतमिति षष्ठमपि लक्षण-मेलीमेण्टसंज्ञकेषु न घटते, घटते तु परमाणुस्वरूपेषु पंचसु भूतेष्विति। अनादितत्त्वेषु परमाणुस्वरूपेषु सप्तमं लक्षणं न घटत इति प्रागुक्तमेलिमेण्टसंज्ञकेष्वपि नैतल्लक्षणं सर्वत्र

एक व्यक्ति मानता है उसी शक्ति को दूसरा कोई साधारण शक्ति समझता है, ऐसा सब जगह में देखा जाता है। प्रबल शक्ति के सिवा शर्करा लवण आदि के सूक्ष्मांश को भी तोड़ नहीं सकते हैं इसलिए पंचम लक्षण भी अतिव्याप्ति दोष दुष्ट है।

इलेक्ट्रोन् आदि के आविष्कारकर्ता वैज्ञानिकों ने ही एलिमैण्ट को जन्य (उत्पत्ति शील) और विनाशी सिद्ध कर दिया है, इसलिए षष्ठ लक्षण भी एलिमेण्ट में नहीं लगता है किन्तु परमाणु स्वरूप पांचों भूतों में ठीक २ लगता है। अनादि तत्त्व परमाणु स्वरूप हैं उनमें सप्तम लक्षण नहीं लग सकता है। एलिमैण्ट में भी यह लक्षण सब जगह में नहीं लग सकता है क्योंकि

घटते । तथाहि—पारदगन्धकयोः संश्लेषणमनियतेनैव मानेन भवितुमर्हतीति प्रत्यक्षसिद्धमेव । तथा ताम्रवंगरजतादि धातूनां संश्लेषणेऽपि माननियमो नास्तीति सप्तममपि लक्षणमव्याप्तिदोषदुष्टमेव । वैज्ञानिकपरिकल्पितैरेव लक्षणैरेलिमेण्टसंज्ञकानां भूतत्वमपास्य यौगिकत्वं निर्णीयते । वस्तुतस्तु पंचेन्द्रियग्राह्यत्वाच्छब्दादिपंचेन्द्रियार्थाश्रयत्वाच्च पांचभौतिकत्वमेवैलिमेण्ट संज्ञकानामिति बोद्धव्यम् ।

ननु एलिमेण्टसंज्ञकानि पंचेन्द्रियार्थाधिष्ठाना-

पारद और गन्धक का संश्लेषण अनिश्चित परिमाण में भी होता है यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही है । ताम्र,वंग, रौप्य आदि धातु के संश्लेषण में भी परिमाण का कुछ नियम नहीं; इसलिए सप्तम लक्षण भी अव्याप्ति दोष दुष्ट है । वैज्ञानिकों के परिकल्पित लक्षण से ही एलिमेण्ट का भूतत्व खण्डित होकर यौगिकत्व सिद्ध हो जाता है । वास्तव में सब ही एलिमैण्टों में शब्द स्पर्शादि पांच इन्द्रिय ग्राह्य गुण हैं और सब ही पांचों इन्द्रियों से जानने के योग्य हैं, इसलिए सब ही एलिमैण्ट पांच भौतिक हैं ।

प्रश्न होता है कि 'सब ही ऐलिमेण्ट में पांच गुण हैं और सब को पांच इन्द्रियों से जाना जाता है इस बात को कैसे

नीति कथं कथयितुं शक्यते । दृश्यते हि हाईड्रोजनसंज्ञकं गन्धरूपरसरहितमिति तथाऽन्येषामपि बहूनामेव पंचेन्द्रियार्थाश्रयता न दृश्यते इति चेत् । उच्यते—ये यत्रानभिव्यक्तास्तिष्ठन्ति त एव तत्राविर्भवन्तो दृश्यन्ते। डाईड्रोजनसंज्ञकस्य वायवीयावस्थायां रूपरसगन्धहीनत्वेऽपि तरलावस्थायां कठिनावस्थायां च रूपं दृश्यते । शर्कराम्लादीनामुपादानावस्थायां रसोऽभिव्यज्यते। घृतादिस्नेहानामुपादानावस्थायां च गन्धोऽभिव्यज्यते । कारणे विद्यमानानामनभिव्यक्ता-

---

स्वीकार कर सकते हैं ? देखा जाता है कि हाईड्रोजन् में गन्ध, रूप और रस नहीं हैं ऐसे ही और भी बहुत एलिमेण्ट होंगे जिन में शब्दादि पांच गुण न हों । इस प्रश्न का उत्तर यह है कि 'सब ही ऐलिमैण्टों में सर्वदा पांचों गुण अभिव्यक्त रहते हैं' यह हमारा कहना नहीं किन्तु जिसमें जो गुण अव्यक्त रहता है उसमें ही वह गुण व्यक्त हो सकता है ऐसा देखा जाता है। हाईड्रोजन जब वायवीय (Gaseous) अवस्था में रहता है तब उसमें रूप, रस और गन्ध नहीं रहते किन्तु जब वह तरल या कठिन (ठोस) अवस्था में हो जाता है तब उसमें रूप भी देखा जाता है। वह जब शर्करा, अम्ल आदि का उपादान बनता है तब उसमें रस भी अभिव्यक्त होता है । जब यह घृतादि स्नेह का उपादान बनता है तब इसमें गन्ध व्यक्त होता है । कारण में जो गुण विद्यमान

नामेव गुणानामभिव्यक्तिः सम्भवति कारणव्यापारेण न तु कारणे सर्वथाऽविद्यमानानामपि कारणव्यापारेणाप्यभिव्यक्तिः सम्भवति। तथासति कारणव्यवस्थैव व्याहन्यते। सर्वमेव सर्वस्य कारणं भवितुमर्हतीति। एवं सर्वेष्वेवैलिमेण्टसंज्ञकेषु व्यक्ताव्यक्तरूपेण शब्दादीनां पञ्चानामेवेन्द्रियार्थानामवस्थानात् तेषां पांचभौतिकतैव न मूलानि न वा भूतानि ऐलिमेण्टसंज्ञकानि इति सिद्धम्। उक्तं च—

शब्दादिविषयाः पञ्च यत्र सिध्यन्ति युक्तितः।

हैं अथच अव्यक्त हैं कारण के व्यापार से वही गुण कार्य में अभिव्यक्त हो सकते हैं किन्तु कारण में जो गुण अव्यक्तावस्था में भी नहीं है उनकी अभिव्यक्ति कारणव्यापार से भी नहीं हो सकती। ऐसा होता तो कारण-व्यवस्था न रहती और सब ही सब के कारण हो सकते।

इस प्रकार सब ही ऐलिमैण्टों में कहीं व्यक्त, कहीं अव्यक्त रूप से शब्द आदि पांचों इन्द्रियार्थ रहते हैं, अतएव ये सब ही ऐलिमेण्ट पांचभौतिक हैं, न मूल हैं, न भूत ही हैं। कहा भी जाता है कि—

युक्ति से जिसमें शब्दादि पांच विषय सिद्ध होते हैं वह

पांचभौतिकता तस्य सिध्यत्येव न संशयः ॥ इति ।

इत्याधुनिकवर्णितानामेलिमेण्ट संज्ञकानां पांचभौतिकत्व
निरूपणाख्यः पञ्चमोऽध्यायः ।

द्रव्य भी पांचभौतिक है इसमें कुछ संशय ही नहीं है ।

आधुनिक वैज्ञानिक वर्णित ऐलिमेण्टों का पांचभौतिकत्व
निरूपण नामक पंचम अध्याय समाप्त ।



षष्ठोऽध्यायः

इलेक्ट्रोन्-प्रोटन्संज्ञकयोर्भूतत्वं नवा ?

एलिमेण्टसंज्ञकानि यौगिकानि इति प्रामाणिकमभवत्तत-स्तानि न मूलानि नवा भूतानीति स्वीक्रियते, किंतु एलिमेण्ट संज्ञकानामण्ववयवानामेटमाख्यानां घटका ये खल्वि-लेक्ट्रोन्–प्रोटोनादिसंज्ञाभाजः सूक्ष्माः पदार्था आवि-ष्कृतास्तेषां मूलत्वं भूतत्वं च युक्तिसिद्धं भवितुमर्हति। सर्वे खल्विलेक्ट्रोन्संज्ञका एकविधाः शब्दादिगुणशून्या

इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि भूत हैं या नहीं ?

ऐलिमेण्ट यौगिक है यह प्रमाणित हो गया है इसलिए वह मूलभूत नहीं है यह भी स्वीकार करना चाहिए किन्तु एलिमैण्ट के सूक्ष्म अवयव एटम् के उपादान इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि नाम से प्रसिद्ध जो सूक्ष्म पदार्थ आविष्कृत हुए हैं उनको मूलभूत कहना युक्ति-सिद्ध हो सकता है ? सब ही इलेक्टोन एक प्रकार के हैं इनमें शब्द-स्पर्शादि इन्द्रियग्राह्य गुण नहीं हैं, सब ही वियोगात्मक (Negative) विद्युत् (Electricity) के

वियोगात्मकविद्युदधिकरणाः प्रोटोन्संज्ञकापेक्षयाऽतिलघवोऽथ च तुल्यशक्तिका अवगन्तव्याः। तथा सर्वे एव प्रोटन्संज्ञका एकविधाः संयोगात्मकविद्युदधिकरणाः शब्दादिगुणहीनाः अविभाज्या इलेक्ट्रोन्संज्ञकापेक्षयाऽतिगुरवः (१८७२ गुणगुरवः) अथ च तुल्यशक्तिका अवगन्तव्याः। तत्र हाईड्रोजन्संज्ञकस्याणवयव एटमाख्ये प्रोटोन्संज्ञकस्य एकोऽणुतरावयवः केन्द्रावस्थितः केन्द्रकः कथ्यते तस्य समन्तात् वृत्ताकारेण परिभ्रमन्नेकः इलैक्ट्रोनाख्योऽणुतरावयवः क्रियाशीलः परिकथ्यते। येषां खल्वणववयव एटमाख्ये बहुसंख्यका

आधार हैं। प्रोटोन की अपेक्षा से अत्यन्त लघु (१८७२ भाग लघु) अथच उसके समान शक्तिशाली हैं। इस प्रकार सब ही प्रोटोन एक प्रकार के हैं उनमें संयोगात्मक (Positive) विद्युत् रहता है। उनमें शब्दादिगुण नहीं हैं, वे अविभाज्य हैं और इलेक्ट्रोन की अपेक्षा से अत्यन्त गुरु (१८७२ गुणा भारी) हैं अथच उसके समान शक्तिवाले हैं। हाईड्रोजन के एटम् नामक सूक्ष्म अवयव में एक ही प्रोटोन् केन्द्र में रहकर केन्द्रक (nudei'l) कहलाता है। उसके चारों तरफ वृत्ताकार में भ्रमण करने वाला इलेक्ट्रोन् नामक सूक्ष्मतरअवयव, क्रियाशील

इलेक्ट्रोन्संज्ञका वहुसंख्यकाश्च प्रोटोन्संज्ञकाः सन्ति तत्र सर्व एव प्रोटन्संज्ञकाः केन्द्रावस्थिताः केन्द्रकसंज्ञाभाजो भवन्ति । इलेक्ट्रोन्संज्ञकानां केचन केन्द्रस्थिता निष्क्रिया वद्धा अभिधीयन्ते । इतरे च केन्द्रकाणां समन्ताद्वृत्ताकारेण परिभ्रमन्तः क्रियाशीलाः कथ्यन्ते। अन्तःस्थं शून्यस्थानमीथरसंज्ञकेन पूर्यते । यस्मिन्नेटम्-संज्ञके यावन्त इलेक्ट्रोन्संज्ञकाः क्रियाशीलास्तावत्परि-मिताणविकसंख्या परिगण्यते। इलेक्ट्रोन्संज्ञके विद्यमानमपि

(Charged) कहलाता है । जिस एटममें बहुसंख्यक इलेक्ट्रोन् और प्रोटोन् हैं उस में भी सब ही प्रोटोन् एटम् के केन्द्र में रहकर केन्द्रक कहलाते हैं किन्तु इलेक्ट्रोन् में से कुछ तो केन्द्रक के पास निष्क्रिय रहकर बद्ध (Bound) कहलाते हैं और कुछ केन्द्रक के चारों तरफ वृत्ताकार भ्रमण करके सक्रिय कहलाते हैं। एक एटम् का जितना स्थान इलेक्ट्रोन् और प्रोटोन् से घिरता है उसके अतिरिक्त शून्य स्थान ईथर नामक पदार्थ से भरा रहता है। जिस एटम् में जितना इलेक्ट्रोन् सक्रिय (Charged) होता है उतनी ही उस एटम् की आणविक संख्या (Atomic Number) मानी जाती है । इलेक्ट्रोनमें गुरुत्व बहुत अल्प होने के कारण गिना नहीं जाता । किन्तु एक एटम् में

गुरुत्वं स्वल्पत्वान्न गण्यते, किंतु यावन्तः प्रोटन्संज्ञका एकस्मिन्नेटमाख्ये, तावत्परिमितमाणविकगुरुत्वं कथ्यते।

सर्वे खल्विलेक्ट्रोन्संज्ञकास्तुल्यपरिमाणाः समानशक्तिकाः शब्दादीन्द्रियग्राह्यगुणहीनाश्च भवन्ति। तथैव प्रोटनसंज्ञकाः। एषां खल्विलेक्ट्रोन्प्रोटनादीनां संख्याभेदाद्घनत्वभेदाच्चैटमाख्येऽणवयवे आयतनभेदो गुणभेदश्च जायते।

केचिद् वैज्ञानिका वदन्ति यदेटमाख्येऽणवयवे यावन्तः सक्रिया इलेक्ट्रोन्संज्ञकास्त एव इलेक्ट्रोन्संज्ञाभाजस्तत्परिमिताश्च प्रोटन्संज्ञका एटमाख्येऽणवयवे तिष्ठन्ति। एतन्मते एटमाख्यान्त-

---

जितने प्रोटोन हैं उतना ही उस एटम का आणविक गुरुत्व (Atomic weight) माना जाता है। सबही इलेक्ट्रोन समान परिमाण, समान शक्तिशाली, शब्दादि इन्द्रिय-ग्राह्य-गुण-रहित होते हैं। तथा सब प्रोटोन् भी ऐसे ही हैं। एटम् में इलेक्ट्रोन् और प्रोटोन की संख्या के भेद तथा घनत्व के भेद से ही एटम् का आयतन-भेद और गुणभेद होता है।

एक सम्प्रदाय के वैज्ञानिक कहते हैं कि एक एटम् में जितने सक्रिय इलेक्ट्रोन् हैं वही इलेक्ट्रोन् हैं और उनके समान संख्यक

गतानां बद्धानामिलेक्ट्रोन्संज्ञकानां पोजीट्रोन्संज्ञा, तत्समसंख्यकानां प्रोटन्संज्ञकानां न्यूट्रोन्संज्ञा स्वीक्रियते । इलेक्ट्रोन्संज्ञाः वियोगात्मकविद्युदधिकरणाः प्रोटोन्संज्ञकाश्च योगात्मकविद्युदधिकरणाः । यत एकस्मिन्नेटमाख्ये योगशक्तिका वियोगशक्तिकाश्चावयवास्तुल्यपरिमिताः सन्ति तस्मादेव सर्वे एटमाख्या विद्युन्निरपेक्षा दृश्यन्ते । इलेक्ट्रोनादिनामभाजः सर्वे एव विद्युदधिकरणाः अतः शक्त्यात्मकविद्युदेव मूलकारणमिति केषांचिन्मतमपि दृश्यते । एटमाख्यघटकानां

प्रोटोन् ही एक एटम में होते हैं। इस मत में एटम् के केन्द्र-समीपवर्ती निष्क्रिय बद्ध इलेक्ट्रोन् को पोजीट्रन् (Positron) और उनके समान संख्यक प्रोटोन् को न्यूट्रन् (Neutron) कहते हैं। इलेक्ट्रोन् में वियोगात्मक विद्युत् और प्रोटोन् में संयोगात्मक विद्युत रहती है। एक एटम् में जितने इलेक्ट्रोन् हैं उतने ही प्रोटोन् हैं अतः योगात्मक और वियोगात्मक विद्युत् समसंख्यक होने के कारण एटम् विद्युत-निरपेक्ष (Neutral) देखा जाता है। इलेक्ट्रोन्, प्रोटोन् आदि सब ही विद्युत-युक्त हैं इसलिए किसी एक का मत है कि शक्ति (Energy) स्वरूप विद्युत ही मूल कारण है। एटम् के उत्पादक प्रोटोन् इलेक्ट्रोन् आदि की संख्या के ह्रास

प्रोटोनादिसंज्ञकानां संख्याह्रासादेको धातुर्धात्वन्तरतामपि गच्छति । तस्मान्नागात्पारदस्तस्मात्सुवर्णं भवितुमर्हति । रेडियमाख्यद्रव्यान्नियतमेव हाईड्रोजनाख्यस्यावयवो निर्बाधं निर्गच्छति । सोऽपि तत्सदृशेन मिलितो हिलियमिति संज्ञां लभते । एवमवयवापचयाद्रेडियमाख्यं तत्त्वं सीसक-रूपतामवलम्बते इति । एवमाधुनिकवैज्ञानिकानां परस्पर-विरोधिनी चपलावच्चञ्चला कल्पनावली यथा शीघ्रमा-विर्भवति तथैव शीघ्रं विलुप्यते । तथापि वैज्ञानिकवर्णि-

---

और वृद्धि से एक धातु दूसरे धातु में परिवर्तित हो सकता है, इसलिए सीसा से पारा और पारा से स्वर्ण बन सकता है। रेडियम (Radium) नामक द्रव्य से प्रतिक्षण ही हाईड्रोजन् के एटम् निकलते हैं जिसका प्रतिरोध करना अब तक सभी की शक्ति से बाहर है। फिर वह हाइड्रोजन का एटम् दूसरे हाईड्रोजन के एटम् से मिलित होकर हिलीयम् (Helium) का एटम बन जाता है। इस प्रकार अवयवों का अपचय होते होते रेडीयम् नामक द्रव्य कुछ समय में सीसा बन जाता है। इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों की विद्युत्-वत चंचल कल्पनावली जैसी शीघ्र अविर्भूत होती है ऐसी ही शीघ्र लुप्त हो जाती है। तथापि वैज्ञानिक वर्णित इलेक्ट्रोन् आदि द्रव्य भूत होसकते हैं

तानि इलेक्टोनादिसंज्ञाभाञ्जि भूतानि नवेति विचार्यते। एटमाख्यस्य समवायिकारणानां इलेक्ट्रोनादिसंज्ञावतामेषां शक्तिरूपता न सम्भवति समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति निश्चयः। किंचादिकारणस्य शक्तिरूपत्वे तदाश्रयभूतं किंचिद्द्रव्यमपि वाच्यमेव। द्रव्याश्रयमन्तरेण शक्तेरवस्थानासम्भवात्। द्रव्याद् द्रव्योत्पत्तिस्तु शास्त्रयुक्तिप्रत्यक्षादिसिद्धा, किन्तु शक्तिमात्राद् द्रव्योत्पत्तिः सर्वथा विरुद्धैवाभाति। प्रोटोनादिसंज्ञाभाजामपि गुरुत्वादिकं द्रव्यधर्मं वर्णयन्ति वैज्ञानिकाः। किन्तु शक्तिमात्रे गुरुत्वादिकं कथमपि कल्पयितुं

या नहीं इसका विचार किया जाता है।

इलेक्ट्रोन्, प्रोटोन् आदि शक्तिस्वरूप नहीं हो सकते क्योंकि ये सब एटम् के समवायीकारण हैं और समवायीकारण द्रव्य ही हो सकता है, ऐसा नियम है। दूसरी बात यह है कि आदिकारण को शक्तिस्वरूप माना जावे तो उस शक्ति का आश्रय कोई द्रव्य मानना पड़ेगा क्योंकि द्रव्य के आश्रय बिना शक्ति नहीं रह सकती। द्रव्य से द्रव्य की उत्पत्ति तो शास्त्र-युक्ति और प्रत्यक्ष सिद्ध है किन्तु केवल शक्ति से द्रव्य की उत्पत्ति सर्वथा विरुद्ध मालूम पड़ती है। प्रोटोन आदि में गुरुत्व आदि द्रव्य धर्म को वैज्ञानिक भी मानते हैं किन्तु शक्ति में गुरुत्वादि की कल्पना

न शक्यते। तस्मादेषां सूक्ष्मा द्रव्यतत्र शाक्या। सूक्ष्माणां हि तेषां द्रव्याणां परीक्षासिद्धमस्तित्वं न निराक्रियते किंतु तान्यपि न मूलानि नवा भूतानि इति मन्यते। कथमिति चेद् उच्यते—प्रोटोन्संज्ञकानि इलेक्ट्रोन्संज्ञकापेक्षयाऽतिगुरूणि (१८७२ गुणगुरूणि) इलेक्ट्रोन्संज्ञकानि लघून्यपि प्रोटोनाख्यस्य समानशक्तिमन्ति। अतिमात्र(६०००० वोल्ट) विद्युत्प्रयोगादेतान्यपि सहस्रधा विभज्यमानानि यन्त्रादिसाहाय्येन प्रत्यक्षयोग्यानि चैतानि श्रूयन्ते। ततः स्थूलानि विभाज्यानि चेति सिध्यति। तस्मान्न तानि

किसी प्रकार से भी नहीं हो सकती है, अतएव इनको द्रव्य ही कहना पड़ेगा। इन सूक्ष्म द्रव्यों के परीक्षासिद्ध अस्तित्व का खण्डन करना नहीं चाहते हैं किन्तु ये भी न मूल हैं, न भूत हैं, ऐसा मानते हैं।

प्रश्न—क्यों

उत्तर—इलेक्ट्रोन् से प्रोटोन् अत्यन्त भारी है (१८७२ गुण भारी)। इलेक्ट्रोन् लघु है किन्तु प्रोटोन् के समान शक्तिशाली है। अत्यधिक मात्रा की (६०००० वाल्ट) विद्युत के प्रयोग से इलेक्ट्रोन् प्रोटोन् भी हजारों भागों में विभक्त हो जाते हैं तथा यन्त्रादि की सहायता से इनका प्रत्यक्ष भी होता है, ऐसा भी सुना जाता

मूलकारणानि नवा भूतानीति, किंतु सर्वाण्येव शब्दादि पञ्चेन्द्रियार्थाधिष्ठानानि पाञ्चभौतिकान्येव स्थूलजलादिवदिति युक्त्या सिध्यति। कथमेतानि शब्दादिमन्ति इति चेद्। उच्यते—कारणस्य निर्गुणत्वे संयोगमात्राद् गुणोत्पत्तिर्न भवितुमर्हति। कारणेऽवस्थिता गुणाः संयोगवैचित्र्याद् व्यक्ता भवितुमर्हन्ति। 'कारणगुणाः कार्यगुणमारभन्त' इति न्यायात्, किंतु कारणे सर्वथाऽनवस्थिता अतोऽलीका गुणाः कारणव्यापारादिना संयोगादिना वा कदाचिन्ना-

---

है, इसलिए ये स्थूल तथा विभाज्य (विभाग के योग्य सिद्ध हो जाते हैं। अतएव ये सब भी मूल भूत नहीं हैं किन्तु शब्दादि पांचों इन्द्रियार्थों के अधिष्ठान हैं अतः ये भी स्थूल जलादि जैसे पांचभौतिक हैं, युक्ति से ऐसा सिद्ध होता है। इनमें भी शब्दादि हैं, यह कैसे सिद्ध होगा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उपादान कारण में शब्दादि गुण न हों तो केवल संयोग से शब्दादि गुणों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कारण में अवस्थित अव्यक्त गुण तो संयोगवैचित्र्य से (रासायनिक मिलन से) व्यक्त हो सकता है 'क्योंकि कारण का गुण कार्य के गुण को उत्पन्न करता है' ऐसा न्याय है किन्तु कारण में जिसका सर्वथा अभाव है ऐसा अलीक गुण कारण व्यापारादि से अथवा विचित्रसंयोग (रासायनिक मिलन) से भी कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। ऐसा होता

विर्भवन्ति । तथासति कार्यकारणव्यवस्था गुणानामपि नियमेन पञ्चता च न सिध्यति इति प्रागेव वर्णितम् । तस्मादेतान्यप्यव्यक्तपञ्चेन्द्रियार्थाधिष्ठानान्यतः पांचभौतिकानि इति वाच्यमेव । सर्वेषामपीलेक्ट्रोनूसंज्ञकानां सर्वेषाञ्च प्रोटोनूसंज्ञकानां तुल्यपरिमाणत्वे तथैटमाख्यघटक प्रोटोनाख्यसमसंख्यकाणविकगुरुत्वे स्वीकृते (तथैव वैज्ञानिकैः स्वीकृतम्) सर्वत्राणविकगुरुत्वेनाखण्डेन भवितव्यम् । किंतु बहूनां खल्वेटमाख्यानामाणविकगुरुत्वं भग्नांशेन निर्दिष्टं दृश्यते । तेन प्रोटोनूसंज्ञकानि विभिन्नपरिमाणवन्ति विभा-

---

तो कार्यकारण की व्यवस्था नहीं रह सकती थी। तथा नियमसे पांच ही गुणों की उत्पत्ति नहीं हो सकती थी, इसका पहिले भी वर्णन किया है। इसलिए इनमें भी शब्दादि पांचों गुण अव्यक्त रूप से हैं अतः ये पांचभौतिक हैं ऐसा कहना पड़ेगा। यदि सब ही इलेक्ट्रन् समान परिमाण के होते तथा सब ही प्रोटोन् समान परिमाणके होते और एक एटम् में जितने प्रोटोन् हैं उतना ही एटम् का आणविकगुरुत्व (Atomic Weight) माना जाता (वैज्ञानिक ऐसा ही मानते हैं) तो सब ही एटम् का आणविक गुरुत्व अखण्ड संख्या में होना चाहिए था किन्तु बहुत सारे एटम् के आणविक गुरुत्व भग्नांशमें वर्णित देखा जाता है (जैसे

ज्यानि चेति सिध्यति। तस्मादपि मूलभूततैषां व्याहन्यते। यदि नियमेनैकैकेन्द्रियार्थाधिष्ठानाः कथंचिदपि विभागायोग्याः पंचविधाः परमाणवः केनचिदाविष्कर्त्तुं शक्यन्ते तदैव भूताविष्कारोऽभ्रान्तो भविष्यति। ततः प्राक् सूक्ष्माविष्कारे सञ्जातेऽपि न भूताविष्कार इति। पञ्चेन्द्रियार्थाभिव्यञ्जक-विद्युत्पांचभौतिकता प्रागेव वर्णिता।

ननु अतिसूक्ष्माणामिलेक्ट्रोनादिसंज्ञितानामपि पांचभौतिकत्वे कथमेषां प्रविभाग इति चेद्। उच्यते—

क्लोरीन का आणविक गुरुत्व ३५·३६ है) इससे प्रोटोन् का विभिन्न परिमाण तथा विभाज्यता (विभाग योग्यता) सिद्ध होती है। इस से भी ये मूलभूत नहीं हो सकते। यदि नियम से शब्द-स्पर्शादि एक एक इन्द्रियार्थ के आश्रय तथा किसी प्रकार से विभाग के अयोग्य पांच प्रकार के परमाणुओं का आविष्कार करना किसी से सम्भव हो जाय तो अभ्रान्त रूप से भूत का आविष्कार कहलावेगा, इससे पहिले के आविष्कार सूक्ष्म पदार्थ के आविष्कार तो हैं किन्तु भूत के आविष्कार नहीं हैं। विद्युत् भी पांचभौतिक है क्योंकि यह पांचों इन्द्रियार्थका अभिव्यंजक है यह तो पहिले भी सिद्ध किया है।

अब प्रश्न होता है कि अतिसूक्ष्म इलेक्ट्रोन् प्रोटोन् आदि भी पांचभौतिक हैं तो इनका विभाग किस प्रकार

एटमाख्यस्याण्ववयवस्य बाह्यप्रदेशे केन्द्रकसमन्ताद् भ्रमणशीला गतिस्पर्शजनका इलेक्टोन्स् ज्ञकावयवा वायुप्रधाना वायवीया मन्यन्ते । ये खलु बद्धा निष्क्रिया (वायवीयापेक्षयाऽल्पक्रियायुक्ता बहुक्रिया अपि निष्क्रिया उच्यन्ते) स्ते तैजसाः। एते यदा केनचित्कारणेनोत्तेजिताः सक्रिया जायन्ते तदा तापालोकौ तेजोधर्मावाविर्भवतः । निष्क्रियावस्थायामपि रूपं जनयन्तो नीरूपेण वायवीयेन नाव्रियन्ते । येषां लौहसुवर्णपारदा-

---

होगा ? उत्तर यह है कि एटम् को बाह्य प्रान्त में केन्द्रक के चारों तरफ चक्कर लगाने वाले इलेकटोन् गति और स्पर्श के जनक हैं इसलिए इनको वायवीय अर्थात् वायुप्रधान पांचभौतिक समझा जाता है । एटम में बद्ध और निष्क्रय (वायवीय इलेक्ट्रोन् की अपेक्षा से अल्प क्रिया-शील होने के कारण वास्तव में बहु-क्रिया-शील भी निष्क्रय माना जाता है) इलेक्ट्रोन् को तैजस अर्थात् तेजप्रधान पांचभौतिक समझना चाहिये । ये इलेकटोन जब किसी कारणसे उत्तेजित होकर सक्रिय होते हैं तब उत्ताप और आलोक उत्पन्न होता है जो तेज का धर्म है । निष्क्रिय अवस्था में भी ये रूप को उत्पन्न करते हैं । यद्यपि वायवीय अवयव से ये घिरे रहते हैं तथापि वायु में रूप होने के कारण वायवीय इलेकट्रोन् रूप को आवृत नहीं कर सकते (ढक नहीं सकते)

दीनामेटमाख्याऽवयवे एतादृशतैजसावयवानां वायवीया-वयवापेक्षयाधिक्यं तेषामतिगुरूणामपि तैजससंज्ञा धातुसंज्ञा च प्राचीनैरङ्गीकृता। तेजसश्च गुरुत्वहीनतेति विरुद्धकथनमपि अविरुद्धं भवति। केन्द्रकस्थितानां प्रोटोन्संज्ञकानां मध्ये ये रसाधिकास्ते जलीयाः ये च गन्धाधिकास्ते पार्थिवा इति। यथार्वाचीनैरिलेक्ट्रोन्संज्ञके विद्यमानमपि गुरुत्वं न गण्यते केवलं प्रोटोन्संज्ञकस्यैव गुरुत्वं गण्यते, एवं प्राचीनैरपि क्षितिजलयोरेव गुरुत्वं वर्णितं, वायुतेजसोर्लघुत्वमिति

लोह, सुवर्ण, पारद आदि जिन द्रव्यों के एटम में वायवीय इलेक्ट्रोन की अपेक्षा से तैजस इलेक्ट्रोन की संख्या अधिक है वे कितने ही गुरुत्व-शाली (भारी) हों, प्राचीन दार्शनिकों ने उनको तैजस बताया है। अथच तेज में गुरुत्व नहीं है ऐसा मानते हैं लेकिन तैजस सुवर्ण अत्यन्त गुरु है, प्राचीनोंका यह विरुद्ध कथन भी इस प्रकार से सत्य हो जाता है। केन्द्रक में अवस्थित प्रोटोनों में जो जो अधिक रस-युक्त हैं वह जलीय हैं तथा जो जो अधिक गन्ध-युक्त हैं वह पार्थिव हैं, जैसा कि आधुनिक वैज्ञानिक इलेक्टोन् में गुरुत्व स्वीकार करके भी उसके गुरुत्व को नहीं गिनते किन्तु केवल प्रोटोन् के गुरुत्व को ही गिनते हैं वैसा ही प्राचीन दार्शनिकों ने भी पृथिवी और जल में ही गुरुत्व माना है, तेज और वायु में लघुत्व माना है, इस रहस्य को समझना चाहिए। वायवीय

रूपेण परिणमन्ते किन्तु एकजातीयेनावयवेनान्यजातीयानामवयवानामुत्तेजनं सञ्जायत इति मन्यते। तत्रापि वायवीयानां तैजसानाञ्चावयवानां नियतसंख्यकत्वात्तापालोकगतिविद्युतां परिमाणमपि कलयितुं शक्यते। सर्वेषामेवैटमाख्यानामणववयवानां घटकेषु केचित् पार्थिवाः केचिज्जलीयाः केचित्तैजसाः केचिद्वायवीयाः केचिच्चाकाशीयाः। ततः सर्व एव दृश्या अदृश्या वा पञ्चमहाभूतजन्याः पांचभौतिकाः। भूतत्वन्तु परमाणूनामेव तेषामपि पंचजातीयेन्द्रियार्थाधिष्ठानत्वात्पञ्चैव भूतानि इति सत्योऽयमार्षः

नहीं होता किन्तु एकजातीय अवयव से अन्यजातीय अवयव की उत्तेजना होती है ऐसा समझना चाहिए। एटम् में वायवीय और तैजस अवयव की संख्या नियत है इसलिए ताप, आलोक, गति और विद्युत् का हिसाब लगाना भी सम्भव है। सब ही एटम् के घटकों में से कुछ पार्थिव, कुछ जलीय, कुछ वायवीय, कुछ तैजस और कुछ आकाशीय हैं इसलिए यह दृश्यादृश्य सब ही पांच भूत से उत्पन्न होने वाले पांचभौतिक और केवल परमाणु भूत हैं। परमाणु भी पांच प्रकार के इन्द्रियार्थ के अधिष्टान हैं इसलिए पांच ही भूत हैं। इस प्रकार सर्वथा सत्य आर्ष सिद्धान्त को कोई भी हिला नहीं सकता। कहा जाता है कि—एक एक

सिद्धान्तः कथमपि कम्पयितुं न शक्यत इति। तथा चोक्तम्—

एकेन्द्रियार्थाधिष्ठानमनादिनिधनञ्च यत्।
अविभाज्यं भूतं विद्यात्तदुत्पन्नं तु भौतिकम्॥

इत्याधुनिकवर्णितेलेक्ट्रोनादीनां पांचभौतिकत्व-
निरूपणाख्यः षष्ठोऽध्यायः

इन्द्रियार्थ के अधिष्ठान, अनादि अविनाशी और अविभाज्य द्रव्य ही भूत हैं और उनसे उत्पन्न होने वाले सब भौतिक हैं।

आधुनिक वर्णित इलेक्टान् आदि का पांचभौतिकत्व
निरूपण नामक षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तमोऽध्यायः

परमाणुतन्मात्रयोर्भेदोऽभेदो वा ?

नन्वाकाशादिपंचविधाः परमाणव एव शब्दादिपंचतन्मात्राणि इत्युक्तं, तन्नु न संगच्छते भेदसाधकप्रमाणसद्भावादिति। किन्तद्भेदसाधकं प्रमाणमिति चेद्। उच्यते—शब्दादितन्मात्राण्येकैकविषयाधिकरणानि आकाशादिपरमाणवश्चैकानेकविषयाधिकरणा इत्येको भेदः। परमाणवो नित्याः अपरिणामिनश्च परमाणुवादिभिरभिधीयन्ते

परमाणु और तन्मात्र भिन्न पदार्थ हैं या अभिन्न ?

प्रश्न होता है कि आकाशादि पांच प्रकार के परमाणुओं को ही पंचतन्मात्र नाम से पहले उल्लेख किया है लेकिन यह ठीक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि तन्मात्र और परमाणुके भेदसाधक प्रमाण भी विद्यमान हैं। भेदसाधक प्रमाण यह हैं—सांख्यशास्त्र में प्रत्येक तन्मात्र में एक एक इन्द्रियार्थ (शब्दादि) माने गये हैं और न्याय-वैशेषिक में किसी परमाणु में एक और किसी परमाणु में अनेक गुण मानेगये हैं, यह तो प्रथम भेद है। परमाणुवादी के मत में परमाणु नित्य और अपरिणामशील है तथा

शब्दादितन्मात्राणि चानित्यानि नियतपरिणामशीलानीति तन्मात्रवादिभिरुच्यते। अहंकारात्पंचतन्मात्राणि जायन्त इत्यादिस्पष्टवचनैरहंकारात्तन्मात्राणामुत्पत्तिरहंकारे च तन्मात्राणां लयः, उत्पत्तिलयशीलानां चानित्यतेति द्वितीयं महद्भेदसाधकं प्रमाणमिति। अत्र समाधीयते—पांचभौतिकत्वेऽपि महाभूतनाम्ना कथंचिद् व्यवह्रियमाणानां स्थूलपृथिव्यादीनामनेकेन्द्रियार्थाश्रयत्वेऽपि भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वं प्रागेव युक्त्या प्रतिपादितमिति प्रथमं भेदसाधकप्रमाणं नोपपद्यते।

तन्मात्रवादी के मत में तन्मात्र नियतपरिणामशील और अनित्य है। अहंकार से तन्मात्र की उत्पत्ति और अहंकार में पंचतन्मात्र का लय सांख्यशास्त्र में स्पष्टवाक्यों से वर्णित है। उत्पत्ति विनाशशील द्रव्य अनित्य होता है, कभी नित्य नहीं हो सकता, यह द्वितीय महान् भेदसाधक प्रमाण है। इसका समाधान किया जाता है—पांचभौतिक होते हुए भी कथंचिद् महाभूत नाम से व्यवहृत होने वाले पृथिवी आदि में अनेक गुण होते हैं किन्तु भूत में एक एक गुण ही हो सकता है यह तो पहिले ही युक्ति-तर्क से सिद्ध किया है, इसलिए प्रथम भेदसाधक प्रमाण तो हमारे सिद्धान्त में लागू नहीं हो सकता।

नासदुत्पद्यते न च सद्विनश्यतीति सांख्यसिद्धान्त आधुनिकजडवैज्ञानिकैरपि स्वीक्रियते । तस्माद्द्वयवयोरवयवानां वा विशिष्टसम्बन्धादेव जन्यानामुत्पत्तिस्तत्सम्बन्धविश्लेषाच्च जन्यद्रव्यनाश इत्युत्पत्तिविनाशयोस्तत्त्वमवसीयते । एवं सत्येकावयवानां परमाणूनामुत्पत्तिविनाशौ यथा न सम्भवतस्तथैवैकावयवानां तन्मात्राणामप्युत्पत्तिविनाशौ न सम्भवत इति । तन्मात्राणामप्यनेकावयवत्वे तेषामपि स्थूलत्वात् सूक्ष्मभूतसंज्ञा न संगच्छते । यदपेक्षया सूक्ष्म-

---

"असत् की उत्पत्ति नहीं होती तथा सत् (विद्यमान) पदार्थ का विनाश नहीं हो सकता" सांख्यशास्त्र के इस सिद्धान्त को जड़ वैज्ञानिक भी ऐसा ही मानते हैं। इसलिए दो या बहु अवयवों के विशिष्टमिलन से कार्यद्रव्य की उत्पत्ति और विशिष्ट मिलन के विश्लेषण से कार्य द्रव्य का नाश माना जाता है (यहां संयोग और विभाग मात्र ही उत्पत्ति और विनाश व्यवहार के कारण साबित होते हैं) इस नियम के अनुसार एकावयव परमाणु के उत्पत्ति और विनाश जैसे असम्भव हैं वैसे ही एकावयव तन्मात्र की उत्पत्ति और विनाश भी असम्भव है। पंचतन्मात्र में भी अनेक अवयव मानें तो उसके भी किसी से स्थूल होने के कारण सूक्ष्मभूत नहीं कह सकते। जिसकी अपेक्षा से अन्य सूक्ष्म भी हो उसको सूक्ष्म न

मप्यस्ति न तस्य सूक्ष्मसंज्ञा किंतु मध्यमसंज्ञैव संगच्छते। शब्दादिरहितादेकस्मादहंकाराच्छब्दादिगुणवतां पंचतन्मात्राणामुत्पत्तिर्न युक्तिप्रमाणसिद्धा भवितुमर्हति। भूतगतविशेषगुणानां सजातीयकारणगुणजन्यतानियमस्य सांख्यभाष्यकारैरपि ३। २२ सूत्रभाष्ये स्वीकारदर्शनात्। पंचतन्मात्राणामुत्पत्तिस्वीकारेऽपि नाहंकारस्तन्मात्रकारणं संगच्छते किंतु शब्दादिगुणवन्ति पंचसूक्ष्मद्रव्याण्येव कारणानि भवितुमर्हन्ति किंतु तान्यपि तन्मात्रान्नातिरिच्यन्त इति विभाव्यम्।

कह कर मध्यमपरिमाण कहा जाता है। शब्दादिरहित एकमात्र अहंकार से शब्दादि विभिन्नगुण-विशिष्ट पांच प्रकार के तन्मात्र की उत्पत्ति भी युक्ति-तर्क-प्रमाण-सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि "भूतगतविशेषगुण (शब्द, स्पर्शादि) सजातीय कारण के गुण से ही उत्पन्न होता है" इस नियम को सांख्यदर्शन के भाष्यकार ने ३। २२ सूत्र के भाष्य में स्पष्ट वाक्य से स्वीकार किया है। शब्दतन्मात्रादि की उत्पत्ति को स्वीकार कर लिया जावे तो भी शब्दादि रहित अहंकार से उनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती किन्तु शब्दादि एक एक गुणविशिष्ट पांच प्रकार के सूक्ष्म द्रव्य से पांच तन्मात्र की उत्पत्ति मानी जा सकती है। फिर भी यह कारण पंच तन्मात्र के अतिरिक्त द्रव्य नहीं होगा क्योंकि शब्दादि एक एक

यत्तु भाष्यकारेण हरिद्राचूर्णसंयोगाद्रक्तरूपस्येवाहंकारेऽविद्यमानानामपि शब्दादीनामुत्पत्तिर्विशिष्टसंयोगवशादेव भवतीति १।६२ सूत्रभाष्ये लिखितं तत्रापि विचार्यं यद् हरिद्राचूर्णसंयोगाद् रूपरहितं वस्तुन रूपवज्जायते किंतु कारणरूपयोर्मिलनाद् रूपान्तरमेव जायते नैतावता निर्गुणकारणात् सगुणकार्योत्पत्तिः कथमपि कल्पयितुं शक्यते सत्कार्यवादिभिः। तस्मादहंकारात्तन्मात्राणामुत्पत्तिर्न सम्भाव्यते। एवमसम्भवोत्पत्तिकानामतएवैकावयवानां तन्मात्राणां नाशोऽपि न

गुणविशिष्ट परमसूक्ष्म द्रव्य को ही तन्मात्र माना जाता है।

१।६२ सूत्र के भाष्य में भाष्यकारने जो लिखा है कि यद्यपि अहंकार में शब्दादि गुण नहीं हैं तथापि जैसे हरिद्रा और चूने के संयोग से रक्त वर्ण की उत्पत्ति होती है वैसे ही अवयवों के विशिष्ट संयोग से ही तन्मात्र में शब्दादि पांच गुणों की उत्पत्ति होती है। इस पर विचार करना चाहिए कि हरिद्रा और चूने के संयोग से रूपहीन पदार्थ रूपवान् नहीं बनता किन्तु हरिद्रा में भी रूप है और चूने में भी, फिर दोनों रूपोंके मिलन से तीसरा रूप बन जाता है। इस दृष्टांतसे निर्गुण कारणसे सगुण कार्यकी उत्पत्ति का समर्थन नहीं हो सकता अतएव शब्दादिरहित अहंकार से पंचतन्मात्र की उत्पत्ति असम्भव है। इस प्रकार से जिनकी उत्पत्ति असम्भव है ऐसे एकावयवविशिष्ट परमाणुओं का नाश भी

सम्भवति "नाशः कारणलय" इति सांख्यसिद्धान्ते मध्यमपरिमाणानामनेकावयवानामवयवविश्लेषणपूर्वकं कारणलये लीनपदार्थस्य गुणधर्मयोर्व्यतिक्रमदर्शनाद्विनाशशब्दस्तत्र संगच्छते किंतु सूक्ष्माणामेकावयवानां तन्मात्राणामवयवविश्लेषासम्भवात्तेषां कारणलयेऽपि स्वरूपगुणधर्मादीनां तथैवावस्थानात्तत्र नाशशब्दो न संगच्छत इति लयोत्पत्तिरहितानां तन्मात्राणामपि परमाणुवन्नित्यत्वमेव

नहीं हो सकता। सांख्यशास्त्र में माना गया है कि "नाशः कारणलयः" अर्थात् कारण में लीन हो जाने को ही नाश कहते हैं। वास्तव में किसी सत् पदार्थ का नाश नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार अनेकअवयवविशिष्ट मध्यमपरिमाणद्रव्यों के अवयवों का विश्लेषण होकर कारणमें लीन होने के बाद उस लीन पदाथ के गुण-धर्म में व्यतिक्रम आ जाता है अतः उसका विनाश हुआ है, ऐसा प्रयोग तो संगत हो सकता है किन्तु परम सूक्ष्म एकावयवविशिष्ट तन्मात्र का अवयव विश्लेषण होना असम्भव है इसलिए यदि तन्मात्र कभी अपने कारण में लीन भी हो जावे तो भी उसके गुण-धर्म का कुछ व्यतिक्रम नहीं हो सकता, अतएव 'तन्मात्र का विनाश हुआ' ऐसा प्रयोग भी संगत (ठीक) नहीं हो सकता। अतएव उत्पत्ति-विनाश-रहित तन्मात्र की भी परमाणु के समान ही नित्यता सिद्ध हो जाती है। श्रुति में लिखा है

सिध्यति। "विकारजननीं मायामष्टरूपामजां ध्रुवाम्" इति श्रुतावपि अष्टरूपां प्रकृतिमेवाजां ध्रुवाञ्चाह। किञ्च "षड्धातुजस्तु पुरुषो रोगाः षड्धातुजास्तथा, राशिः षड्धातुजो ह्येष सांख्यैराद्यैः प्रकीर्तितः" इति चरकवचनादवगम्यते यदाद्ये कापिले सांख्यशास्त्रे षडेव धातवो नित्या वर्णितास्ते खलु धातवोऽपि चरकेणैव स्पष्टमभिहिताः "षड्धातवः समुदिता लोक इति संज्ञां लभन्ते, तद्यथा पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं ब्रह्मचाव्यक्त"

कि विकारजननी माया अष्टरूपा अजा और ध्रुवा है। यहां अष्टरूपा (प्रकृति, महान, अहंकार और पांच तन्मात्र ये आठ प्रकृति हैं) प्रकृति के लिये अजा और ध्रुवा शब्द का प्रयोग हुआ है, अजाका अभिप्राय जन्मरहित और ध्रुवा का अभिप्राय विनाशरहित समझा जाता है। इससे भी तन्मात्र की नित्यता सिद्ध होती है। और भी—"षड् धातु से पुरुष उत्पन्न होता है और रोग भी षड् धातु से ही उत्पन्न होता है। षड् धातुओं की इस राशि को आद्य (प्राचीन) सांख्याचार्यों ने वर्णन किया था" चरकसंहिता के इस प्रकार के वर्णन से अनुमान किया जाता है कि आद्य अर्थात् कपिलनिर्मित सांख्यशास्त्र में षट् धातुओं को नित्य वर्णन किया गया था। उन षट् धातुओं के नाम भी चरक जी ने लिखे हैं कि—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और अव्यक्त ब्रह्म ये ६ धातु मिलित होकर "लोक" नाम को प्राप्त करते हैं। क्योंकि

मिति । यस्मादेत एव समुदिताः लोकशब्दवाच्यास्तस्मादेत एवादिकारणभूता नित्या इति प्राचीनं सांख्यमतमासीदिति चरकवचनादनुमीयते, तन्मतप्रतिपादकानां शास्त्राणामलाभादेव भाष्यकारेण कालार्कभक्षितं सांख्यशास्त्रज्ञान-सुधाकरमित्युक्तम् । यत्तु 'प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यमि'ति सांख्यसूत्र' तत्रापि प्रकृतिशब्दादष्टौ प्रकृतयोऽवगन्तव्या एवान्यथा अष्टरूपामजां ध्रुवामिति श्रुतिविरोधः स्यात्त त्रापि भौतिकानां प्रकृतयः पंचतन्मात्राणि मनआदीनाम-

---

ये ६ द्रव्य मिलित होकर जगत बनता है अतएव ये ही आदि कारण और नित्य है । ऐसा प्राचीन सांख्यमत था, चरकवाक्य से इस प्रकार अनुमान हो सकता है । प्राचीन सांख्य के इस मत के समर्थक पुस्तक भाष्यकार विज्ञानभिक्षु जी को भी नहीं मिले थे इसलिये उन्होंने लिखा था कि कालरूपी सूर्य ने सांख्यशास्त्र—ज्ञानरूपी चन्द्रमा को ग्रस लिया है । सांख्य-सूत्र में जो लिखा है कि प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त सब अनित्य हैं, यहां भी प्रकृति शब्द से आठों प्रकृति को समझना चाहिए अन्यथा "अष्टरूपां अजां ध्रुवां" इत्यादि श्रुति से विरोध होता है । इन आठ प्रकृतियों में भौतिक द्रव्यों की प्रकृति तो पांच तन्मात्र हैं तथा अभौतिक द्रव्य मन आदि की प्रकृति अहंकार आदि तीन हैं, ऐसा भेद समझना चाहिए। फिर भी संदेह

भौतिकानां तु तिस्रोऽन्याः प्रकृतय इति विवेकः। ननु प्रकृतिशब्दस्याष्टप्रकृतिवाचकत्वे कथं 'प्रकृतिपुरुषयो' रत्रद्विवचनमिति चेद्। उच्यते—यथा पुरुषबहुत्वेऽपि पुरुषे एकत्वारोपस्तथा प्रकृतावपीति। यत्तु तन्मात्राणां नियतपरिणामित्वं परमाणूनां च परिणामित्वमिति भेदः कल्प्यते तत्रापि वाक्यभेद एव न वस्तुभेदस्तथापि द्व्यणुकादिकार्यकराणामपि अपरिणाममेव मापंते नैयायिका वैशेषिकाश्च किंतु कार्योत्पादकानां विसदृशप-

---

होता है कि प्रकृति शब्द से यदि आठ ही प्रकृति समझी जावें तो सांख्य-सूत्र का 'प्रकृति पुरुषयोः' ऐसा द्विवचन ठीक नहीं लग सकता बहुवचन प्रयुक्त कर 'प्रकृतिपुरुषाणां' ऐसा लिखना चाहिए। इस सन्देह का उत्तर यह है कि जैसे बहुपुरुषों के लिए भी पुरुष शब्द के ऊपर एकवचन प्रयुक्त हो सकता है ऐसे ही बहु (आठ) प्रकृति के लिए भी प्रकृति शब्द के ऊपर भी एकवचन प्रयुक्त हो सकता है। 'तन्मात्र नियतपरिणामशील है और परमाणु अपरिणामी है' ऐसा जो भेद दिखाया गया है इसमें शब्दभेदमात्र है वस्तु-भेद नहीं क्योंकि न्याय-वैशेषिकदर्शन में माना गया है कि परमाणु जब द्व्यणुकादि कार्य को उत्पन्न करते हैं तब भी परमाणु अपरिणामी ही रहता है और सांख्यशास्त्र में माना जाता है कि कार्य को उत्पन्न करते समय कारणके विसदृश परिणाम होते हैं और जब कार्य को उत्पन्न नहीं करता तब सदृश परिणाम होता है।

रिणामसकार्योत्पादकानां च सदृशपरिणामं कथयन्ति सांख्याचार्य्याः तस्माद्वाक्यभेद एव नतु वस्तुभेद इति । एवं परमाणुतन्मात्रयोर्भेदसाधकप्रमाणानि दुर्बलानि अभेदसाधकप्रमाणानि बलवन्तीत्यभेद एव तन्मात्रपरमाणूनामिति । तथा चोक्तम्—

आचार्याणां हि सर्वेषां वाक्यभेदे महत्यपि ।
तन्मात्रपरमाणूनां भेदः कश्चिन्न दृश्यते ॥
एकेन परमाणुर्यः सोऽन्यैस्तन्मात्रमुच्यते ।
वाक्यभेदो महांस्तत्र वस्तुभेदो न दृश्यते ॥

इति परमाणुतन्मात्रयोरभेदनिरूपणाख्यः सप्तमोऽध्यायः ।

इससे मालूम पड़ता है कि दोनों दर्शनों में वाक्यभेद होते हुए भी वस्तुभेद नहीं है। इस प्रकार परमाणु और तन्मात्र का भेदसाधक प्रमाण दुर्बल और अभेदसाधक प्रमाण बलवान् है इसलिए दोनों में अभेद ही है। कहा भी जाता है कि—

परमाणु और तन्मात्र में कुछ भेद नहीं है। एक दर्शन में जिनको परमाणु कहते हैं दूसरे दर्शनमें उन्हींको तन्मात्र कहते हैं।

परमाणु और तन्मात्र का अभेद निरूपणनामक

सप्तमअध्याय समाप्त

अष्टमोऽध्यायः

द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वेति विचार्यते। तत्र द्रव्याणां प्रत्यक्षं न केनचिदिन्द्रियेण कदाचित् सम्भवति श्रोत्रादिभिरिन्द्रियैर्द्रव्यस्थितानां शब्दादिगुणानामेव प्रत्यक्षं जायते। एवं द्रव्यगताः प्रत्यक्षयोग्याः परिमाणादयोऽपि गुणा एव। न द्रव्यप्रत्यक्षमस्ति न वा द्रव्यप्रत्यक्षसाधकमिन्द्रियमप्यस्ति। यानि खलु श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि तान्यपि शब्दादिगुण-

---

द्रव्य, गुण के आश्रय होने से गुण से भिन्न हैं अथवा गुण समुदाय ही द्रव्य हैं अतः द्रव्य और गुण में अभेद है इस पर विचार किया जाता है। एक सम्प्रदाय का मत है कि द्रव्य का प्रत्यक्ष कभी किसी इन्द्रिय से नहीं हो सकता क्योंकि श्रोत्रादि इन्द्रियों से द्रव्यगत शब्दादि गुण का ही प्रत्यक्ष होता है इस प्रकार द्रव्यस्थित प्रत्यक्षयोग्य, परिमाण गुरुत्व आदि भी गुण हैं इसलिए गुण का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं होता। द्रव्य के प्रत्यक्षके लिए कोई इन्द्रिय भी नहीं है। श्रोत्रादि सब ही इन्द्रियां एक एक गुण अर्थात् शब्द, स्पर्श, आदि एक एक इन्द्रियार्थ की

ग्राहकाणि न तु द्रव्यग्रहणसमर्थानीति। द्रव्याणां पांचभौतिकत्वादिन्द्रियाणां च नियमेनैकैकभूतगुणग्राहकत्वान्नैकेन्द्रियेण द्रव्यग्रहणसम्भावनाप्यस्ति। न वा मिलितैरिन्द्रियैर्युगपत् किंचिज्ज्ञानमुत्पद्यते, तस्माद्द्रव्यस्य प्रत्यक्षमेव न सम्भवति। यस्य प्रत्यक्षं कदाचिदपि न सम्भवति तत्र व्याप्तिज्ञानासम्भवादनुमानमपि न जायते। यदुक्तं चरकाचार्येण, "प्रत्यक्षपूर्वं त्रिविधं त्रिकालं चानुमीयते।" एवं द्रव्यस्य प्रमाणासिद्धत्वाद् गुणसमुदायेषु द्रव्यमित्यौपचारिकी संज्ञा परिकल्पितेति चेद्। उच्यते—न गुणसमु-

---

ग्राहिका हैं, द्रव्य की ग्राहिका नहीं है। द्रव्य पांचभौतिक है और सब ही इन्द्रियां एक एक भूत के गुण को ग्रहण करने में समर्थ हैं अतः किसी एक इन्द्रिय से द्रव्य का प्रत्यक्ष होना सम्भव नहीं। सब इन्द्रियां मिल कर कभी एक ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकतीं इसलिए द्रव्य का प्रत्यक्ष कभी नहीं हो सकता। जिसका कभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता उसमें व्याप्तिज्ञान भी नहीं हो सकता, इसलिए उसका अनुमान भी नहीं हो सकता। श्रीमान् चरकाचार्य ने भी लिखा है कि 'प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान होता है।' इस प्रकार से द्रव्य कभी प्रमाण-सिद्ध नहीं होता, केवल गुणसमुदाय में "द्रव्य" शब्द का लाक्षणिक प्रयोग होता है। वास्तव में द्रव्य

दायेषु द्रव्यसंज्ञा । यस्मादाश्रयमन्तरेण स्थातुं न शक्नुवन्ति गुणास्ततः स्वाश्रयद्रव्यापेक्षया अप्रधानत्वादेव गुणसंज्ञा गुणानामिति ।

किंच निर्गुणक्रियत्वाद्गुणानामाश्रयभूतद्रव्यमन्तरेण विप्रकीर्णानां संयोगाख्यः समुदाय एव न सम्भवति तस्मान्न गुणसमुदाय एव द्रव्यमिति । यद्यपि द्रव्याण्यपि निर्गुणानि न सन्तीति नैतावता द्रव्यगुणयोरभेदः । द्रव्ये गुणाः सन्तीति यथा प्रतीयते गुणेषु द्रव्यमस्तीति न

रूप से कुछ पृथक् पदार्थ नहीं है । इस प्रकार के सिद्धान्त के प्रति वक्तव्य यह है कि—गुण समुदाय का नाम द्रव्य नहीं है । क्योंकि गुण कभी अपने आश्रय-द्रव्य को छोड़ कर नहीं रह सकता । अतएव द्रव्य आश्रय है और गुण आश्रित है । आश्रय से आश्रित अप्रधान होता है इसलिए इनको गुण (अप्रधान) कहा जाता है ।

दूसरी बात यह है कि गुण कभी गुण या क्रियाका आश्रय नहीं होता । यदि इनका आश्रय कोई द्रव्य न हो तो सब गुण परस्पर अलग २ रहेंगे, इनका संयोग नहीं हो सकेगा क्योंकि संयोग भी गुण है, वह गुण में नहीं रह सकता और गुणोंका संयोग न होने से गुण-समुदाय भी नहीं बन सकेगा । अतः गुणसमुदाय को द्रव्य नहीं मान सकते । यद्यपि द्रव्य भी गुण को छोड़कर नहीं रहता किन्तु इतने से ही द्रव्य और गुण अभिन्न नहीं हो सकते,

तथा केनचित् प्रतीयते इति । तस्माद् द्रव्येषु गुणा आश्रिता द्रव्यं च गुणानामाश्रय इति पात्रतैलवदुभयोर्भेदः स्फुट एव ।

यत्तु गुणानामेव प्रत्यक्षमिति कल्पनं तदप्ययुक्तमेव । यतो द्रव्यं पश्यामीति सार्वजनिकोऽनुभवो न द्रव्यरूपं पश्यामीति । किं च रूपादीनां निष्क्रियत्वाद् द्रव्याश्रयमन्तरेणेन्द्रियसन्निकर्ष एव न सम्भवति कुतः प्रत्यक्षयोग्यतेति ।

क्योंकि "द्रव्य में गुण है" ऐसा तो सब ही अनुभव करते हैं किन्तु "गुण में द्रव्य है" ऐसा अनुभव कोई भी नहीं करता। अतएव द्रव्य में गुण अश्रित है और द्रव्य गुण का आश्रय है। इस प्रकार पात्र और तेल के समान (पात्र में तेल है न कि तैल में पात्र है) भेद सिद्ध हो जाता है।

"द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता केवल गुण का ही प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं क्योंकि 'द्रव्य को देखता हूँ' यही सब का अनुभव है किन्तु 'द्रव्य के रूप को देखता हूँ' ऐसा अनुभव किसी को नहीं होता। सब से बड़ी बात यह है कि रूपादि गुण पदार्थ में क्रिया नहीं होती इसलिए इनके द्रव्य में आश्रित होने से ही इन्द्रिय से इनका सन्निकर्ष हो सकता है किन्तु केवल गुण-पदार्थ का इन्द्रिय से सन्निकर्ष नही हो सकता। (गुण पदार्थ अपने स्थान से इन्द्रिय तक नहीं जा सकता क्योंकि गुण में क्रिया नहीं

गुणपरिवृत्तावपि द्रव्यसत्ता न नश्यतीति सर्वानुभवसिद्धत्वा-
दपि द्रव्यगुणयोर्भेद एव सिध्यति। तथा चोक्तम्—

आश्रयाश्रयिणोर्भेदः सर्वैरेवानुभूयते।
तिलेषु तैलमस्तीति न तिलस्तैलमेव हि॥

इति द्रव्यगुणयोर्भेदनिरूपणाख्योऽष्टमोऽध्यायः।

होती) फिर गुण की प्रत्यक्षयोग्यता ही कैसी ? गुण बदल जाने से भी द्रव्य की सत्ता नष्ट नहीं होती यह भी सर्वानुभव-सिद्ध है इसलिए द्रव्य और गुण भिन्न २ पदार्थ हैं यह सिद्ध हो जाता है। कहा भी जाता है कि—

आश्रय और आश्रयी का भेद सब ही अनुभव करते हैं, तिल में तैल है इसलिए तिल ही तैल नहीं है।

द्रव्य और गुण का भेद निरूपण नामक
अष्टम अध्याय समाप्त

नवमोऽध्यायः

तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?

पंचभूतवादिभिर्वर्णितस्य तेजोभूतस्य रूपमात्रगुणत्वेऽपि स्थूलतेजसः शब्दस्पर्शरूपवत्त्वमाकाशानिलानुप्रवेशादिति। तत्रापि उष्णः स्पर्शो भास्वरं शुक्लं रूपमिति व्यक्तीभविष्यति। तत्रापि भास्वरशुक्लरूपस्यालोकसंज्ञोष्णस्पर्शस्य च तापसंज्ञा लोकप्रसिद्धा। तस्मात्तापालोकाधिकरणं तेज इति। ततस्तेजसोऽत्यभिव्यक्तस्वरूपे वह्नि-

---

तेज द्रव्य है या नहीं ?

पंचभूतवादियों द्वारा वर्णित तेज नामक भूत में यद्यपि रूपमात्र गुण है तथापि स्थूल तेज में आकाश और वायु अनुप्रविष्ट हैं इसलिए इसमें शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण माने जाते हैं, फिर भी तेजमें उष्णस्पर्श और भास्वरशुक्ल रूप है यह आगे व्यक्त होगा। इसमें भास्वरशुक्ल रूप को आलोक और उष्ण स्पर्श को उत्ताप नाम से लौकिक व्यवहार में कहा जाता है, अतः ताप और आलोक के अधिकरण को तेज कहते हैं। अतएव तेज के अभिव्यक्त रूप वह्नि में ताप और आलोक ही प्रधान रूप

वपि तापालोकावेव प्राधान्येनोपलभ्येते । अन्यत्रापि यत्र तापालोकयोर्व्यस्तसमस्तयोरस्तित्वं कथंचिदनुभूयते तत्रापि तेजसोऽस्तित्वमवगन्तव्यमिति प्राच्याः प्रांचः । आधुनिकास्तु वैज्ञानिका भापन्ते न तेजो नाम किंचिद्द्रव्यमस्तीति । वह्निनाम्ना व्यवह्रियमाणे गुरुत्वायतनादिद्रव्यधर्माणामसद्भावात्तस्य द्रव्यत्वं न संगच्छते न वा तापालोकौ कस्यचिद्द्रव्यविशेषस्य नियतधर्मौ । यदा कस्यचिद्द्रव्यस्य रासायनिकपरिवर्तनं केनचित्कारणेन सम्पद्यते तदा तद्द्रव्यघटकानामणूनां स्पन्दनमपि वर्धते । एवमाण-

---

से मालूम पड़ते हैं । और भी, जहां जहां ताप या आलोक पृथक् पृथक् रूप से अथवा मिलित होकर रहते हैं वहां भी तेज का अस्तित्व समझना चाहिए, ऐसा पूर्वदेशीय प्राचीनों का मत है । आधुनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि तेज नामक कोई द्रव्य ही नहीं है । वह्नि नाम से व्यह्रियमाण द्रव्य में गुरुत्व, आयतन आदि द्रव्य-धर्म नहीं हैं इसलिए उसको द्रव्य नहीं कहना चाहिए । ताप और आलोक भी किसी द्रव्य के नियतधर्म नहीं हैं, जब किसी कारण से किसी द्रव्य में रासायनिक परिवर्तन होता है उस समय उस द्रव्य के घटक परमाणुओं का स्पन्दन भी बढ़ जाता है । इस प्रकार आणविक स्पन्दन अधिक होने से उत्ताप

विकस्पन्दनस्याधिक्यादुत्तापः संजायते। अयं खलु तापः शक्तिरेव नतु अग्निनाम द्रव्यमिति। तस्यैवाणविकस्पन्दनस्यातिवृद्धावस्थायामालोकनाम्नी शक्तिरप्युत्पद्यते नासावप्यालोकस्तेजोगुणः, किन्तु भृशं वृद्धिमासादाणविकस्पन्दनादुत्पन्ना शक्तिरेव। सर्वेषु द्रव्येषु वर्तमानाऽसौ शक्तिः कदाचित्तापरूपेण कदाचिदालोकरूपेण कदाचिद् गतिरूपेण कदाचिच्च विद्युद्रूपेणाभिव्यज्यते। एका शक्तिः कारणव्यापाराच्छक्त्यन्तररूपेणापि परिणमते। तस्मान्नियतपरिमाणात्तापान्नियतपरिमाणानामालोकगतिविद्युतामुत्पत्तिः सम्भवति। एवं नियतपरिमाणादालोकान्नियत-

---

उत्पन्न होता है यह उत्ताप (Heat) एक शक्ति है किन्तु अग्निनामक द्रव्य नहीं है। इस आणविक स्पन्दन की अतिवृद्धावस्था में आलोक नामक शक्ति उत्पन्न होती है। यह आलोक भी तेज नामक द्रव्य का गुण नहीं है किन्तु अत्यन्त वृद्धि-प्राप्त आणविक स्पन्दनसे उत्पन्न शक्ति ही है। सब द्रव्योंमें वर्तमान यह शक्ति कभी तो ताप रूप से, कभी आलोक रूप से, कभी गति रूप से और कभी विद्युत रूप से अभिव्यक्त होती है। एक ही शक्ति कारण-व्यापार से दूसरी शक्ति में परिवर्तित हो सकती है इसलिये निश्चित परिमाण ताप से निश्चितपरिमाण आलोक, गति या विद्युत की उत्पत्ति हो सकती है। नियतपरिमाण आलोक से नियतपरिमाण

परिमाणानां तापगतिविद्युतामुत्पत्तिर्नियतपरिमाणायाश्च गतेर्नियतपरिमाणानां तापालोकविद्युतामुत्पत्तिरेवं नियत-परिमाणविद्युतो नियतपरिमाणानां तापालोकगतीनामुत्प-त्तिरपि सदैव सम्भवतीति यन्त्रादिना गणितशास्त्रेण च प्रमाणीक्रियते तस्मात्तापालोकाधिकरणभूतं किंचिद्द्रव्यं नास्तीति वैज्ञानिकानामभिप्रायः ।

तत्र समाधीयते—अस्ति तेजोनाम पृथग् द्रव्यं प्रमाण-सिद्धमिति । तथाहि तेजसोऽप्यस्त्यायतनमित्युत्तप्तानां लौहपिण्डादीनामाकारवृद्धिदर्शनादवगम्यते । ननु तत्र तेज-

---

ताप, गति और विद्युत की उत्पत्ति हो सकती है। नियतपरिमाण गति से निश्चितपरिमाण ताप, आलोक या विद्युत की उत्पत्ति हो सकती है और नियतपरिमाण विद्युत से नियतपरिमाण ताप, आलोक या गति की उत्पत्ति हो सकती है। ऐसा सर्वदा होता है जिसको यन्त्रादि और गणित शास्त्र द्वारा प्रमाणित किया जाता है। अतएव ताप और आलोक का अधिकरण कोई नियत द्रव्य नहीं है, ऐसा वैज्ञानिकों का मत है।

इस विषयका समाधान किया जाता है। तेजनामक पृथक् द्रव्यही प्रमाणसिद्ध है, क्योंकि तेजका भी आयतन तप्तलौहपिण्डके आकार की वृद्धि देखकर जान सकते हैं। (शीतल लोहपिण्ड जिस रास्ते से जा सकता है उस रास्ते से वही पिण्ड गर्म होने के बाद नहीं

सा किंचित् स्थानं नाधिक्रियते किन्तूत्तप्तलौहपिण्डघटकानामणूनां स्पन्दनस्य प्रवृद्धत्वात्परस्पराकर्षणस्य च शिथिलीभूतत्वादणूनां परस्परव्यवधानमेव वर्धते तस्माल्लौहपिण्डादीनामुत्तप्तानामाकारवृद्धिरिति चेत्। उच्यते—तादृशकल्पनायां विनिगमनाविरहात् तेजसा तत्स्थानाधिकारस्याप्यपलापो न सर्वथा संगच्छत इति। अग्निदग्धे प्रस्तरे प्रविष्टोऽग्निर्यावत्स्थानमधिकरोति तत्र प्रविशज्जलं काचनलिकामध्यस्थं

जा सकता जिससे आकार की वृद्धि समझी जाती है) इस पर सन्देह होगा कि तेज लौहपिण्ड के अन्दर प्रविष्ट होकर अपने आयतन द्वारा उसके आकार को नहीं बढ़ाता किन्तु तेज के कारण उत्तप्त लौहपिण्ड के घटक अणुओं का स्पन्दन बढ़ जाता है जिससे अणुओं के परस्पर आकर्षण करने की शक्ति शिथिल पड़ जाती है अतएव अणुओं का परस्पर का व्यवधान बढ़ जाता है इसलिए उत्तप्त लोहपिण्ड का आकार बढ़ता है। इस पर वक्तव्य यह है कि इस कल्पना में कुछ विनिगमना (एक पक्ष को निश्चय करने का साधक प्रमाण) नहीं है इसलिए तेज के लोहपिण्ड के अन्दर के स्थान को अधिकृत करने को बिल्कुल अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पत्थर को जलाकर जब चूना बनाया जाता है तब जले हुये पत्थर में प्रविष्ट अग्नि जितने स्थान पर अधिकार करके रहता है, अब इस जले हुये पत्थर को जब जल में डाला

वायुमिवाग्निं बहिर्निक्षिप्य तत्स्थानमधिकरोति। नलिकातो निर्गच्छन् वायुर्यथाशब्दं जनयति तथैव प्रस्तरान्निर्गच्छन्नग्निस्तापं जनयति यद्दृष्ट्वा रासायनिकसंयोगकल्पना वैज्ञानिकानामिति।

यत्तु तेजसि द्रव्यधर्मो गुरुत्वं नास्तीति वैज्ञानिकवचनम् तदपि न विचारसहम्। गुरुत्वशब्दस्यापेक्षिकत्वात्। तथाहि—स्वशक्त्या येन यावत् सूक्ष्मं तोलयितुं शक्यते तेन तावत् सूक्ष्मं किंचिदेककं कृत्वा द्रव्याणां

जाता है तो जल जैसे २ पत्थर के अन्दर प्रवेश करता है वैसे ही वैसे अग्नि को बाहर निकाल देता है। जैसे बोतल के अन्दर जब जल प्रवेश करता है तब वहां के वायु को बाहर निकाल देता है। बोतल से निकलते समय वायु शब्द उत्पन्न करता है, ऐसे ही जले हुये पत्थर से निकलती हुई अग्नि ताप पैदा करती है, जिसको देखकर वैज्ञानिक लोग भ्रम से समझते हैं कि रासायनिक परिवर्तन हो रहा है।

वैज्ञानिकों का कथन कि तेजमें वस्तु-धर्म-गुरुत्व नहीं है, यह भी विचारसह नहीं है क्योंकि 'गुरुत्व' शब्द भी आपेक्षिक है। जिस मनुष्य की जितने सूक्ष्म द्रव्य के तोलने की शक्ति है वह उतने ही सूक्ष्म किसी द्रव्य को एकक (Unit) मानकर चीजों को तोलता है और उनके गुरुत्व का निर्णय करता है। जो द्रव्य

गुरुत्वं निर्णीयते। वायुमण्डले न्यस्तं यद्द्रव्यमधोगच्छति तस्य गुरुत्वं तदितरेषां लघुत्वमिति प्राचीनपरिकल्पिता परिभाषासीदधुनातु हाईड्रोजन संज्ञकस्याणववयवमेककं कृत्वा-णविकगुरुत्वं परिकल्पयते, तस्मात्प्राचीनैर्यः स्थूलवायु-र्लघुरुद्घोषित आसीत् सोऽपि गुरुरिति प्रमाणसिद्धं संजात-मिति स्फुटमेव। हाईड्रोजन्संज्ञकस्य स्थूलजलजनकत्वा-त्तदपेक्षया तेजस आकाशस्य च लघुत्वमेव किंतु तादृश-सूक्ष्मतोलनशक्तिविरहात्तेजसीथरसंज्ञके च गुरुत्वमेव नास्तीति कथनमपि न संगच्छते। यदीथरसंज्ञकस्याणव-

---

वायुमण्डल में छोड़े जाने पर नीचे गिरता है उसमें गुरुत्व है और इसके विपरीत द्रव्य में लघुत्व है, प्राचीनों की ऐसी परिभाषा थी। अब हाइड्रोजन के एटम् को एकक मानकर आणविक गुरुत्व का निर्णय किया जाता है इसलिए प्राचीन जिस स्थूल वायु को लघु कहते थे उस वायु का गुरुत्व अब प्रमाणसिद्ध हो गया है, यह तो स्पष्ट ही है। हाइड्रोजन स्थूल जल का उत्पादक है अतः उसकी अपेक्षा तेज और आकाश लघु ही होगा किन्तु तादृश सूक्ष्म द्रव्य को तोलने की शक्ति नहीं है इसलिये तेज और ईथर में गुरुत्व (Weight) ही नहीं है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। यदि कभी ईथर के सूक्ष्म अवयव को एकक मानकर द्रव्य

वयवमेककं कृत्वा वस्तुतोलनं कदाचित् सम्भवति तदानीं तेजोऽपि गुरुतरसंज्ञां प्राप्स्यतीति । तस्मात्तेजसि गुरुत्वं नास्तीति शपथेन नैव वक्तुं शक्यते । किंतु नास्माकं तेजस्तोलने शक्तिरस्तीति वक्तुं शक्यते, नैतावता तेजसो द्रव्यत्वं व्याहन्यते।

वस्तुतस्तु वायवीयतैजसयोरिलेक्ट्रोन्संज्ञकयोर्वर्तमानमपि गुरुत्वमुपेक्ष्य केवलं पार्थिवजलीययोः प्रोटन्संज्ञकयोर्गुरुत्वसंकलनद्वारा वैज्ञानिकैर्द्रव्यगुरुत्वं निर्णीयते तथैव प्राचीनैरपि पृथिवीजलयोर्गुरुत्वमुपदिष्टमिति प्रागेव वर्णितम् । तथा चोक्तम्—

को तोलना सम्भव हो जाय तो तेज भी, उस समय बहुत भारी सिद्ध होगा । 'इसलिए तेज में गुरुत्व ही नहीं है' यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकते । हां, इतना ही कह सकते हैं कि तेज को तोलने में हम समर्थ नहीं हैं । इससे तेज का द्रव्यत्व नष्ट नहीं होता ।

वास्तव में वैज्ञानिक लोग जैसा वायवीय और तैजस इलेक्ट्रोन् में गुरुत्व मानते हुये भी उसको छोड़कर केवल जलीय और पार्थिव प्रोटोन् के गुरुत्व से ही पदार्थ के गुरुत्व का हिसाब लगाते हैं, ऐसे ही प्राचीन दार्शनिकों ने भी केवल पृथिवी और जल में गुरुत्व का वर्णन किया है इस रहस्य को पहिले ही वर्णन किया है । कहा भी जाता है कि—

नास्माकं शक्तिरस्तीति द्रव्यं न शक्तिसंज्ञकम् ।
न सूर्यतोलने शक्तिस्तस्मान्न शक्तिरेव सः ॥

यत्तु तापालोकौ न तेजोगुणौ किंतु सर्वद्रव्येषु रासायनिकपरिवर्तनकाले समुत्पद्यमानौ शक्तिविशेषाविति वैज्ञानिकपरिकल्पनं तदपि न विचारसहम् । तथाहि—शक्तिमन्तं विहाय निराश्रया शक्तिर्न स्थातुं न वा गन्तुं प्रभवतीति वाच्यमेव । शक्तेरपि स्वप्रतिष्ठत्वे गुणक्रियाशालित्वे च द्रव्यादस्या भेदो विलुप्यते, एवं तापालोकयोर्द्रव्याश्रित-

---

हमारी तोलने की शक्ति नहीं है इसलिए द्रव्य कभी शक्तिसंज्ञक नहीं होगा। क्योंकि सूर्य को हम तोल नहीं सकते इसलिये सूर्य कभी शक्ति पदार्थ नहीं बन सकेगा।

वैज्ञानिक जो कहते हैं कि—ताप और आलोक तेज के गुण नहीं किन्तु सब ही द्रव्य में रासायनिक परिवर्तन के समय उत्पन्न होनेवाली शक्तिविशेष हैं, यह मत भी विचारसह नहीं है, क्योंकि शक्तिमान को छोड़कर निराश्रय शक्ति नहीं रह सकती और न चल ही सकती है, यह तो कहनाही पड़ेगा। यदि शक्तिभी स्वप्रतिष्ठ (आश्रय को छोड़कर रहनेवाली) और उष्ण तथा क्रिया के आश्रय होजावे तो द्रव्यसे इसका कुछ भेद नहीं रहता। इस प्रकार से ताप और आलोक यदि केवल द्रव्य के आश्रय से रह सकते और चल

योरेवावस्थानगमनसम्भवात्तदाश्रयभूतं किंचिद् द्रव्यमपि वाच्यमेवान्यथा तापालोकयोः प्रत्यक्षमेव न सम्भवतीन्द्रियेण सन्निकर्षासम्भवात्। शब्दवद् वाय्वादि *द्वारा तापालोकयोः प्रसरणमपि न कल्पयितुं शक्यते। वायुरहितप्रदेशेऽपि तयोः प्रसरणस्य वैज्ञानिकैरप्यंगीकारादत एव सूर्यस्य तापालोकौ पृथिवीमागन्तुं प्रभवत इति। अति सूक्ष्मस्येथराख्यस्य तरङ्गद्वारा तापालोकयोः प्रसरणमिति चेद्—उच्यते—ईथराख्यं द्रव्यं न वेति प्रथमं विचार्यम्,

---

सकते हैं तो ताप और आलोक का आश्रय किसी द्रव्य को ही मानना पड़ेगा। नहीं तो ताप और आलोक का प्रत्यक्ष ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि निराश्रयताप और आलोक चक्षु आदि इन्द्रिय तक जा नहीं सकेगा। शब्द जैसे वायु आदिद्वारा (वास्तवमें शब्द भी वायु आदि द्वारा नहीं फैलता है, यह आगे व्यक्त होगा) भी ताप और आलोक का सम्प्रसारण नहीं हो सकता क्योंकि वायु रहित स्थान से भी ताप और आलोकका सम्प्रसारण हो सकता है इसलिये सूर्य से पृथिवी तक ये आ सकते हैं, ऐसा वैज्ञानिक भी मानते हैं। अतिसूक्ष्म ईथर नामक पदार्थ की तरंग द्वारा ताप और आलोक फैलते हैं, ऐसा माना जावे तो ईथर द्रव्य है या

---

*शब्दोऽपि वाय्वादिद्वारा न प्रसरतीति व्यक्तीभविष्यति।

द्रव्यं चेद् गुरुत्वायतनरूपादिरहितमपि द्रव्यमिति प्रसज्यते। अद्रव्यञ्चेत् तदपि तापालोकाश्रयो न भवितुमर्हति। नन्वीथराख्यमपि द्रव्यमेव किन्त्वतीव सूक्ष्मत्वात्तत्र स्थितानामपि गुरुत्वायतनादीनां संकलनं न सम्भवतीति। तथासति द्रव्यत्वात्तापालोकाश्रयत्वं तस्य न व्याहन्यत इति चेद्। उच्यते—नेथराख्यं तापालोकवाहकमिति युक्तिप्रमाणसिद्धं भवितुमर्हति। तथाहि—अतिसूक्ष्मेहीथराख्ये प्रत्यक्षयोग्यतैव नास्ति ततस्तदाश्रितयोस्तापालोकयोरपि प्रत्यक्षायोग्यता परमाणुगुणानामिव प्रसज्यते इति प्रथमो दोषः।

नहीं इसका विचार पहिले करना पड़ेगा। ईथर को द्रव्य माना जावे तो आयतन और गुरुत्वरहित पदार्थ को द्रव्य स्वीकार करना पड़ता है, इस भय से यदि ईथर को द्रव्य ही न माना जावे तो वह भी ताप और आलोक का आश्रय नहीं हो सकता। यदि कहो कि ईथर द्रव्य तो है किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होने से उसमें विद्यमान गुरुत्व और आयतन का हिसाब नहीं लगा सकते फिर भी ईथर द्रव्य है इसलिए ताप और आलोक का आश्रय (वाहक) हो सकता है तो उत्तर में कहना पड़ेगा कि ईथर, ताप और आलोक का वाहक है यह मत युक्ति-प्रमाण-सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि ईथर अत्यन्त सूक्ष्म होने से प्रत्यक्षयोग्य ही नहीं है अतएव जैसे परमाणु के गुण में प्रत्यक्षयोग्यता नहीं है ऐसे ही

ईथराख्यस्य गतिर्न केनापि रोद्धुं शक्यते इति वैज्ञानिक-सिद्धान्तस्तत्र येन मार्गेण काष्ठप्रस्तरादिकमतिक्रम्य यावता वेगेनेथराख्यं द्रव्यं गन्तुं शक्नोति न तैनेव मार्गेण तावता वेगेन तापालोकौ गन्तुं प्रभवत इति प्रत्यक्षसिद्धमेव, ततस्तापालोकाधिकरणस्येथराख्यात् स्थूलता। जलसम्पूतनयन्त्रनिर्गताज्जलात्पंकशैवालादीनामिवेति सुतरामेव सिध्यति। किंच यदि तापालोकौ द्रव्यान्तरगुणौ ततः स्वाश्रयद्रव्यं विहायेथराख्ये

ईथराश्रित गुण में भी प्रत्यक्षयोग्यता नहीं होगी, यह प्रथम दोप है। ईथर की गति को प्रतिरोध कोई भी नहीं कर सकता, ऐसा वैज्ञानिकों का मत है इसलिये जिस रास्ते से काष्ठ, प्रस्तर आदि को पार करके जितने वेग से ईथर जा सकता है उस रास्ते से उतने वेग से ताप और आलोक नहीं जा सकते यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही है। इससे सिद्ध होता है कि ईथर से ताप और आलोक का अधिकरण स्थूल द्रव्य है। जैसे जलशोधक यन्त्र के जिस रास्ते से जल जा सकता है उस मार्ग से कीचड़, काई आदि नहीं जा सकते। इसलिये उनको जल से स्थूल समझा जाता है, वैसे यहां भी समझना चाहिए। और भी सोचना चाहिए कि यदि ताप और आलोक दूसरे द्रव्यके गुण हैं तो अपने आश्रय को छोड़ कर ईथर-नामक द्रव्य में नहीं जा सकते क्योंकि ताप और

द्रव्ये गन्तुमेव न शक्नुतो निराश्रये गुणे गत्यसम्भवा-दिति तस्मादीथराख्यात् स्थूलं तापालोकाधिकरणं द्रव्यमेव तेज इति सिद्धम् । तथा चोक्तम्—

आश्रितादाश्रितो नैव गुणः स्थूलो भवेद् ध्रुवम् ।
आश्रयो येन निर्याति तेन गुणोऽपि गच्छतु ॥
ईथराख्यस्य मार्गेण तापालोकौ न गच्छतः ।
गुणयोरेतयोस्तस्माद्वाहकोऽप्यन्य एव हि ।
तापालोकौ गुणौ यस्य यत्स्थूलमीथराख्यतः ।

आलोक गुण पदार्थ हैं । निराश्रय गुणपदार्थ में कभी गति नहीं होती । इसलिये ईथर से स्थूल ताप और आलोक का अधिकरण द्रव्य ही तेज है यह सिद्ध हुआ । कहा भी जाता है कि—

आश्रय द्रव्यसे आश्रित गुण कभी स्थूल नहीं हो सकता । अतएव जिस रास्ते से आश्रय जा सकता है उस रास्ते से आश्रितगुण भी जा सकता है । ईथर के रास्ते से ताप और आलोक नहीं जा सकते इसलिये इन दो गुणों के वाहक भी ईथर से अतिरिक्त और कोई होंगे । ताप और आलोक जिसके गुण हैं और जो ईथर

तेजस्तदेव जानीयाद्‌द्रव्यमेतन्न संशयः ।

इति तेजसो द्रव्यत्वप्रतिपादनाख्यो नममोऽध्यायः ।

से स्थूल है उसी को तेज समझना चाहिये और यह द्रव्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

तेज का द्रव्यत्व प्रतिपादन नामक नवम अध्याय समाप्त ।

दशमोऽध्यायः

आकाशस्वरूपादिविमर्शः—

आकाशं व्यापकं शब्दगुणं नित्यं चेति न्यायवैशेषिकयोर्वर्णितमथ च श्रुतावे "तस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इत्यादि स्पष्टवाक्यैरात्मन आकाशस्योत्पत्तिर्वर्णिता। सांख्ये च शब्दतन्मात्रादाकाशोत्पत्तिरभिहिता। उत्पन्नं व्यापकं नित्यं च न सम्भवतीति महानयं मतभेदस्तन्त्रकाराणामाकाशविषये दृश्यते तस्मात्सन्देहदोलाकुला भवति बुद्धिः

आकाशस्वरूपादि विमर्श—

न्यायदर्शन और वैशेषिकदर्शन में आकाश को व्यापक, शब्द-गुण-विशिष्ट और नित्य वर्णन किया गया है। किन्तु श्रुति में 'इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ', ऐसे स्पष्टवाक्य द्वारा आत्मा से आकाश की उत्पत्ति बताई गई है। सांख्यशास्त्र में भी शब्दतन्मात्र से आकाश की उत्पत्ति बताई गई है। जिसकी उत्पत्ति होती है उसको नित्य और व्यापक कहना असम्भव है, इस लिए देखा जाता है कि आकाश के विषय में शास्त्रकारों का महान मतभेद विद्यमान है, जिससे सन्देह हो जाता है कि इसमें

किमत्र तथ्यमिति। तत्र समाधीयते, परमाणुरूपाणां सर्वेषामेव पृथिव्यादीनां यथा नित्यता तथैव परमाणुरूपस्याकाशस्यापि नित्यता सम्भवति, किन्तु श्रुतिवर्णितस्य जन्यस्याकाशस्य नित्यता न सम्भवत्येव। तन्मात्रापरपर्यायस्य परमाणुस्वरूपस्य भूतस्योत्पत्तिविनाशौ न सम्भवतस्तथा चित्स्वरूपस्यात्मनो जडानां समुत्पत्तौ निमित्तकारणत्वमेव सम्भवति न तूपादानकारणत्वमिति प्रागेव प्रतिपादितम्। महाभूतस्य श्रुतिसिद्धजन्यस्य च व्यापकता श्रुतियुक्तिविरुद्धैव। तथाहि- श्रुतौ यस्योत्पत्तिरभिहिता तस्य नित्यता-व्यापकताङ्गीकारे

किसका मत असत्य है और किसका सत्य ? इस सन्देह को दूर करने के लिए समाधान किया जाता है कि जैसे परमाणुस्वरूप पृथिवी और परमाणुस्वरूप जल आदि नित्य हैं वैसे ही परमाणुस्वरूप आकाश तो नित्य हो सकता है किन्तु श्रुति में जिस आकाश की उत्पत्ति वर्णित हुई है वह आकाश नित्य नहीं हो सकता। परमाणुस्वरूप तन्मात्र नामक भूत की उत्पत्ति या विनाश नहीं हो सकते। तथा चेतन आत्मा जड़ जगत का कर्ता तो हो सकता है किन्तु उपादान कारण नहीं हो सकता इस बात को पहिले ही वर्णन किया गया है। श्रुति में जिसकी उत्पत्ति का वर्णन है ऐसे भूत को व्यापक कहना भी श्रुति और युक्ति-विरुद्ध

श्रुतिविरोधो दुर्निवार एव। तथा गुणवदुपादानस्यादि-कारणस्यैव भूतत्वे भूतनाम्ना वर्णितस्याकाशस्य व्यापकत्वं युक्तिविरुद्धमेव। तथाहि—व्यापकस्य विभागासम्भवादविभक्त-मेवाकाशमुपादानम् इति वाच्यं स्यादथ च व्यापकमेकं परि-च्छिन्नानामवयवपदवीभाग्भवतीति नैव वक्तुं शक्यते। अवयव्यपेक्षयावयवानां क्षुद्रतैव सर्वत्र दृश्यते। यदि

है। क्योंकि श्रुति में जिसकी उत्पत्ति वर्णित हुई उसको नित्य या व्यापक कहने से श्रुति के साथ स्पष्ट विरोध हो जाता है। गुणवान के उपादान और आदि कारण को भूत कहा जावे (वैसा ही भूतलक्षण किया गया है। आदिकारण को भूत न कहकर बहिरिन्द्रिय-ग्राह्य विशेषगुण अर्थात् शब्द स्पर्श, रूप रस या गन्ध विशिष्ट को भूत कहा जावे तो भौतिक में भूत लक्षण की अतिव्याप्ति होती है यह भूत लक्षण में बताया गया है) तो भूत नाम से वर्णित आकाश को व्यापक कहना युक्ति-विरुद्ध होता है। क्योंकि व्यापक पदार्थ का विभाग नहीं हो सकता इसलिये आकाश किसीका उपदान का कारण बने तो अविभक्त अवस्था में ही बनेगा। किन्तु एक व्यापक पदार्थ परिच्छिन्न (अव्यापक) द्रव्य का अवयव बनेगा ऐसा कहना भी असम्भव है क्योंकि अवयवी की अपेक्षा से अवयव हमेशा छोटा होता है ऐसा ही सर्वत्र देखा जाता है। आकाश किसी का आरम्भक

आकाशस्यारम्भकत्वं नास्तीत्युच्यते तर्हि अनारम्भकस्य भूतत्वमेव न स्यादात्मवत् इति बोध्यम्। व्यापकमाकाशं शब्दसमवायिकारणमपि न सम्भवति शब्दस्याभिघातजन्यत्वादभिघातश्च व्यापके न सम्भवत्येव। व्यापके खल्वाकाशेऽव्यापकः शब्दोऽपि न सम्भवति। आकाशं श्रोत्रेन्द्रियकारणं वर्णितम्, तत्र व्यापकमाकाशमुपादानं न भवितुमर्हति। कथंचित् परिकल्पितेऽप्युपादानत्वे श्रोत्रं व्यापकमिति प्रसज्यते। ननु कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभ एव श्रवणेन्द्रियमिति

(उत्पादक) नहीं है ऐसा माना जावे तो जैसे आत्मादिको भूत नहीं कहा जाता ऐसे ही आकाश को भी भूत नहीं कहना चाहिये। व्यापक आकाश को शब्द का समवायीकारण भी नहीं कह सकते क्योंकि अभिघात से शब्द की उत्पत्ति होती है किन्तु व्यापक आकाश में अभिघात होना सर्वथा असम्भव है, तथा व्यापक आकाश में अव्यापक शब्द भी नहीं हो सकता। न्याय और वैशेषिक दर्शन में आकाश को श्रवणेन्द्रिय का कारण बताया जाता है किन्तु व्यापक आकाश श्रवणेन्द्रिय का उपादान नहीं बन सकता। किसी प्रकार से व्यापक को उपादान माना जावे तो उस से उत्पन्न श्रवणेन्द्रियको भी व्यापक कहना पड़ता है। अगर कर्णछिद्र विशिष्ट आकाश को ही श्रवणेन्द्रिय कहा जावे तो प्रश्न होगा

चेद् । उच्यते—कर्णशष्कुलीघटकान्यङ्गानि यदि तदवच्छि-न्ने नभसि किंचिद्वैशिष्ट्यमुत्पाद्य श्रोत्रकारणानि जायन्ते ततः श्रोत्रमाकाशोत्पन्नमिति व्याहन्यते । यद्युपाधिमात्राण्यंगानि तत उपाधिरकिंचित्कर इति श्रोत्रं व्यापकं स्यात् । किं चाकाशं वस्तुरूपं शून्यरूपं वा भवतु तस्य व्यापकत्वमुभयथा युक्तिविरुद्धम् । तथाहि—वस्तुभूतस्य भूतस्य व्यापकत्वे तदितरभूतानां स्थानाभावः । शून्यस्य व्यापकत्वेऽपि पृथिव्यादीनां स्थानाभावः प्रसज्यते । दैशिकाभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वमिति व्यापकत्वलक्षणमाकाशस्य व्यापकता-

---

कि कर्णछिद्र के उत्पादक अन्यान्य अवयव यदि कर्णछिद्र-स्थित आकाशमें किसी प्रकारके वैशिष्ट्यको उत्पादन करके श्रवणेन्द्रियके कारण होते हैं, तो आकाशको ही श्रवणेन्द्रियका उपादान नहीं कह सकते । यदि अन्य सबको उपाधिमात्र कहा जावे तो उपाधि कुछ वैशिष्ट्य जनक नहीं है अतः श्रवणेन्द्रिय को व्यापक कहना पड़ेगा और यह भी बात है कि आकाश को वस्तुस्वरूप या शून्य-स्वरूप कुछ भी कहा जावे, आकाशको व्यापक कहना सर्वथा युक्ति-विरुद्ध होगा । क्योंकि वस्तु स्वरूप आकाश यदि व्यापक होता तो वायु आदि भूतों को रहने के लिये स्थानही नहीं मिलता । आकाश शून्य होकर व्यापक होता तो भी पृथिव्यादि भूतोंके रहने को स्थान

वादिभिरपि वक्तुं नैव शक्यते तथासतीतरभूतानामवस्थान-स्थानाभावः स्यादिति सर्वमूर्तसंयोगित्वं व्यापकत्वमित्याकाशस्य व्यापकतालक्षणमुक्तं पुरातनैराचार्यैरेव। तेनैतदवगम्यते पृथिवीजलानलानिलपरमाणवो यावत्स्थानमधिकुर्वन्ति न तावत् स्थानमाकाशेन व्याप्तमिति। निपुणं विभाव्याऽवगम्यते यथा महाप्रलये पृथिवीजलानलानिलपरमाणवः परस्परं वियुक्ताः परमाणुरूपा एव तिष्ठन्ति तथैवाकाश-

---

नहीं मिलता। जो लोग आकाश को व्यापक कहते हैं उनके मतमें भी आकाश का अभाव कहीं नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि जहाँ २ और भूतों के परमाणु हैं वहां २ आकाश नहीं रह सकता है इसलिये कहा जाता है कि सब ही मूर्तद्रव्य (जिससे बड़ा द्रव्य हो सकता है) के साथ आकाश का संयोग है अतः आकाश को व्यापक कहा जाता है। इससे मालूम पड़ता है कि आकाश को व्यापक मानने वाले न्याय-वैशेपिक सम्प्रदायी भी आकाश को सर्वत्र व्यापक नहीं मान सकते किन्तु पृथिवी, जल, वायु और तेज इनके परमाणु जितने स्थान को अधिकृत करते हैं उतने स्थान को छोड़ कर बाकी स्थान में आकाश को व्यापक मानते हैं तथा प्रत्येक परमाणु के साथ आकाश का संयोग मानते हैं। इस विषयमें सूक्ष्मता से विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि महाप्रलय में जैसा पृथिवी, जल, तेज और वायु इनके

परमाणवोऽपि वियुक्ता एव तिष्ठन्ति । सृष्टिप्रारम्भे तएवा-काशपरमाणव ईश्वरेच्छया द्व्यणुकादिक्रमेण परस्परं मिलिताः सन्तः स्थूलमाकाशं जनयन्ति तत्रेश्वरेच्छायाः सन्निकृष्टकारणत्वाच्छ्रुताविहित "मेतस्मादात्मन आ-काशः सम्भूत" इति । महाभूतानामुत्पत्तिक्रमोऽन्योन्यानु-प्रवेशश्च वर्णयिष्यते । यद्यपि परस्परानुप्रविष्टान्येव भूता-न्युपलभ्यन्ते तथापि पृथिवीजलानलानिलानां परमाणौ द्व्यणुके वा नेतरभूतानां संयोगो युक्त्याऽपि सिध्यति

परमाणु परस्पर पृथक् २ होकर परमाणु स्वरूप ही रहते हैं, ऐसे ही आकाश के परमाणु भी पृथक् २ होके रहते हैं । सृष्टि के आरम्भ में वही आकाशपरमाणु परमेश्वर की इच्छा से द्व्यणु-कादि क्रम से परस्पर मिलित होकर स्थूल आकाश को उत्पन्न करते हैं । आकाश की उत्पत्ति में परमेश्वर की इच्छा ही सन्निकृष्ट कारण है इसलिए श्रुति में लिखा है कि इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है । परमाणु स्वरूप भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति और भूतों का परस्परानुप्रवेश ११ वें अध्याय में वर्णन किया जायगा । यद्यपि परस्पर अनुप्रविष्ट भूतोंका ही ज्ञान होता है फिर भी पृथिवी जल आदि के परमाणु या द्व्यणुक में दूसरे भूतों का संसर्ग नहीं हो सकता किन्तु परमाणु या द्व्यणुक

किन्तु तत्राप्याकाशसंयोगो विद्यत इति सर्वमूर्तसंयोगित्वरूपं व्यापकत्वमाकाशस्यावगन्तव्यम्। एवं परमाणुद्वयसंयोगोऽपि यथासम्भवसान्निध्यमात्रं नतु सर्वथा मिलनमिति ज्ञातव्यम्। सर्वथा मिलनेऽङ्गीकृते त्रसरेणुमध्यस्थपरमाणावाकाशसंयोगाभावात् सर्वमूर्तसंयोगित्वं व्याहन्यते। एतेनातिसूक्ष्मत्वमप्याकाशस्य वक्तुं शक्यते। महाप्रलये पुनराकाशपरमाणवो वियुज्यन्ते स एव विनाशः स्थूलस्याकाशस्येति।

में भी आकाश का संयोग अवश्य रहता है इसलिए आकाश का सर्वमूर्तसंयोग अर्थात् सब ही परमाणुओं के साथ आकाश का संयोग रहना अनिवार्य है। अतएव दो परमाणुओं का संयोग भी यथासम्भव सान्निध्य को ही कहते हैं। एक परमाणु से दूसरा परमाणु सर्वथा संयुक्त नहीं हो सकता। बीच में आकाश न रख कर यदि दो परमाणु परस्पर मिलकर द्व्यणुक को उत्पन्न कर सकते तो ऐसे तीन द्व्यणुक परस्पर मिल कर जो त्रसरेणु को बनाते हैं उस त्रसरेणु के बीच के परमाणु के साथ आकाश का संयोग न रहता जिससे आकाश के सर्वमूर्तसंयोगित्त्व में व्याघात आ जाता। दो परमाणुओं के संयोगस्थल में भी आकाश है इससे आकाश को अतिसूक्ष्म भी कहा जा सकता है। महाप्रलय में आकाश के उत्पादक परमाणुवर्ग पृथक् २ हो

नन्वाकाशं शून्यस्वरूपमेव शास्त्रकृद्भिरभिहितम्। चरका-चार्येणाप्यत्र स्पर्शाभावरूपोऽप्रतिघात एव वर्णितस्तदेवं शून्यस्वरूपमाकाशं लौकिकैरप्यनुभूयते तथापि पृथिव्यादिवत् परमाणुस्वरूपता स्थूलस्वरूपताचाकाशस्य कथमवगन्तुं शक्यत इति चेत्। उच्यते—स्थूलानिलादिमहाभूतानां भौतिकानां च सर्वेषामुपादानभूतस्य शब्दसमवायिकारणत्वेन वर्णितस्याकाशस्य सर्वथा शून्यरूपत्वमिति युक्तिविरुद्धमेव। तथाहि—शून्यस्याभावानतिरिक्तत्वात्तस्य भावोपादानत्वं न

जाते हैं इसी को स्थूल आकाश का विनाश कहा जाता है।

इस पर सन्देह होता है कि आकाश को शास्त्रकारों ने शून्य-स्वरूप कहा है। श्रीमान चरक जी ने भी आकाश में अप्रतिघात रूप स्पर्शाभाव कह कर आकाश के शून्यस्वरूप का ही समर्थन किया है। सब के अनुभव से भी आकाश शून्य रूप ही मालूम पड़ता है फिर भी पृथिवी आदि के परमाणुओं के समान आकाश के भी परमाणु किस प्रकार से माने जा सकते हैं? इस सन्देह का उत्तर यह है कि स्थूलवायु स्थूलतेज आदि महाभूतों के तथा सब ही भौतिकों के उपादानस्वरूप आकाशभूत को शून्य कह देना युक्ति-विरुद्ध है। क्योंकि शून्य को अभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकते, अतः शून्य अर्थात् अभावपदार्थ किसी भाव पदार्थ का उपादान नहीं हो सकता। और भी दोष यह है कि

संगच्छते। किं चाकाशस्य सर्वथा शून्यरूपत्वे शब्दोत्पत्तिरेव न सम्भवति। कथमिति चेत्। उच्यते—नाभिघातमन्तरेण शब्दसमुत्पत्तिरिति सर्वस्वीकृतः सिद्धान्तस्तत्राभिघातो नाम तीव्रवेगितयोः संयोग एव तस्मान्मूर्तयोर्मूर्तानांवाऽभिघातः संजायते, न तु कालात्मनोर्वायुकालयोर्वाभिघातः कल्पयितुं शक्यते। मूर्तानांस्थूलपृथिवीजलानलानिलानामभिघाताद्यत्र शब्दोत्पत्तिरनुभूयते, तत्रापि नैतेषां सर्वथा मिलनरूपः संयोगः सम्भवति। तेषां मध्येऽपि व्यवधायकस्याकाशस्य विद्यमानत्वात्। द्व्यणुकजनकयोः परमाण्वोर्मध्येऽपि यद्या-

---

आकाश यदि शून्य स्वरूप होता तो शब्द का समवायी कारण नहीं बन सकता था। क्योंकि अभिघात न होने से शब्द की उत्पत्ति नहीं होती है, इस सिद्धान्त को सब ही मानते हैं। अभिघात का मतलब यह है कि दो दिशाओं से दो तीव्रवेगयुक्त पदार्थों का आकर परस्पर संयुक्त होना। इसलिए दो या अधिक मूर्त द्रव्य का ही अभिघात हो सकता है किन्तु काल से आत्मा के या वायु से काल के अभिघात की कल्पना भी नहीं हो सकती। जहां मूर्त स्थूल पृथिवी, जल, तेज, वायु के अभिघात से शब्द की उत्पत्ति होती है वहां भी इन पृथिवी आदि का सर्वथा मिलन रूप संयोग नहीं हो सकता। क्योंकि उनके मध्य में भी आकाश

काशस्यास्तित्वमप्रत्याख्येयं तर्हि कथमभिघातजनकयोः स्थूलयोर्मध्ये तत् प्रत्याख्यातुं शक्यते। तस्मात् स्थूलयोः स्थूलानां वा द्रुतसान्निध्यादाकाशावयवेषु योऽभिघातः संजायते तत एव शब्दोत्पत्तिरिति रहस्यं विदित्वैवाकाशं शब्दसमवायिकारणमिति शास्त्रकृद्भिर्वर्णितमिति। सर्वेषामेव शब्दानां समुत्पत्तावाकाशमेव समवायिकारणं किन्तु येषां द्रुतसान्निध्यादाकाशावयवेष्वभिघातः संजायते तेषामपि शब्द-

---

व्यवधायक रहेगा। जब कि द्व्यणुक के उत्पादक दो परमाणुओं के बीच में भी व्यवधायक आकाश रहता है फिर स्थूल पदार्थों के बीच में आकाश के अस्तित्व का किसी प्रकार से भी प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। अतएव सिद्ध होता है कि जब दो या अधिक स्थूल द्रव्य आपस में टकराने के लिए अतिद्रुत गति से परस्पर सन्निहित होते हैं तब उनके दबाव से आकाश के अवयवों में उत्पन्न अभिघात से शब्द की उत्पत्ति होती है। इस रहस्य को समझकर ही प्राचीनों ने आकाश को शब्द का समवायी-कारण माना है। आकाश से व्यवधान रहजाने से पार्थिवादि स्थूल द्रव्यों का अभिघात असम्भव है इसलिए सब ही शब्दों का समवायीकारण आकाश है, तथापि पार्थिवादि जिन स्थूल द्रव्यों के द्रुत सान्निध्य से आकाशावयवों में अभिघात होकर शब्दों की उत्पत्ति होती है उन पार्थिवादि द्रव्यों को भी शब्द का

वैशिष्ट्यं कारणतास्तीति पार्थिवोऽयं शब्दो जलीयोऽयमित्यादिप्रयोगोऽपि संगच्छते। यदि पार्थिवजलीयादीनां स्थूलानामभिघाताख्यसंयोगद्वारा शब्दोत्पत्तिः सम्भवति तत आकाशस्य शब्दसमवायिकारणता व्याहन्येत। आकाशस्य शून्यस्वरूपत्वे व्यापकत्वे वा शब्दोत्पत्तिरेव न सम्भवतीति वाय्वादिवत्तस्यापि मूर्तत्वमेव युक्त्या सिद्धमेव। शून्यरूपमाकाशं शब्दस्याधिकरणमपि न भवितुमर्हति शून्यंहि अभावस्वरूपं कथं भौतिकगुणाधिकरणं भवेदित्यपि चिन्त्यम्।

कारण माना जाता है, इसलिए पार्थिव शब्द, जलीय शब्द इत्यादि व्यावहारिक संज्ञाएँ भी असंगत नहीं हैं। यदि पार्थिव, जलीय आदि स्थूल पदार्थों के अभिघात नामक संयोग द्वारा शब्द की उत्पत्ति सम्भव होती तो आकाश को शब्द का समवायिकारण नहीं कह सकते। आकाश व्यापक होता या शून्य रूप होता तो शब्द की उत्पत्ति नहीं हो सकती थी इसलिए वायु प्रभृति द्रव्य जैसे मूर्त हैं आकाश भी वैसा ही मूर्त है युक्ति से ऐसा सिद्ध होता है। शून्य स्वरूप आकाश शब्द का अधिकरण भी नहीं हो सकता क्योंकि शून्य और अभाव में कोई भेद नहीं है। ऐसा अभाव भी भौतिक गुण का अधिकरण किस प्रकार से हो सकता है, यह चिन्तनीय बात है।

नन्वाकाशस्यापि मूर्तत्वे कथं तस्य शून्यसंज्ञा लोके शास्त्रे च श्रूयते कथंवा तत्र स्पर्शाभाव इति चेत्। उच्यते—यथा रूपवद्-द्रव्यरहिते वायुपूर्णेऽपि गृहे शपथपूर्विका शून्योक्तिः शास्त्रज्ञा-नामपि तथा वायुरहिते ततोऽपि सूक्ष्मैरीथराख्यैराकाशैः पूर्णेऽपि शून्योक्तिः शास्त्रकाराणां परीक्षकाणां च श्रूयत इति। स्पर्शस्तु शब्दतन्मात्रजन्ये नानुप्रविष्ट आकाश इति प्रागेवो-क्तम्। केवलं स्थूलस्याकाशस्य वायुसंयोगेन कथंचित् स्पर्श-

---

फिर शंका होती है कि यदि आकाश भी मूर्त है तो शास्त्र में इसको शून्य क्यों लिखा है और लौकिक व्य-वहार में भी आकाश को शून्य क्यों कहा जाता है तथा मूर्त है तो इसमें अप्रतिघात (स्पर्शाभाव) गुण चरक जी ने क्यों लिखा है ? इस शंका का उत्तर यह है कि-जैसे शास्त्रज्ञ मनुष्य भी शपथपूर्वक वायु से परिपूर्ण अथच रूपवान पदार्थ से सर्वथा रहित गृह में 'शून्य' शब्द का प्रयोग करते हैं, ऐसे ही वायु-रहित गृह जब उससे भी सूक्ष्म ईथर नामक स्थूल आकाश से पूर्ण रहता है उस समय शास्त्रकारोंने उसको शून्य कहकर निर्देश किया है और परीक्षक भी उसको शून्य कहते हैं। महाकाश का उपादान केवल आकाशभूत अर्थात् शब्दतन्मात्र ही है इसलिए उसमें स्पर्श नहीं है। पांचभौतिक आकाश में वायुसंसर्ग से कथंचित्

स्वपार्श्वस्थं द्रव्यमभिहन्ति तस्मादभिघातपरम्परया शब्द-परम्परा संजायते तत एव शब्दस्य प्रसरणं सम्भवति। तथा चोक्तं श्रीमता विश्वनाथेन—"वीचितरंगन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिते"ति। आकाशावयवेष्वेवाभिघातः सम्भवत्यन्येषु सान्निध्यमात्रं नत्वभिघाताख्यः संयोगस्तस्मादाकाश एव शब्दानां समुत्पत्तौ संप्रसारणे च कारणमत-

---

होकर प्रथम शब्द की उत्पत्ति होतीहै। अभिहत स्थूल द्रव्य पार्श्वस्थ स्थूल द्रव्य को धक्का देता है जिससे पार्श्ववर्ती आकाश में दूसरा अभिघात उत्पन्न होकर दूसरे शब्द को उत्पन्न करता है। इस प्रकार अभिघातपरम्परा से शब्दपरम्परा उत्पन्न होकर श्रवणेन्द्रिय तक पहुँच जाती है। इस प्रकार से शब्दका प्रसारण अर्थात् देशान्तर-गमन सम्भव होता है। श्रीमान् विश्वनाथ जी ने कारिकावली में भी लिखा है कि जैसे तालाब के अन्दर एक ईंट को फेंक देने से वह ईंट जहां गिरती है उस स्थान के जल को धक्का देती है। वह जल पार्श्वस्थित जल को धक्का देता है, इस प्रकार पानीकी लहरसे लहर उत्पन्न होकर जैसे वह दूर तक फैलता है इसी प्रकार शब्द भी लहर द्वारा फैलता है। आकाशके अवयवोंमें ही अभिघात होसकता है, पृथिवी आदिके अवयवोंमें अभिघाताख्य संयोग नहीं हो सकता किन्तु केवल सान्निध्य हो सकता है इसलिए आकाश ही शब्दों की उत्पत्ति तथा प्रसारणमें कारण है अतः आकाशको भी वातादिके समान

एव तस्यापि वाय्वादिवन्मूर्तत्वमेवेति।

नन्तु स्पर्शरहित आकाशे कथमभिघात इति चेत्। उच्यते–स्पर्शः खलु त्वगिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणोऽभिघातस्तु द्रुतवेगितयोर्मूर्तयोः संयोग इति। तत्र स्पर्शरहिते संयोगाभावो नियमेन नैव वक्तुं शक्यते दिक्कालात्मनामपि संयोगस्वीकारात् अतः स्पर्शरहिते संयोगात्मकोऽभिघातो न विरुध्यते। यत्तु 'आकाशस्याप्रतिघात' इति चरकवचनं दृश्यते तत्रापि अप्रतिघातशब्देनेतरद्रव्याणां गतावप्रतिबन्धकत्वमेव अभिप्रेतं नतु स्वावयवेष्वपि संयोगराहित्यमिति बोध्यम्।

मूर्त समझना चाहिए।

फिर सन्देह होता है कि स्पर्शरहित आकाश में अभिघात कैसे हो सकेगा ? इसका उत्तर यह है कि स्पर्श तो त्वगिन्द्रिय-ग्राह्य विशेष गुण है, और द्रुतवेग-युक्त मूर्तद्रव्यों के संयोग को अभिघात कहा जाता है। "जिसमें स्पर्श न हो उसका संयोग भी न हो" ऐसा नियम नहीं है। स्पर्शरहित दिक्, काल और आत्मा में भी संयोग माना जाता है। अतएव स्पर्शरहित आकाश में अभिघाताख्य संयोग होने में कुछ बाधा नहीं है। चरकजी ने जो आकाश में अप्रतिघात कहा है उसका अभिप्राय यह है कि आकाश दूसरे द्रव्य की गति में प्रतिबन्धक नहीं होता। इतने से आकाश के अवयवों में परस्पर संयोग भी नहीं होगा ऐसा अर्थ लेना ठीक

शब्दः खल्वाकाशस्यैव विशेषगुणस्तस्मात्तस्य वाहको-ऽप्याकाश एव भवितुमर्हति पृथिवीव गन्धस्य। ननु वायु-र्गन्धवाहक इति चेदुच्यते-गन्धाधारभूतायाः पृथिव्या एव वाहको वायुर्नतु गन्धस्येति। एकभूतनिष्ठस्य गुणस्यैव विशे-षगुणसंज्ञा नानेकभूतनिष्ठस्येत्यपि स्मर्तव्यमेव।

ननु वायुयुक्तप्रदेशे शब्द उत्पद्यते वायुहीने च नोत्पद्यते इति

नहीं है।

जैसे पृथिवी का विशेष गुण गन्ध है इसलिए उसका वाहक पृथिवी के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता ऐसे ही आकाश का विशेष गुण शब्द है, अतः शब्द का वाहक भी आकाश ही हो सकता है और कुछ नहीं। इसपर शंका होती है कि वायु भी गन्ध का वाहक होता है जिससे वायु को गन्धवाहक कहा जाता है फिर पृथिवी को ही गन्धवाहक कैसे मान सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि वायु गन्ध को वहन नहीं करता किन्तु गन्ध के आधार पार्थिवकणों को वहन करता है। गन्ध की वाहिका पृथिवी ही है। एक ही भूत में नियम से रहनेवाले गुण का 'विशेषगुण' नाम उपयुक्त है परन्तु अनेक भूतों में रहने वाले गुण को भी यदि विशेष गुण कहा जाय तो साधारण और विशेष गुण में क्या अन्तर होगा?

वैज्ञानिकों का मत है कि शब्द का कारण आकाश नहीं किन्तु

प्रयोगसिद्धमेव तस्माद् वायुरेव शब्दकारणमितिचेदुच्यते—आकाशव्यवहितानां वाय्ववयवानामभिघाताख्यः संयोग एव न सम्भवतीति शब्दकारणत्वमाकाशस्यैव वाच्यं, किन्तु केवलेनाकाशतरंगेण नास्माकं कर्णपटहस्यान्दोलनं संजायत इति स्थूलानामप्यान्दोलनं शब्दज्ञानं सहकारिकारणं संजायते। वायुशून्ये स्थाने समुत्पन्नः शब्द आकाशतरंगेण तूर्णं

वायु ही शब्दकारण है इसके निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रयोग बताया जाता है। किसी गोलक के अन्दर एक घण्टी रखकर गोलक को हिलाने से घण्टी बजने का शब्द सुनाई देता है, अब यदि वायु निष्कासक यन्त्र से गोलक के अन्दर की वायु को निकाल दिया जावे तो घण्टी बजने का शब्द भी बन्द हो जावेगा। जब तक गोलक में वायु था तब तक शब्द हुआ किन्तु जब वायु नहीं रहा तब आकाश की मौजूदगी में भी शब्द नहीं होता इससे सिद्ध होता है कि आकाश शब्द का कारण नहीं है, वायु ही शब्द का कारण है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि आकाश से व्यवहित वायु आदि का अभिघाताख्य संयोग ही नहीं हो सकता इसलिए आकाश को ही शब्दका समवायि कारण माना जाता है किन्तु केवल आकाशतरंग द्वारा हमारे कर्ण पटह का आन्दोलन नहीं हो सकता इसलिए शब्द ज्ञान के लिए स्थूल पदार्थ के आन्दोलन को भी सहकारी कारण माना जाता है। वायु

परितः प्रसरति। आकाशतरंगस्यातिसूक्ष्मत्वात् कर्णपटहं भित्त्वा प्रसृतेन तेन कर्णपटहस्यान्दोलनं न जायत इति संजातस्यापि शब्दस्य ज्ञानं न संजायत इति मन्तव्यम्। नन्वज्ञातस्य शब्दस्य समुत्पत्तौ किं मानमितिचेत्। उच्यते-तस्मिन् वायुशून्यस्थाने यदि ताम्रसूत्रादीनां प्रवेशः सम्पाद्यते तत्सूत्रद्वारा तारतरः शब्दः श्रूयत इत्यपि प्रत्यक्षमेव। तस्मात् शब्दसमुत्पत्तौ वायुर्न कारणं किंतु शब्दस्य श्रवणयोग्यतासम्पादनाय पार्थिवं जलीयं तैजसं वायवीयं वा स्थूलं

शून्य स्थान में उत्पन्न शब्द आकाशतरंग द्वारा अतिशीघ्र चारों तरफ फैल जाता है। आकाशतरंग इतनी सूक्ष्म है कि कर्णपटह को पार करके चली जाती है अथच उससे कर्णपटह नहीं हिलता। वायुशून्य गोलक के अन्दर शब्द की उत्पत्ति होती है किन्तु उसका अनुभव नहीं होता। प्रश्न होगा कि जिस शब्द का अनुभव नहीं होता उसकी उत्पत्ति में क्या प्रमाण है? इसका उत्तर यह है कि पूर्वोक्त गोलक से वायु को निकाल कर भी यदि एक ताम्बे के तार को गोलक के मध्य तक प्रवेश कराके गोलक को हिला दिया जाय तो साधारण मनुष्य तो शब्द को नहीं सुन सकेगा किन्तु उस ताम्बे के तार द्वारा शब्द और भी ऊँचा सुनाई देगा। इससे सिद्ध होता है कि शब्द की उत्पत्ति के लिए तो

द्रव्यमपेक्ष्यत इति ज्ञेयम् । स्थूलस्य वायोः शब्दकारणत्वे बहु-दूरदेशोत्पन्नस्य शब्दस्य स्वल्पेनैव कालेन देशान्तरप्राप्तिर्न सम्भवतीति प्रागेवोक्तम् । तथाचोक्तम्—

वाय्वादीनामभिघातो यस्मान्नैव भवेद् ध्रुवम् ।
तस्मात् खमेव शब्दानां कारणं युक्तिसम्मतम् ॥
मूर्तिसत्त्वादयो धर्मा वातादीनां यथा यथा ।
तथैव गगनस्यापि भवन्ति युक्तिसम्मताः ॥
केवलं शब्दधर्मित्वाद् दुर्ज्ञेयत्वात्तथैव च ।

आकाश ही कारण है किन्तु उस शब्द को श्रवणयोग्य बनाने के लिए पार्थिव, जलीय, तैजस† या वायवीय स्थूल-द्रव्य की सहायता की ज़रूरत होती है । स्थूल वायु (Air) शब्द का उत्पादक या वाहक होता तो अति अल्प समय में हजारों मील तक पहुँच जाना शब्द के लिए असम्भव हो जाता, यह बात पहिले भी कही गई है।

इस विषय के संग्रह श्लोकों का अर्थ—क्योंकि वातादि का अभिघात असम्भव है इसलिए आकाश ही शब्द का कारण है। जैसे वातादि में मूर्तिमत्त्वादि धर्म हैं ऐसे आकाश में भी हैं। आकाश में केवल शब्द गुण है, स्पर्शादि गुण नहीं हैं इसलिए स्थूलतः आकाश को शून्य कहा जाता है किन्तु वास्तव में आकाश

---

†ताम्रसूत्र विद्युत आदि तैजस द्रव्य है ।

शून्यसंज्ञा कृता व्योम्नः स्थूलतो न स्वरूपतः ॥

इत्याकाशविमर्शाख्यः दशमोऽध्यायः ।

भी द्रव्य स्वरूप है ।

आकाशविमर्श नामक दशम अध्याय समाप्त ।

एकादशाऽध्यायः

पंचमूलभूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदृशः ?

परमाणुस्वरूपेभ्यः पंचभूतेभ्यो यदि पंचमहाभूतानि जायन्ते नाम केन खलु क्रमेण तान्युत्पद्यन्ते तथा सर्वेषामेव भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयत्वेऽपि गगनानिलानलजलभूमिषु कथं नियमेनैकद्वित्रिचतुःपंचगुणा दृश्यन्त इत्यादि शंकाजातानां समाधानाय भूतेभ्यो महाभूतसंज्ञकानां स्थूलानां वस्तुतो भौतिकत्वेऽपि कदाचित् भूतसंज्ञया महा-

---

पाँचमूलभूतों से एक एक महाभूत की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है ?

यदि परमाणुस्वरूप पंचभूतों से पंच महाभूतों की उत्पत्ति मानी जावे तो प्रश्न होता है कि इनकी उत्पत्ति किस क्रम से होती है ? दूसरा प्रश्न यह है कि सब ही भूतों में एक एक गुण है फिर भी स्थूल आकाश में एक गुण, स्थूल वायु में दो, स्थूल तेज में तीन, स्थूल जल में चार और स्थूल पृथिवी में पाँच गुण नियम पूर्वक क्यों उत्पन्न होते हैं ? इन शंकाओं के समाधान के लिए महाभूत संज्ञक द्रव्य—जो वास्तवमें भौतिक होते हुए भी महाभूत-स्थूल-भूत आदि संज्ञाओंसे व्यवहृत होते हैं। आकाश, वायु, तेज

भूतसंज्ञया च व्यवह्रियमाणानामाकाशादिपृथिव्यन्तानां समुत्पत्तिक्रमो वर्ण्यते—

तत्र महाप्रलये जन्यानि सर्वाण्येव महाभूतानि भौतिकानिच जडचेतनशरीराणि विनश्यन्ति। केवलं नित्यान्येव द्रव्याण्यवशिष्यन्त इति सर्वैरेवाङ्गीकर्तव्यमतो भौतिकारम्भकाणां महाभूतानां च विनाशान्महाप्रलये वियुक्ताः परमाणव एवावशिष्यन्ते, ततः सर्गादौ पुनर्भूतेभ्यो महाभूतानामुत्पत्तिर्युगपदेव जायते क्रमाद्वेति लौकिकपरीक्षया निर्णेतुं न शक्यते तदानीं परीक्षकपरीक्षा-

---

जल और पृथिवी की उत्पत्ति मूलभूतों से किस क्रम से होती है यह वर्णन किया जाता है।

महाप्रलयमें उत्पत्ति-शील सब ही द्रव्य अर्थात् महाभूत, भौतिक, जड़ और चेतन शरीर आदि नष्ट हो जाते हैं। केवल नित्य पदार्थ ही अवशिष्ट रहते हैं, इसको सबही स्वीकार करते हैं क्योंकि भौतिक द्रव्यों के आरम्भक महाभूत भी महाप्रलय में विनष्ट हो जाते हैं इसलिए नित्य परमाणु ही उस समय रह सकते हैं फिर सृष्टि के प्रारम्भ में परमाणुस्वरूप भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति युगपत् (एकसाथ) होती है या क्रम से इसका निर्णय लौकिक परीक्षा द्वारा नहीं हो सकता। क्योंकि उस समय परीक्षक,

साधनादीनामनुत्पन्नत्वादतः—"अलौकिकपदार्थेषु प्रमाणं परमं श्रुतिरिति" महाजनवाक्या"देतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुष" (तैत्तिरीयोपनिषत् २ वल्ली १ अनुवाकः) इत्यादिश्रुतिपठित-क्रम एव तत्त्वनिर्णयेप्सुभिरवलम्बनीयः। नैतस्यां श्रुतौ पूर्व-पूर्वेषामुत्तरोत्तरोपादानत्वं युक्त्या प्रमाणीकर्तुं शक्यते तथासत्यादिकारणस्यात्मन एव भूतत्वं स्यान्नाकाशादीनां कारणान्तरादुत्पन्नानामिति। तेषामपि भूतत्वे औषध्यन्ना-

परीक्षासाधन आदि की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी। "जिसका निर्णय लौकिक परीक्षा द्वारा नहीं हो सकता उसके लिए श्रुति (वेद) ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है"। इस महाजनवाक्य के अनुसार यहां भी "इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न होता है"। इस प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद्वर्णित उत्पत्ति क्रम को ही तत्त्वनिर्णय के लिए ग्रहण करना चाहिये। इस श्रुति में पूर्व २ द्रव्य उत्तरोत्तर द्रव्यों का उपादान है अर्थात् आत्मा आकाश का, आकाश वायु का, वायु तेज का इत्यादि प्रकार की कल्पना युक्ति-प्रमाण-सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि ऐसा हो तो केवल आदि कारण आत्मा ही भूत हो

दीनामपि भूतत्वं प्रसज्यते। यत् खलु स्वकारणादुत्पद्यते कार्यं च किंचिज्जनयति तस्य भूतत्वे सूत्रवेत्रादीनामपि भूतत्वं प्रसज्यते । किंच चेतनस्य जडकर्तृत्वमेव लोकसिद्धं "सहि सर्ववित् सर्वकर्ता" त्यादिश्रुतिभिरप्यनुमोदितमिति चेतनस्यात्मनो जडोपादानत्वं लोकवेदविरुद्धं कल्पयितुं न शक्यते। एकं भूतमपि भूतान्तरोपादानमिति कल्पयितुं न शक्यते। तथासत्युपादानमेव भूतं ततो जातं भौतिकं

सकता है और आकाशादिभूत नहीं हो सकते क्योंकि वह कारणान्तरसे उत्पन्न हैं, ऐसा भी कहना पड़ेगा। यदि कारणान्तरसे उत्पन्न तथा बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणयुक्त को भी भूत माना जावे तो इस श्रुतिवर्णित औषधि अन्न आदि को भी भूत कहना चाहिए। जो अपने कारण से उत्पन्न होकर किसी कार्य को उत्पन्न करता है उसको यदि भूत कहा जावे तो सूत्र-वेत्र आदिको भी भूत कहना पड़ता है। यह भी विचार्य है कि चेतन, जड़ का कर्ता ही होता है (उपादान नहीं) यह लोक प्रसिद्ध है। श्रुति में भी "वह सब को जानता है और सब का कर्ता है" इत्यादि स्पष्टवाक्यों से इसका समर्थन किया गया है। इसलिए चेतन आत्मा जड़ पदार्थ को उपादान भी है, ऐसी कल्पना लोक-वेद विरुद्ध होने के कारण अयुक्त है। एक भूत भी दूसरे भूत का उपादान नहीं हो सकता। ऐसा होता तो उपादान को ही भूत और उत्पन्न होने वाले को

स्यान्नतु भूतजातमपि भूतमिति। तस्मादेवं समुत्पत्तिर्महा-भूतानाम्—

आकाशोत्पत्तिवर्णनम्—

महाप्रलये पृथिव्यादिपरमाणव इवाकाशपरमाणवोऽपि परस्परं वियुक्तास्तिष्ठन्ति सर्गादावीश्वरेच्छया परमाणुस्वरूपेषु शब्दमात्रगुणेषु शब्दतन्मात्रापरपर्यायेष्वाकाशभूतेषु प्रागारम्भकसंयोगानुकूला क्रिया जायते। ततो द्व्यणुकादिक्रमेण महानाकाश उत्पद्येत। तत ईश्वरेच्छया

भौतिक कहना चाहिए था दोनों (कार्य और कारण) को भूत नहीं कह सकते थे। अतएव महाभूतों की समुत्पत्ति निम्न प्रकार समझी जाती है।

स्थूलाकाश का वर्णन—

महाप्रलय में जैसे पृथिवी आदि के परमाणु पृथक् २ होकर रहते हैं ऐसे ही आकाश के परमाणु भी पृथक् हो जाते हैं। सृष्टि के प्रारम्भमें परमेश्वरकी इच्छासे परमाणुस्वरूप शब्दमात्र-गुण-विशिष्ट, शब्दतन्मात्रापर्यायक आकाश नामक भूत में पहिले आरम्भक संयोग (जिस संयोग से परमाणु से द्व्यणुकादि क्रम से स्थूल की उत्पत्ति होती है उसको आरम्भक संयोग कहते हैं) के अनुकूल क्रिया उत्पन्न होती है। उस क्रिया से द्व्यणुकादि क्रम से स्थूल आकाश उत्पन्न होता है क्योंकि ईश्वरेच्छा से स्थूलाकाश

महाकाशस्योत्पत्तिस्तस्मादभिहितं श्रुता "वेतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत" इति।

स्थूलाकाशस्य शब्दतन्मात्रजातस्य शब्द एव गुणः। नैतावता केवल आकाशे शब्द उपलभ्यत इति बोद्धव्यम्। यतः केवलाकाशशब्दस्यानभिव्यक्तत्वात्तदानीं श्रोतुरभावाच्च केवलाकाशशब्दावबोधो न जायते, जायते च पांचभौतिकस्य शब्दस्यावबोध इति। स्थूलाकाशोत्पत्तिसमयेऽन्येषां सर्वेषामेव भूतानां परमाणुस्वरूपत्वात्परमाणुगुणस्य

की उत्पत्ति होती है इसलिए ही श्रुति में लिखा है कि इस आतमा से आकाश उत्पन्न हुआ।

क्योंकि स्थूल आकाश केवल शब्दतन्मात्र (आकाश भूत) से उत्पन्न होता है इसलिए उसमें केवल शब्द गुण है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि केवलमात्र आकाश में शब्द की उपलब्धि होती है क्योंकि केवल आकाश से उत्पन्न शब्द अत्यन्त मृदु है और शब्द का श्रोता भी कोई नहीं होता अतएव केवल आकाश के शब्द को कोई भी नहीं सुनता। जिस शब्द को हम सुनते हैं यह पांचभौतिक है। जब स्थूल आकाश की उत्पत्ति होती है उस समय और सब ही भूत परमाणु अवस्था में रहते हैं परमाणु का गुण किसी प्रकार वैशिष्ट्य का उत्पादक नहीं होता इसलिए आकाश के साथ अन्य भूतों का उपष्टम्भ नामक संयोग

च विशेषानाधायकत्वादाकाशेन सहेतरभूतानामुपष्टम्भाख्यः संयोगो न जायते। तस्माच्छब्दमात्रगुणमाकाशमिति। अस्य स्वरूपादिकं प्रागेव वर्णितमिति।

महावायुवर्णनम्—

महाकाशादनन्तरं स्थूलो वायुरुत्पद्यते तस्माच्छ्रुतावुक्तमा "काशाद्वायु" रिति। अत्राकाशं वायुभूतस्योपादानमिति श्रुत्यर्थे आकाशमेव भूतं स्याद्वायुस्तु भौतिकमिति प्रागुक्तम्। स्थूलमाकाशं वायुना सहोपष्टम्भाख्यसंयोगेन मिलितं सद्द्विगुणं (शब्दस्पर्शगुणं) स्थूलं वायुमुत्पादयतीति

(विशिष्ट मिलन) नहीं हो सकता अतः आकाश में शब्दमात्र गुण है। आकाश के स्वरूपादि का दशम अध्याय में वर्णन हो चुका है।

महावायु का वर्णन—

स्थूल-आकाशके अनन्तर स्थूल-वायु उत्पन्न होता है। "आकाश से वायु उत्पन्न होता है" इस श्रुति वाक्य से यदि आकाशभूत से वायुभूत की उत्पत्ति समझी जावे तो आकाश को ही भूत और वायु को भौतिक कहना पड़ेगा यह तो पहिले लिखा जा चुका है। स्थूल आकाश वायु के साथ उपष्टम्भाख्य संयोग से मिलकर दो गुण (शब्द-स्पर्श-गुण) विशिष्ट स्थूलवायु को उत्पन्न करता है।

श्रुत्यर्थो बोध्यः। एवमग्रेऽपि। स्थूलाकाशोत्पत्त्यनन्तरमीश्वरेच्छया स्पर्शमात्रगुणेषु स्पर्शतन्मात्रापरपर्यायेषु परमाणुस्वरूपेषु वायुभूतेष्वारम्भकसंयोगजननी क्रिया संजायते, ततो द्व्यणुकादिक्रमेण महान् वायुरुत्पद्यमानः प्राक्स्थूलेन महाकाशेन सहोपष्टम्भाख्यसंयोगविशेषेण मिलितः सन् रासायनिकपरिवर्तनद्वारा विशिष्टशब्दवान् स्पर्शाधिको भौतिकोऽपि वायुप्राधान्यात् कथंचिद् वायुनाम्ना व्यवह्रियमाण उत्पद्यते। तत्र वायुभूतस्य स्पर्शमात्रगुणत्वेऽपि महा-

---

श्रुति का ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये, और आगे भी ऐसा ही समझना चाहिये। स्थूलाकाश की उत्पत्ति के अनन्तर ईश्वर की इच्छा से स्पर्शमात्र-गुण-विशिष्ट स्पर्श-तन्मात्र नामक परमाणु-स्वरूप वायु भूत में आरम्भक संयोग को उत्पन्न करने वाली क्रिया उत्पन्न होती है। उससे द्व्यणुकादि क्रम से उत्पन्न होनेवाला स्थूल वायु अपने से पहिले उत्पन्न स्थूल आकाश से उपष्टम्भ नामक संयोग से मिलित होकर रासायनिक परिवर्तन द्वारा विशिष्ट शब्द और अधिक स्पर्श-युक्त भौतिक होकर भी वायु के आधिक्य से स्थूल वायु नाम से व्यवहृत होनेवाला उत्पन्न होता है। वायु भूत में केवल स्पर्शगुण है। स्थूल वायु में आकाशके अनुप्रवेशसे शब्द का भी अनुप्रवेश हो सकता है किन्तु उस समय स्थूल तेज

वायावाकाशोपष्टम्भाच्छब्दानुप्रवेशः सम्भवति किन्तु तदानीमपि स्थूलतेजआदीनामनुत्पन्नत्वात् परमाणुगुणस्य च विशेषानाधायकत्वाद्रूपादीनां तत्रानुप्रवेशो न सम्भवतीति बोध्यम्। वायोः स्पर्शस्यानुष्णाशीतत्वात् केवलवायुजन्यस्पर्शस्य नानुभवः सम्भवति। अत्रानुष्णाशीतशब्देनास्मच्छरीरसमतापो न बोद्धव्योऽस्मच्छरीराणां मृतशरीरापेक्षयात्युष्णत्वात् तत्समतापवानुष्ण एव कथ्यते नानुष्णाशीत इति।

महातेजोवर्णनम्—

स्थूलवायोरुत्पत्तेरनन्तरमीश्वरेच्छया रूपमात्रगुणेषु

आदि के उत्पन्न होने तथा परमाणु के गुण में वैशिष्ट्य को उत्पन्न करने की शक्ति न रहने से स्थूल वायु में रूप रसादि का अनुप्रवेश नहीं हो सकता। वायु का स्पर्श, अनुष्णाशीत है इसलिए केवल वायु से उत्पन्न स्पर्श का अनुभव नहीं होता। यहां अनुष्णाशीत शब्द से हमारे शरीर के समान तापयुक्त ऐसा नहीं समझना चाहिये (बहुत से नैयायिक ऐसा ही मानते हैं) हमारा शरीर मृत शरीर से अधिक उष्ण है इसलिए हमारे शरीर के समान तापवाला भी बहुत उष्ण है उसको अनुष्णाशीत नहीं कह सकते।

महातेजवर्णन—

स्थूल वायु की उत्पत्ति के अनन्तर रूपमात्र गुणविशिष्ट, रूप

रूपतन्मात्रापरपर्यायेषु परमाणुस्वरूपेषु तेजोभूतेष्वारम्भक-
संयोगजननी क्रियोत्पद्यते, ततो द्व्यणुकादिक्रमेण महत्तेज
उत्पद्यमानं प्रागुत्पन्नाभ्यां स्थूलाकाशवायुभ्यामुपष्टम्भाख्य-
संयोगविशेषेण मिलितं सद्रासायनिकपरिवर्तनद्वारा विशिष्ट-
शब्दवदुष्णस्पर्शवद्रूपाधिकमेवोत्पद्यते । अत्रापि अनुप्रविष्टेन
स्थूलवायुना स्थूलोऽग्निरुत्पद्यते नतु वायुभूतादग्निभूत इति
श्रुत्यर्थो बोध्यः । वायुभूतादुत्पन्नस्य वायवीयसंज्ञा सम्भवते
नत्वग्निसंज्ञा । यस्तु वायोः स्पर्शो गुणः सोऽपि तावन्ना-

तन्मात्र नामक परमाणुस्वरूप तेजभूत में ईश्वर की इच्छा से
आरम्भक संयोग को उत्पन्न करने वाली क्रिया उत्पन्न होती है।
उससे द्व्यणुकादि क्रम से उत्पन्न होने वाला स्थूल तेज अपने
से प्रथम उत्पन्न स्थूल आकाश और स्थूल वायु के साथ उपष्टम्भा-
ख्य संयोग विशेष से मिलित होकर रासायनिक परिवर्तन द्वारा
विशिष्ट शब्दयुक्त, उष्णस्पर्शयुक्त अधिक रूपवाला उत्पन्न
होता है। "वायु से अग्नि उत्पन्न होती है" इस श्रुति वाक्य का
अर्थ यहाँ इतना ही समझना चाहिए कि स्थूल वायु अनुप्रविष्ट
होकर स्थूल तेज को उत्पन्न करता है। वायु भूत से तेज भूत
की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि वायु से उत्पन्न का
नाम तेज नहीं हो सकता, उसको वायवीय कहना पड़ेगा।
वायु का स्पर्शगुण भी तब तक अभिव्यक्त नहीं होता जब तक

भिव्यज्यते यावत् स्थूलो वायुः स्थूलेन तेजसा न संसृज्यते। यतोऽनुष्णाशीतस्य वायवीयस्य स्पर्शस्यावबोधो न सम्भवति, सम्भवति तु तेजःसंसर्गादुष्णस्य तस्यावबोध इति। अत्रोष्ण-शब्देनास्माभिरुष्णत्वेनानुभूयमान एव नावबोध्यो, यः खल्व-स्माभिः शीतोऽनुभूयते तत्राप्युष्णत्वमस्तीति प्रमाणसिद्ध-मेव। तथाहि—येन तापमानेनास्मच्छरीरतापः ९७॥ डिग्री-परिमितो ज्ञायते तेनैव तापमानेन यस्य तापः ९५ डिग्री-परिमितो निर्णीयते सोऽपि शीत एवानुभूय-तेऽस्माभिर्नैतावतोष्णताहीनत्वं तस्य सिध्यतीति।

स्थूल वायु स्थूल तेज से नहीं मिलता। क्योंकि वायु के अनुष्णा-शीत स्पर्श का अनुभव नहीं हो सकता। किन्तु तेज के संसर्ग से वह स्पर्श जब उष्ण होता है तब उसका अनुभव हो सकता है। यहाँ उष्ण शब्द से हम जिसे उष्ण अनुभव करते हैं केवल उसको ही नहीं समझना चाहिए क्योंकि हम जिसे शीत समझते हैं वह भी उष्ण है, यह तो प्रमाण सिद्ध है। जैसे जिस तापमान यन्त्र (Thermometere) से हमारे शरीरका ताप ९७॥ डिग्री प्रमाण नापा जाता है उसी तापमान से जिसका ताप ९५ डिग्री नापा जाता है उसको भी हम शीत समझते हैं लेकिन हमारे अनुभव से ही उसमें उष्णता (ताप) नहीं है ऐसा सिद्ध नहीं होगा क्योंकि

यतः ६० डिग्रीपरिमितोष्णापेक्षया तस्योष्णत्वमस्माभिरप्यनुभूयत । इति तेन यो नैयायिकैरनुष्णाशीत उष्णः शीतः पाकजानुष्णाशीत इति चतुर्विधः स्पर्शविशेषोऽङ्गीकृतः नासौ प्रमाणसिद्ध इति ज्ञायते, यतो वायोरेव स्पर्शस्तेजःसम्बन्धादुष्ण एवानुभूयत इति तथ्यम् । तत्र तेजस आधिक्येन यत्रास्मच्छरीरादधिकोष्णतानुभूयते तस्योष्णस्पर्शतास्मच्छरीरसमोष्णस्यानुष्णशीततास्मच्छरीरतापादल्प तापविशिष्टस्य शीतस्पर्शताकथनेऽस्मच्छरीरताप एव मर्या-

---

जिसमें ६० डीग्री ताप है उससे ६५ डिग्री तापयुक्त को हम भी उष्ण अनुभव करते हैं। इसलिए नैयायिक अनुष्णाशीत (वायु के) उष्ण (तेज के) शीत (जल के) और पाकज अनुष्णाशीत (पृथिवी के) ये चार प्रकार के जो स्पर्शभेद मानते हैं वह युक्ति-प्रमाणसिद्ध नहीं हो सकते, ऐसा समझा जाता है। क्योंकि वायु का ही स्पर्श है और तेज के सम्बन्ध से वह उष्ण होकर ही अनुभूत होता है, इतना सत्य समझा जाता है, द्रव्य में तेज की अधिकता के कारण जहां हमारे शरीर से अधिक ताप हो जाता है उसको हम उष्ण समझते हैं और जिसमें हमारे शरीर के समान ताप है उसको हम अनुष्णाशीत समझते हैं और जिस द्रव्य में हमारे शरीर से कम ताप है उसको हम शीत समझते हैं, यहां

दाकरः स्यात् तेन लौकिकव्यवहारस्य सुकरत्वेऽपि न तत्त्व-निर्णयः स्यात्तस्मादनुष्णाशीतेन वायुना यथा यथा तेजः-संसर्गस्तथा तथा तापाभिवृद्धिरिति तथ्यं विदित्वैव श्रीमता चरकेण "खरद्रवचलोष्णत्वं भूजलानिलतेजसा" मिति चतुर्विधः स्पर्शविशेषश्चतुर्षु महाभूतेषु वर्णित इति बोध्यम्। महातेजस उष्णस्पर्शत्वेऽपि तस्य स्पर्शो नानुभूयते यतो महातेजस उत्पत्तिकाले नास्ति भोगायतनं शरीरमतोऽनुभवितैव न सम्भवति तदानीं यदानुभवितुः शरीरमुत्पत्स्यते ततः प्रागेव

हमारे शरीर का ताप ही मर्यादाकारक है उससे लौकिक व्यवहार तो सुकर हो जाता है (जैसा उष्ण जल पीना, शीत जल से नहाना आदि) किन्तु इससे तत्त्वनिर्णय नहीं होता है। अतएव अनुष्णाशीत वायु के साथ जैसे २ तेज मिलता जाता है वैसे २ ताप बढ़ता जाता है, इस तथ्य को जानकर ही श्रीमान् चरक ने पृथिवी का खर-स्पर्श, जल का द्रव स्पर्श, वायु का चलस्पर्श तथा तेज का उष्णस्पर्श, इसप्रकार चार महाभूतों में चार प्रकार के स्पर्श विशेष का वर्णन किया है, ऐसा समझना चाहिए। महातेज में उष्णस्पर्श है फिर भी उसका अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि जब महातेज उत्पन्न होता है उस समय तक भोगायतन शरीर उत्पन्न नहीं होता है इसलिए उस समय अनुभव करने वाला ही

महाभूतानि परस्परानुप्रविष्टानि भवन्तीति यदुक्तं श्रीमता सुश्रुतेन—अन्योन्यानुप्रविष्टानीत्यादि, अन्योन्यानुप्रविष्टैः पंचभिभू तैरारब्धेन शरीरेण पांचभौतिका एव स्पर्शादयो ज्ञातु शक्यन्ते नत्वेकभौतिकाः, यतः सृष्टिकाले भगवदिच्छया भूतानि परस्परं मिलितान्येव कार्यजातं जनयन्ति पुनरीश्वरेच्छया यदा भूतानां विश्लेपः संजायते भवति तदा महाप्रलय इति प्रागुक्तम्। चरकोक्ताः स्पर्शविशेपास्तत्तन्महा-

---

नहीं होता है। जब अनुभव करने वाले का शरीर उत्पन्न होता है उससे पहिले ही सब महाभूत भी एक दूसरे में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। जैसा कि भगवान सुश्रुत ने भी लिखा है कि 'महाभूत एक दूसरे में अनुप्रविष्ट ही देखे जाते हैं।' जो महाभूत जिस नाम से प्रसिद्ध है उसमें उस महाभूतके लक्षण व्यक्त हैं। अन्योन्यानु प्रविष्ट पांचों भूतों से आरब्ध (रचित) शरीर से पांचभौतिक स्पर्शादि को ही जान सकते हैं एकभौतिक स्पर्शादि को नहीं जान सकते, क्योंकि सृष्टिकाल में भगवान की इच्छा से सब ही भूत परस्पर मिलित होकर कार्य समूह को उत्पन्न करते हैं फिर ईश्वर की इच्छा से जब ये भूत परस्पर विच्छिन्न (विभक्त) हो जाते हैं तब महाप्रलय हो जाता है यह तो पहिले ही वर्णन किया है। चरक में वर्णित चार प्रकार का स्पर्शविशेष तत्तत् महाभूतों में

भूतेषु वायोरुपष्टम्भाद्रासायनिकपरिवर्तनद्वारा संजायन्ते, तत्तद्भूताधिकेषु पांचभौतिकेषु चानुभूयन्ते, नातः पांचभौतिकेऽपि गगने स्पर्शविशेषोऽस्ति यतो गगने नास्ति वायोरुपष्टम्भः केवलं वायुसंयोगादनुभवायोग्यः स्पर्श आकाशे विद्यत इति। तत्र महातेजः प्राक् स्थूलयोराकाशानिलयोः शब्दस्पर्शावादाय तत्र वैचित्र्यमुत्पादयितुं शक्नोति किन्तु तदानीमपि महत्योर्जलावन्योरनुत्पन्नत्वात्परमाणुगुणस्य च विशे-

---

वायु के अनुप्रवेश से उपष्टम्भाख्य संयोग द्वारा रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न होता है और तत्तद्भूताधिक पांचभौतिक में अनुभूत होता है अर्थात् पृथिवीप्रधान पांचभौतिक में खरता, जलप्रधान पांचभौतिकमें द्रवता, आदि मालूम पड़ती है। इसलिए पांचभौतिक आकाश में स्पर्शविशेष नहीं है क्योंकि आकाश में वायु का उपष्टम्भ नामक विशिष्ट संयोग नहीं है। केवल स्थूल वायु के संयोगसे आकाशमें जितना स्पर्श उत्पन्न होता है उसमें अनुभवयोग्यता नहीं है। यहां भी लक्ष्य करना चाहिये कि महातेज अपने से पहिले उत्पन्न होने वाले स्थूल आकाश और वायु से शब्द और स्पर्श को लेकर उनमें वैशिट्य तो उत्पन्न कर सकता है किन्तु तब तक महाजल और महापृथिवी की उत्पत्ति न होने से और परमाणु के गुण में वैशिष्ट्यजननशक्ति न रहने से महातेज जल और पृथिवी के गुण को ग्रहण नहीं कर सकता

पानाधायकत्वान्न तयोर्गुणाधिकत्वं प्रभवति तस्मात्त्रिगुणं महातेज इति। वायोः संसर्गात्तेजसि स्पर्शस्तेजःसंसर्गाद्वायौ कथं न रूपमित्यादि विप्रतिपत्तेर्भाष्यकारकृताया: समाधानमस्मिन् प्रकरणे द्रष्टव्यम्।

महज्जलवर्णनम्—

महातेजस उत्पत्तेरनन्तरमीश्वरेच्छया रसमात्रगुणेषु रसतन्मात्रापरपर्यायेषु परमाणुस्वरूपेषु जलभूतेष्वारम्भक-संयोगानुकूला क्रिया संजायते। ततो द्व्यणुकादिक्रमेण स्थूलं जलमुत्पद्यमानं प्राक् स्थूलैराकाशानिलानलैरुपष्टम्भाख्य-

---

इसलिए महातेज में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण ही हैं। भाष्यकार की की हुई "वायु के संसर्ग से तेज में स्पर्श होता है परन्तु तेज के संसर्ग से वायु में रूप क्यों नहीं होता है" इत्यादि विप्रतिपत्ति का उत्तर इस प्रकरण में देख लेना चाहिये।

महाजलवर्णन—

महातेज की उत्पत्ति के बाद ईश्वर की इच्छा से रसमात्र गुण-युक्त रसतन्मात्र नामक परमाणुस्वरूप जलभूत में आरम्भक संयोग के अनुकूल क्रिया उत्पन्न होती है। उस से द्व्यणुकादि क्रम से उत्पन्न होने वाला स्थूल जल अपने से पहिले स्थूल हुये आकाश, वायु और तेज से उपष्टम्भ नामक संयोग-विशेष द्वारा

संयोगविशेषेण मिलितं सद्रासायनिकपरिवर्तनद्वारा विशिष्ट-शब्दस्पर्शरूपवद्रसाधिकमुत्पद्यते । शब्दस्तत्र भौतिकस्थूल-जलाघातज इतरविलक्षणः स्पर्शो द्रवो रूपं चाभास्वरं शुक्लं जलाधिकेषु पांचभौतिकेष्वनुभूयते । रसस्तु केवलजले रसमात्रत्वान्न व्यज्यते तस्मादव्यक्त एव । स्थूलपृथिव्या उत्पत्तेरनन्तरं पंचमहाभूतानामुपष्टम्भाख्यविशेषसम्बन्धाद्रासायनिकपरिवर्तनविशेषात् स एवाव्यक्तो रसो मधुरादिः षड्विधोऽनुभूयते । यदुक्तं भगवता सुश्रुतेन "तत्र भूम्यम्बुगुणा-

---

मिलित होकर रासायनिक परिवर्तन द्वारा विशिष्ट शब्द, स्पर्श और रूपयुक्त अधिक रसयुक्त उत्पन्न होता है। इसमें शब्द भौतिक स्थूल जल के अभिघात से उत्पन्नइतरविलक्षण (और सब शब्द से विशिष्ट लक्षण युक्त), स्पर्श, द्रव, रूप अभास्वर (अनुज्ज्वल) शुक्ल है जो पांचभौतिक स्थूल जल में मालूम पड़ते हैं। जल में केवल रसमात्र होने से रस अनुभव योग्य नहीं है जिससे अव्यक्त कहलाता है। स्थूल पृथिवी की उत्पत्ति के बाद पांचों महाभूतों के उपष्टम्भ नामक संयोग से रासायनिक परिवर्तनविशेष द्वारा एक अव्यक्तरस ६ रस होकर अनुभूत होता है। जैसा कि भगवान् सुश्रुत ने भी लिखा है कि "पृथिवी और जल के गुण अधिक हों तो मधुर रस होता है, पृथिवी और अग्नि गुण की

बाहुल्यान्मधुरो भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लस्तोयाग्निगुणबाहु-ल्याल्लवणो वाय्वग्निगुणबाहुल्यात्कटुको वाय्वाकाशगुणबाहु-ल्यात्तिक्तः पृथिव्यानिलगुणबाहुल्यात्कषाय इति।" सु० सू० ४२। भगवता चरकेणाप्युक्तं 'सौम्याः खल्वापोऽन्तरिक्ष-प्रभवाः प्रकृतिशीता लघ्व्यश्चाव्यक्तरसास्त्वन्तरीक्षाद् भ्रश्य-माना भ्रष्टाश्च पंचमहाभूतविकारगुणसमन्विता जंगम-स्थावराणां भूतानां मूर्तीरभिप्रीणयन्ति तासु च मूर्त्तिषु षडभिमूर्च्छन्ति रसाः। तेषां षण्णां रसानां सोमगुणातिरेकान्म-

---

अधिकता से अम्लरस, जल और अग्नि गुण की अधिकता से लवण रस, वायु और अग्नि के गुण की अधिकता से कटु रस, वायु और आकाश के गुण की अधिकता से तिक्त रस तथा वायु और पृथिवी की अधिकता से कषाय रस उत्पन्न होता है। भगवान् चरक जी ने भी लिखा है कि अंतरिक्ष प्रभव आकाश में रहने वाला जल सौम्य, स्वभाव से शीतल लघु और अव्यक्त रस युक्त है। वह जल आकाश से नीचे गिरते समय और जमीन में गिर कर पंचमहाभूत के विकारों के गुण से युक्त होकर जंगम (मनुष्यादि गतिशील) और स्थावर वृक्षादि की मूर्ति (शरीर) को तृप्त करता है। उन मूर्तियोंमें (शरीरों में) ६ रस अभिव्यक्त होते हैं। उन ६ रसोंमें सोमगुणके आधिक्य से

धुरो रसो, भूम्यग्निभूयिष्ठत्वादम्लस्तोयाग्निभूयिष्ठत्वाल्लवणो, वाय्वग्निभूयिष्ठत्वात् कटुको वाय्वाकाशातिरेकात् तिक्तः, पवनपृथिव्यतिरेकात् कषायः। एवमेषां रसानां षट्त्वमुपपन्नं न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानामिति। च० सू० २६ आयुर्वेदाचार्यैर्गुणादिविभागदर्शनादयं सिद्धान्तः स्थिरीकृतस्तेन केवलजलस्य मधुररसमङ्गीकृत्य तदभिव्यक्तये हरीतक्यादिचर्वणकथनमस्थाने प्रयास एव। यत्तु पृथिव्या-

---

(जल और पृथिवी में सोम गुण अधिक है) मधुर रस, पृथिवी और अग्नि-गुण के आधिक्य से अम्ल रस, जल और अग्नि-गुण के आधिक्य से लवण रस, वायु और अग्नि-गुण के आधिक्य से कटु रस, वायु और आकाश-गुण के आधिक्य से तिक्त रस, वायु और पृथिवी-गुण के आधिक्य से कषाय रस उत्पन्न होता है। इस प्रकार भूतों की अल्पता और अधिकता के वैशिष्ट्य से एक रस का ६ रस बनना युक्तियुक्त है। आयुर्वेदाचार्यों ने द्रव्यों के गुणादि के विभाग को देख कर इस सिद्धान्त को स्थिर किया है। इसलिये केवल जल में मधुर रस बता कर फिर उसकी अभिव्यक्ति के लिये हरीतकी (हर्ड) को चबाने का उपदेश करना अनधिकार चेष्टा ही है। पृथिवी में ही ६ प्रकार के रस की कल्पना भी अयौक्तिक है क्योंकि उनकी मानी हुई एक हीं भूमि में (वास्तव में वह भी पांचभौतिक है) ६ रस मालूम नहीं पड़ते हैं

मेव षड्विधो रस इति कल्पनं तदप्ययौक्तिकमेव। यतो नैक-स्यामेव तथाकथितभूमौ षड्रसा अनुभूयन्ते किन्तु कुत्रचित् कश्चिदनुभूयते। तत्र मधुररसाया रसायाः कटुरसाया रसायाः भेदः कश्चिदवश्यमेव वाच्यः। कोऽसौ भेद इति विचार्यते चेदवगम्यते नैका रसाऽनेकरसकारणं किन्तु जलेनेतरभूत-संसर्गादेवानेकरसोत्पत्तिः स्थूलेषु भौतिकेष्विति।

आधुनिकवैज्ञानिकमते रसोपादानानि—

आधुनिकवैज्ञानिकैर्मधुररसाश्रयशर्करायाः उपादानत्वेन कार्बनाख्यस्य षड्भागाः, हाईड्रोजनाख्यस्य द्वाद-

---

किन्तु किसी भूमि में कुछ रस है तो दूसरी और किसी भूमि में दूसरा रस है। वहां मधुररस-विशिष्ट मृत्तिकासे कटु रस-विशिष्ट मृत्तिका का कुछ भेद है यह जरूर स्वीकार करना पड़ेगा। यह भेद क्या है इसका विचार करने से ही मालूम पड़ेगा कि एक पृथिवी ही अनेक रस का कारण नहीं है किन्तु जल के साथ अन्यान्य भूतों के विशिष्ट मिलन से स्थूल पांचभौतिक द्रव्योंमें अनेक रस की उत्पत्ति होती है।

आधुनिक वैज्ञानिकमत में रसों का उपादान विचार—

आधुनिक वैज्ञानिक (और रासायनिक) मधुर रस के आश्रय शर्करा को विश्लेषण करके (रस के आश्रय द्रव्य का ही विश्लेषण

शभागाः, ओक्सिजनाख्यस्य षड्भागा निश्चितास्तत्र द्वादशभागमितेन हाइड्रोजनाख्येन मिलिताः षड्भागा ओक्सिजनाख्याः स्थूलं जलमेव जनयन्ति। कार्बनाख्यस्यांगाररूपस्यापि पार्थिवत्वं वाच्यमेव तेन भूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुर इति वैज्ञानिकमतेनापि सिद्धम् । अम्लरसोपादानत्वेन कार्बनाख्येन गन्धकादिना वा पार्थिवेन सह हाइड्रोजनोक्सिजनाख्ययोरस्तित्वं वर्णितं तत्रापि

हो सकता है रस का विश्लेषण नहीं होता है क्योंकि रस गुण है) निश्चय किया है कि शर्करा के एक कण में कार्बन (Carbon) ६ भाग, हाइड्रोजन (Hydrogen) १२ भाग और ओक्सिजन (Oxygan) ६ भाग है। १२ भाग हाईड्रोजन के साथ ६ भाग ओक्सिजन मिलकर तो स्थूल जल को ही बनाते हैं । कार्बन भी अंगार या कज्जल नाम से परिचित है अतः वह भी पार्थिव है, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये चरक-सुश्रुत-वर्णित पृथिवी और जल-गुणोंके आधिक्यसे मधुररस होता है यह सिद्धांत वैज्ञानिक मत से भी सत्य हो है । अम्लरस के उपादान द्रव्य के विश्लेषण से मालूम हुआ कि कार्बन या गन्धक आदि पार्थिव द्रव्यों के साथ हाइड्रोजन और ओक्सिजन मिलकर अम्ल रस को बनाते हैं। उसमें भी हाइड्रोजन की अपेक्षा ओक्सिजन की मात्रा अधिक

हाइड्रोजनाख्यापेक्षयौक्सिजनाख्यस्याधिक्यमेव वर्ण्यते, सर्वेषामेवैलिमेण्टसंज्ञकानां पांचभौतिकत्वं प्रतिपादितम्। तत्रापि दहनोत्तेजकत्वादोक्सिजनाख्यस्याग्नेयत्वमवगम्यते। तेन भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्ल इत्यपि वैज्ञानिकमतेनैव सिद्धम्। लवणरसाश्रयाणां जलसंपर्केणाशुद्रावित्वादुष्णत्वाच्च तज्जनकत्वेनाधुनिकवर्णितेषु क्लोरीनाख्यादिष्वपि तोयाग्निगुण-बाहुल्यमवगन्तव्यमेतेन तोयाग्निगुणबाहुल्याल्लवण इत्यपि साधु संगच्छते। आकाशस्य स्वरूपगुणादिकमाधुनिकैर्नोप-

---

ऐसा देखा जाता है, सब ही ऐलिमेण्ट (Element) पांच-भौतिक हैं यह तो सिद्ध किया ही है फिर भी ओक्सिसन ज्वलन का उत्तेजक है इसलिये उसको आग्नेय कहना चाहिये (ओक्सिजन शब्द का अर्थ भी तीक्ष्णता-जनक है)। इससे भूमि और अग्नि-गुण के बाहुल्य से अम्ल होता है यह शास्त्र सिद्धान्त भी वैज्ञानिक परीक्षा से सिद्ध हुआ है। लवण रस के आश्रय सैन्धवादि द्रव्य जल के संसर्ग से शीघ्र ही द्रव हो जाते हैं अर्थात पिघल जाते हैं और लवण उष्ण भी है इसलिये लवण का उपादान आधु-निक वैज्ञानिक क्लोरीन (Clorein) आदि जिन वस्तुओं को मानते हैं उनमें भी जल और अग्नि का बाहुल्य होगा, ऐसा समझा जाता है। अतएव जल और अग्नि-गुण के बाहुल्य से लवण

लब्धं सम्यक्, किंतु तिक्तरसोपादानत्वेन नाइट्रोजनाख्यस्या-स्तित्वं तैरपि प्रतिपादितम्। स्थूलवायुशतभागेषु सप्तसप्ततिक-ल्पभागस्य नाइट्रोजनाख्यस्य वायवीयत्वं निश्चितमेव, तस्मात् सुष्ठूक्तं वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्त इति। कषायरसोपा-दानत्वेनाधुनिका द्वादशभागमितं कार्बनाख्यं नवभाग-मितौ च हाइड्रोजनोक्सिजनाख्यौ वर्णयन्ति। सम-परिमाणमिलितयोर्हाईड्रोजनोक्सिजनाख्ययोर्वायवीयावयवाः

होता है यह भी ठीक संगत होता है। आकाश के गुणधर्मादि को आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रादि से अच्छी तरहसे अनुभव नहीं कर सके हैं किन्तु तिक्त रस के उपादान में नाइट्रोजन् (Nitrogen) है यह तो परीक्षा से सिद्ध हुआ है। स्थूल वायु के १०० भागों में प्रायः ७७ भाग जो नाइट्रोजन् रहता है उसको वायवीय कहना ही पड़ेगा। इसलिये वायु और आकाश के बाहुल्य से तिक्त रस होता है यह भी ठीक हा है। कषाय रस के उपादान द्रव्य में ११ भाग कार्बन् ६ भाग हाईड्रोजन् और ६ भाग ओक्सिजन् पाये जाते हैं। हाईड्रोजन् और ओक्सिजन् जब सम भाग में मिलते हैं तब उनके वायवीय अवयव कार्यकर होते हैं अर्थात् वे वायवीय रूप में रहते हैं (कार्बन तो पार्थिव है ही।) इसलिये पृथिवी और वायु के प्राधान्य से कषायरस होता है यह भी ठीक लिखा है।

कार्यकरा भवन्तीति तयोर्वायवीयत्वस्वीकारात् सुष्ठूक्तं पृथिव्यानिलगुणबाहुल्यात् कषाय इति । रसनेन्द्रियमात्रवेद्यस्य कषायस्य रसत्वं प्रत्याख्यातुं न शक्यते। कटुरसस्य वायुतेजसोश्च सम्यक् स्वरूपानवबोधाद् वैज्ञानिकैरद्यापि वाय्वग्निगुणबाहुल्यात्कटुक इत्यस्य प्रमाणं न प्रतिपादितं किन्तु रसनेन्द्रियमात्रवेद्यस्य कटुरसस्य रसत्वं प्रत्याख्यातुं न शक्यते । त्वगादिभिः कटुरसो नानुभूयते किन्तु ज्वलनमात्रमेव । कटुरसस्य गुणधर्मादिदर्शनात् तस्य वाय्वग्निगुण बाहुल्यमेव सिध्यति ।प्रायशः सर्वेषामेव रसा-

---

केवल रसना से अनुभव योग्य कषायको भी अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। कटु रस तथा वायु और तेजके गुण-धर्मादिका वैज्ञानिकों ने अभी तक अच्छी तरह से निर्णय नहीं किया है इसलिये वायु और अग्निगुण के बाहुल्य से कटु होता है इस बात को अभी तक वैज्ञानिक प्रमाणित नहीं कर सके हैं। केवल रसना से जानने के योग्य कटु रसको रस तो अवश्य ही कहना पड़ेगा। और किसी इन्द्रिय से कटु रस का अनुवभ नहीं होता है केवल कुछ जलन मालूम पड़ता है। कटु रस के गुण-धर्मादि को देख कर उसको वायु और अग्नि गुण प्रधान ही कहना पड़ेगा। प्रायः सबही रसोंके उपादानमें हाईड्रोजन है यह तो वैज्ञानिकों ने देख लिया है।

नामुपादानेषु हाइड्रोजनसंज्ञकस्यास्तित्वमाधुनिकैर्दृष्टमेव, तथोक्सिजनसंज्ञकस्यापि बहूनां रसानामुपादानेऽस्तित्वमवलोक्यते। एतयोरेव स्थूलजलोपादानत्वमपि प्रत्यक्षसिद्धमेव। हाईड्रोजनसंज्ञयाऽपि जलजनकोऽवगम्यते। तस्मा "दाप्यो रस इतरभूतसंसर्गात् षोढा विभज्यत" इत्ययमायुर्वेदवर्णितः सिद्धान्तो वैज्ञानिकैरपि प्रकारान्तरेण प्रमाणीक्रियते। तस्माद् षड्रसोपादानत्वेनायुर्वेदवर्णितानि विभिन्नभूतान्येव साधु संगच्छन्त इति। अनेकेन्द्रियग्राह्याणां क्षारादीनां रसत्वमेव नास्ति तत्तु चरके युक्त्या प्रमाणीकृतमिति तदुपादानं न लिख्यते। एवं भौतिके महाजले विशिष्टशब्दस्पर्शरूपाणा-

---

ऐसे ही ओक्सिजन् भी बहुत रसों के उपादान में पाया गया है। ये दो चीजें ही स्थूल जल के उपादान हैं यह भी प्रत्यक्षसिद्ध है। हाईड्रोजन नाम से भी जल के उत्पादक को समझा जाता है इसलिए "रसका उपादान जल है। अन्यान्य भूतों के संसर्ग से वह रस ६ प्रकार में विभक्त होता है।" इस आयुर्वेद सिद्धान्त" को वैज्ञानिकों ने भी प्रकारान्तर से प्रमाणित कर ही दिया है। इसलिए ६ रसों के उपादान रूप से आयुर्वेद में जो विभिन्न भूतों का वर्णन किया है वही ठीक प्रमाणित होता है। अनेक इन्द्रियों से ग्राह्य क्षार आदि से हो नहीं है, यह चरक में युक्ति-प्रमाण से सिद्ध किया है इसलिये उनके उपादान नहीं लिखे गये। इसप्रकार भौतिक

मुत्पत्तिः सम्भवति नतु गन्धोत्पत्तिस्तदानीं स्थूलपृथिव्या अनुत्पन्नत्वात्परमाणुगुणस्य च विशेषानाधायकत्वादिति मन्तव्यम् ।

महापृथिवीवर्णनम्—

स्थूलजलोत्पत्तेरनन्तरमीश्वरेच्छया गन्धमात्रगुणेषु गन्धतन्मात्रापरपर्यायेषु परमाणुस्वरूपेषु पृथिवीभूतेष्वारम्भकसंयोगजननी क्रियोत्पद्यते ततो द्व्यणुकादिक्रमेणोत्पद्यमाना महापृथिवी प्राक्स्थूलीभूतैराकाशानिलानलजलैरुपष्टम्भाख्यसंयोगविशेषेण मिलिता सती रासायनिकपरिवर्त-

---

महाजल में विशिष्ट शब्द, स्पर्श, रूप और रस तो हो सकता है किन्तु गन्ध उसमें नहीं हो सकता क्योंकि जब स्थूल जल उत्पन्न होता है तब तक स्थूल पृथिवी नहीं होती है और परमाणुरूप पृथिवी विशेषगुण को उत्पन्न नहीं कर सकती।

महापृथिवीवर्णन—

स्थूल जल को उत्पत्ति के बाद ईश्वर की इच्छा से गन्धमात्र गुण-विशिष्ट गन्धतन्मात्रनामक परमाणुस्वरूप पृथिवी भूत में आरम्भक संयोग के उत्पन्न करने वाली क्रिया उत्पन्न होती है। उससे द्व्यणुकादि क्रम से उत्पन्न होने वाली स्थूल पृथिवी अपने से पहिले स्थूल हुए आकाश, वायु, तेज और जल से उपष्टम्भ नामक संयोग विशेष से मिलित होकर रासायनिक परिवर्तन विशेष

नविशेषाद्विशिष्टशब्दस्पर्शरूपरसवती गन्धाधिकोत्पद्यते । शब्दस्तु पार्थिवे पांचभौतिके तार इतरभूतजशब्दविलक्षणः खरः स्पर्शो नीलपीताद्यनेकं रूपं कथंचिन्मधुरो रसः प्रत्यक्षसिद्धः । गन्धस्तु पृथिव्या एव गुण इतरभूतसंसर्गात् स्त्यानतीक्ष्णाद्यनेकविधोऽनुभूयते । सौरभासौरभभेदेन गन्धद्वैविध्यकल्पनं युक्तिविरुद्धमेव, यतो नासौ गन्धभेदो भक्तिभेदाद्यद्रसोनादिकमेकेन सुगन्धं मन्यते

द्वारा विशिष्ट शब्द, स्पर्श, रूप और रसयुक्त तथा अधिक गन्ध युक्त उत्पन्न होती है। इसका शब्द पृथिवीप्रधान पांचभौतिक द्रव्य में बहुत उच्च, अन्य भूतज शब्द से विलक्षण (जैसे घण्टे का शब्द) मालूम पड़ता है। इसका स्पर्श खर (कर्कश) है। इसमें नील पीत आदि अनेक रूप हैं और रस कथंचित् मधुर है, यह तो प्रत्यक्षसिद्ध है। गन्ध केवल पृथिवी का ही गुण है किन्तु अन्यान्य भूतों के संसर्ग से वह गन्ध कहीं स्त्यान (जैसा गीली मिट्टी में) कहीं तीव्र (जैसे हींग, लहसन आदि में) आदि अनेक प्रकार की मालूम पड़ती है। सौरभ (सुगन्ध) और असौरभ (दुर्गन्ध) के भेद से गन्धको दो प्रकारका बताना युक्ति-विरुद्ध है क्योंकि यह गन्ध का भेद नहीं है किन्तु भक्ति का भेद है। भक्तिभेद से जिस रसोन (लहसन) आदि को एक सम्प्रदाय सुगन्धित मानता है उसको अन्य सम्प्रदाय भक्तिभेद से दुर्गन्धयुक्त मानता

तदेवान्येन दुर्गन्धमेव मन्यते भक्तिभेदात् । भूततारतम्यवशात् पांचभौतिकेषु स्त्यानतीक्ष्णमन्दादिगन्धानामनुभवः सर्वैरेव क्रियते इति तादृशो भेद एव युक्त इति । रूपाधिकरणस्य तेजसोऽनुप्रवेशात्संयोगवैचित्र्याच्च पृथिव्यां नीलपीताद्यनेकविधं रूपं भवितुमर्हति । येतु पृथिवीमेव नानारूपवतीमाहुस्तेषां मते पृथिवीपरमाणावपि नानाविधं रूपं वाच्यमेव । तत्रैकस्मिन् परमाणौ नानारूपाणां समवाये चित्ररूपतैव तस्य सम्भवति, परमाणोः प्रदेशविभागासम्भवान्नीलादीनां

हैं । भूतों के तारतम्य से पांचभौतिक द्रव्यों में स्त्यान, तीक्ष्ण मन्द आदि गन्ध का अनुभव सब ही करते हैं इसलिए ऐसा विभाग करना युक्ति-युक्त है । रूप का अधिकरण तेज, पृथिवी में अनुप्रविष्ट है अतः तेज के साथ पृथिवी का जो संयोग है उसके भेद से स्थूल पृथिवी में नीला पीला आदि अनेक रूप उत्पन्न हो सकते हैं । जो लोग पृथिवी में ही नाना रूप मानते हैं उनको पृथिवीपरमाणु में भी नानारूप मानने पड़ेंगे । किन्तु एक ही परमाणु में नाना रूप हों तो नील पीत आदि न कह कर परमाणु को चित्ररूप कहना पड़ेगा क्योंकि परमाणु में प्रदेश-विभाग नहीं हो सकता, इसलिए एक परमाणु का कहीं नील रूप कहीं पीत रूप, ऐसा विभाग नहीं हो सकता है । किसी परमाणु में

देशभेदेनावस्थानासम्भवात् । अथ कस्मिंश्चिन्नीलं कस्मिंश्चित्पीतमित्यादि परमाणुभेदाद्रूपभेदः कल्प्यते तर्हि सर्वेषां पृथिवीपरमाणूनां तुल्यगुणत्वं व्याहन्यते । किञ्च, कथंचिद्वस्तुभेदमन्तरेण रूपभेदस्यायौक्तिकमेवातस्तेजःसंसर्गान्महापृथिव्यां पांचभौतिकपृथिव्यां वानेकविधं रूपमिति मन्तव्यम् ।

एवं नित्येभ्यः पञ्चभूतेभ्यः पञ्चमहाभूतान्युत्पद्यन्ते । सर्गादावीश्वरेच्छया परस्परानुप्रविष्टानि च भवन्ति । ततो मिलिते

नील रूप किसी में पीत रूप ऐसा समझा जावे तब भी सब ही पृथिवीपरमाणु एक समान गुणवाले हैं, यह बात नहीं रहती है । दूसरी बात यह भी है कि वस्तु में कुछ भी भेद नहीं तो रूप में भेद नहीं होसकता है । इसलिए एक नीलवर्ण पृथिवी परमाणु से ही एक पीतवर्ण पृथिवीपरमाणु का कुछ भेद कहना पड़ेगा, जो असम्भव है । अतएव तेज के विचित्र प्रकार के संसर्ग से स्थूल पृथिवी में अथवा पांचभौतिक पृथिवी में नाना रूप उत्पन्न होते हैं, इतना ही सत्य समझना चाहिए ।

इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर की इच्छा से नित्य परमाणुस्वरूप पांच भूतों से पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं और पांच महाभूत भी एक दूसरे में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं, फिर मिलित पांच भूतों से ही ईश्वरेच्छा से ओषधिसमूह तथा स्थावरों

भ्यः पञ्चमहाभूतेभ्य ईश्वरेच्छयैवौषधयः स्थावरजीवशरीरभूताः तृणलतागुल्मवृक्षा दयो जायन्ते तिर्यग्योनिभक्ष्यास्तत ओषधिभ्यो मनुष्यभक्ष्यमन्नं जायत ईश्वरेच्छयैव। मनुष्योत्पत्तेः प्रागेवान्नसृष्टिरावश्यकी कथमन्यथा जातस्य तस्य पोषणं संभवतीति। अधुनापि दृश्यते जन्मतः प्रागेव भोज्यव्यवस्थेति। एतेषामुत्पत्त्यनन्तरं पुरुष उत्पद्यत ईश्वरेच्छयैव। तस्मादीश्वरः सर्वकर्तोच्यते । अत्र पुरुषशब्देन "पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष" इति लक्षणलक्षित आयुर्वेदवर्णितः कर्मपुरुष

के शरीर तृणलता गुल्म वृक्षादि उत्पन्न होते हैं जो तिर्यक् योनि में उत्पन्न जीव के (मनुष्येतर जीव के) भक्ष्य हैं, और ओषधि (फल पकने से जिन का नाश होता है ऐसे गेहूँ, चना, धान्य आदि के क्षुप) से मनुष्य का भक्ष्य अन्न उत्पन्न होता है। ईश्वर की इच्छा से मनुष्य की उत्पत्ति से पहिले ही उनका भोज्य अन्न उत्पन्न होना चाहिए नहीं तो उत्पन्न मनुष्य का पोषण कैसे हो सकता है ? अब भी देखा जाता है कि जन्म से पहिले ही उसके भोज्य द्रव्य की व्यवस्था होजाती है जैसा कि शिशु के भूमिष्ठ होनेसे पहिले ही माता के स्तन में दूध आजाता है। इन सब की उत्पत्ति के बाद ईश्वर की इच्छा से ही पुरुष उत्पन्न होता है इसलिए ईश्वर को सर्वकर्ता माना जाता है। यहां 'उत्पन्न होता है' इस क्रियापद के प्रयोग से, पुरुष शब्द से आयुर्वेदवर्णित कर्मपुरुष को

एव बोध्यो 'जायत' इति क्रियापदसम्बन्धात् । नित्यशुद्ध-बुद्धमुक्तादिस्वरूपस्य वेदान्तवेद्यस्य पुरुषस्योत्पत्तिरेव न सम्भवति । श्रुतिवर्णितस्यैवम्विधस्यान्नमयपुरुषस्य लक्षणमायुर्वेदे कृतं तस्यैव चिकित्सोपयोगित्वात् कर्मपुरुषस ञ्ज्ञेति । अस्यैव पुरुषस्योत्पत्तिर्भूतादभिहिता श्रुतौ यथा "विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यती"ति ।

प्रसंगागत आरम्भवादः—

सर्गादावीश्वरेच्छया परमाणुष्वारम्भकसंयोगजननी

समझना चाहिये जिसका लक्षण श्रीमान् सुश्रुत जी ने किया है कि "पांच महाभूत और शरीरी के समवाय को पुरुष कहते हैं अर्थात् स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और आत्मा इनके विशिष्ट मिलन से जो उत्पन्न होता है उसको पुरुष कहते हैं।" यहां पुरुष शब्द से वेदान्तशास्त्रवर्णित नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वरूप पुरुष को नहीं समझना चाहिये क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही नहीं होती है। वेद में वर्णित इस प्रकार अन्नमय पुरुष का लक्षण ही आयुर्वेद में किया गया है। ऐसा पुरुष ही चिकित्सा में अधिकृत है अर्थात् चिकित्सा एतादृश पुरुष की ही हो सकती है इसलिए आयुर्वेद में इसको कर्मपुरुष कहते हैं। श्रुति में इसी पुरुष की उत्पत्ति भूत से होती है, ऐसा लिखा है जैसे—विज्ञान घन इन भूतों से उत्पन्न होकर इन्हीं भूतों में विलीन हो जाता है।

क्रियोत्पद्यत इत्युक्तं, तत्र नैकः परमाणुः किंचिदारभते। एकस्य नित्यस्य चारम्भकत्वे सततोत्पत्तिर्बाधकाभावाद्विनाशाभावश्च विनाशकारणस्यासमवायिकारणनाशस्य तत्रासम्भवत्वात्प्रसज्यते। नवा बहुभिः परमाणुभिर्मिलितैरे-

---

प्रसंगागत आरम्भवाद—

सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की इच्छा से परमाणु में आरम्भक संयोग को उत्पन्न करने वाली क्रिया उत्पन्न होती है, यह पहिले ही लिखा है। इसमें ऐसा विचार करना चाहिए कि एक परमाणु किसी का आरम्भक (उत्पादकसमवायीकारण) नहीं हो सकता। यदि एक नित्य द्रव्य को आरम्भक माना जावे तो उत्पत्ति का बाधक कुछ न होने से सर्वदा उत्पत्ति होनी चाहिये थी। उत्पन्न द्रव्य का विनाश भी नहीं हो सकता था क्योंकि असमवायीकारण के नाश से उत्पन्न द्रव्य का नाश होता है, यदि एक ही परमाणु को आरम्भक मानें तो अनेक अवयवों का मिलन रूपअसमवायी कारण वहां कुछनहीं होसकता है। जिसका असमवायीकारण है ही नहीं उसके असमवायीकारणका नाश कैसे होगा। अथच असमवायीकारण का नाश न होने से कार्य का नाश नहीं हो सकता है। अतः एक परमाणु को किसी का आरम्भक नहीं मान सकते। अतः बहु परमाणु भी किसी के आरम्भक नहीं हो सकते। ऐसा होता तो परमाणु समूह को ही

ककार्यारम्भः सम्भवति तथासति परमाणुपुञ्जस्यैव कार्यरूपत्वात्कार्यनाशे परमाणुरूपताऽवशिष्यते यतः कार्यं विनष्टं सत् स्वसमवायिकारणरूपतामेति तस्मात्कस्यचित् कार्यद्रव्यस्य विनाशे तदानीमेव सर्वथाऽदृश्यत्वं प्रसज्येत तत्तु प्रत्यक्षविरुद्धमेव । बहूनां परमाणूनामेकःसंयोगोऽपि न सम्भवति यदसमवायिकारणं भवेत् । एवमेकस्य बहूनां चार-

कार्य कहना पड़ता था। यदि परमाणु-समष्टि को ही कार्य माना जावे तो कार्य के नाश होने से केवल परमाणु ही अवशिष्ट रह जाना चाहिये था। क्योंकि कार्य विनष्ट होकर अपने समवायी-कारण में परिणत होता है ऐसा नियम है। यदि परमाणु ही स्थूल घटादिका समवायी-कारण होता तो घटके नाश होते ही वह परमाणु रूप में परिणत होकर सर्वथा अदृश्य हो जाना चाहिये था किन्तु ऐसा होना प्रत्यक्ष-विरुद्ध है, क्योंकि देखा जाता है कि घटका नाश होने के बाद भी उसके अवयवों का प्रत्यक्ष होता है। अतएव बहु परमाणु मिलकर भी एक कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकते । बहु परमाणु का एक संयोग भी नहीं हो सकता, जिसको असमवायीं-कारण माना जा सके (बहु परमाणुओं का संयोग भी बहु होगा) इन युक्तिओं से जब सिद्ध होता है कि एक या बहु परमाणु किसी के आरम्भक नहीं हो सकते हैं तो दो परमाणुओं से ही एक द्व्यणुक उत्पन्न होता है ऐसा सिद्धान्त माना जाता है। एक जातीय

म्भकत्वे निराकृते द्वाभ्यामेव परमाणुभ्यामेको द्व्यणुक आरभ्यत इति सिद्धान्तः। सजातीयाभ्यामारब्धे द्व्यणुके परमाणुतो गुणोत्कर्षः सम्भवति परमसूक्ष्मस्यापि द्वैगुण्यात्।

प्रसंगागत पारिमाण्डल्यकारणतासमर्थनम्—

"पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतमि" ति केचिदाहुस्तेषामयमभिप्रायः—पारिमाण्डल्यमणुपरिमाणं तत्तु न कस्यचित् कारणं तस्यापि कारणत्वे परिमाणस्य स्वसमानजातीयोत्कृष्टतरपरिमाणारम्भकत्वनियमाद् महदा-

---

दो परमाणु से एक द्व्यणुक उत्पन्न हो तो परमाणु में जितने गुण (शब्द, स्पर्श, परिमाण आदि) हैं उनसे द्व्यणुक में अवश्य ही कुछ अधिक होगा क्योंकि परमाणु का गुण कितना ही सूक्ष्म हो उसको द्विगुण करने से अवश्य ही कुछ बढ़ जावेगा।

प्रसंगागत पारिमाण्डल्यकारणतासमर्थन—

एक सम्प्रदाय कहता है कि 'पारिमाण्डल्यको छोड़कर और सब कारण होता है।' इसका अभिप्राय यह है कि पारिमाण्डल्य अर्थात् अणुपरमाण किसी का कारण नहीं होता। क्योंकि परमाणु में जो अणु परिमाण है वह यदि द्व्यणुक के परिमाण का कारण होता तो द्व्यणुक का परिमाण परमाणु के परिमाण से भी छोटा होना चाहिये था, इसमें कारण यह है कि परिमाण हमेशा अपने समानजातीय उत्कृष्टतर परिमाण का जनक होता है ऐसा नियम

रब्धस्य महत्तरत्ववदणवारब्धस्याणुतरत्वोपपत्तिस्तत्तु न सम्भव-
तीति कारणगतमणुपरिमाणं कार्यद्रव्यस्य परिमाणं नारभते,
किन्त्ववयवबहुत्वादेव त्रसरेण्वादौ महत्त्वमुत्पद्यते इति। मतमिदं
युक्तितर्कादिविरुद्धं प्रतिभाति यतः परमाणुगतानां सर्वेषामेव
गुणानां परमसूक्ष्मत्वेऽपि सजातीयाभ्यां परमाणुभ्यामा-
रब्धे द्व्यणुके परमाणुतो गुणोत्कर्षो गन्धादौ भाष्यकारेणां-

है इस नियम के अनुसार दो महत् द्रव्य मिलकर जैसे महत्तर
परिमाण को उत्पन्न करते हैं वैसे ही दो अणुपरिमाण द्रव्य मिल
कर एक अणुतर (अणु से भी छोटे) द्रव्य को बना सकते हैं
किन्तु द्व्यणुक का परिमाण परमाणुके परिमाण से छोटा नहीं हो
सकता, इसलिये परमाणु के अणुप्रमाण को द्व्यणुक के प्रमाण
का जनक नहीं माना जाता है। द्व्यणुक में भी अणुपरिमाण है
इसलिये द्व्यणुक का परिमाण भी त्रसरेणु के परिमाण का आर-
म्भक नहीं है, किन्तु अवयवगत बहुत्व संख्या त्रसरेणु में महत्त्व
उत्पन्न करती है। (यह मत वैशेषिक कारिकावली में उल्लिखित
है) यह मत युक्तितर्कविरुद्ध मालूम पड़ता है क्योंकि परमाणु
का गुण कितना ही सूक्ष्म हो सजातीय परमाणु से उत्पन्न द्व्य-
णुक में गन्धादि गुण का उत्कर्ष हो सकता है और विजातीय पर-
माणु से उत्पन्न द्व्यणुक में गुणोत्कर्ष नहीं हो सकता है यह तो
न्यायदर्शन के भाष्यकार ने माना ही है (शरीर परीक्षा में इसका

णीकृतः । सतु परिमाणेऽपि तुल्य एव । साधारणबुद्ध्याप्य-वगम्यते यत्परमसूक्ष्मस्य द्वैगुण्ये यद्यपि प्रत्यक्षयोग्यं महत्त्वं नोत्पद्यते तथापि परमाणुगुणतस्तस्य कश्चिदुत्कर्षो भवत्येव । परिमाणस्योत्कृष्टतरपरिमाणजनकत्वे स्वीकृते संख्यातः परिमाणोत्पत्तिरयौक्तिकी न कल्पनीया स्यादिति सुधीभिर्विभाव्यम् । एवं सजातीयपरमाणुभ्यामारब्धे द्व्यणुके परमाणुतो गुणोत्कर्षो युक्तितर्कसिद्ध एव ।

विजातीयाभ्यान्तु परमाणुभ्यामारब्धे द्व्यणुके परमा-

वर्णन होचुका है)। जैसे दो पृथिवीपरमाणु मिलकर एक द्व्यणुक उत्पन्न करते हैं, उसमें परमाणु गन्धसे अधिक गन्ध होजाती है ऐसे ही उस द्व्यणुकमें परमाणुके वजनसे दोगुना वजनभी अवश्य ही होगा। साधारण बुद्धि से भी समझा जाता है कि परमसूक्ष्म को द्विगुण करने से यद्यपि प्रत्यक्षयोग्य महत्त्व उत्पन्न नहीं होता तथापि परमसूक्ष्म परमाणु के परिमाण से कुछ बड़ा जरूर हो जाता है। परिमाण अपने से स्थूल परिमाण का आरम्भक होता है ऐसा स्वीकार करने से संख्या से परिमाण की उत्पत्ति की, जो सर्वथा युक्तिविरुद्ध है, कल्पना नहीं करनी पड़ती है। इसबात को विद्वान लोग विचार करें। अतएव सजातीय परमाणु से जो द्व्यणुक उत्पन्न होता है उसमें परमाणु गुण से अधिक गुण अवश्य ही उत्पन्न होता है, यह बात युक्ति-तर्क सिद्ध है।

णुतो न कश्चिद् गुणोत्कर्षो जायते तादृशैर्द्व्यणुकैरारब्धे स्थूलकार्येऽपि गुणोत्कर्षासम्भवान्निर्गुणकार्यस्यच कुत्रचिदर्शनाद्विजातीयपरमाणुतो द्व्यणुकोत्पत्तिर्न प्रमाणसिद्धेति सजातीयाभ्यामेव परमाणुभ्यां द्व्यणुकोत्पत्तिर्बोध्या ।

प्रासंगिकं त्रसरेणुवर्णनम्—

सजातीयपरमाण्वारब्धे द्व्यणुके परमाणुतः कथंचिद् गुणोत्कर्षे सत्यपि न तस्य लौकिकसाधनेनेन्द्रियादिना प्रत्यक्षयोग्यताऽस्ति, नवा सजातीयद्व्यणुकद्वयारब्धस्य चतुः-

---

विजातीय दो परमाणुओं से उत्पन्न द्व्यणुक में परमाणुसे अधिक गुण नहीं हो सकता है और उस द्व्यणुक से उत्पन्न त्रसरेणु में तथा उससे उत्पन्न स्थूल द्रव्य में भी परमाणु से अधिक गुण नहीं हो सकता । अथच निर्गुण कार्य-द्रव्य कुछ नहीं देखा जाता है अतः विजातीय परमाणु से द्व्यणुक की उत्पत्ति प्रमाण-सिद्ध नहीं होसकती इसलिए सजातीय दो परमाणुओं से ही द्व्यणुक की उत्पत्ति मानी जाती है ।

प्रासंगिक त्रसरेणुवर्णन—

सजातीय दो परमाणुओं से उत्पन्न एक द्व्यणुक में परमाणु से अधिक गुण होता है फिर भी लौकिक चक्षु या यन्त्रादि-साधनों से उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है । सजातीय दो द्व्यणुक से आरब्ध चतुरणुक में भी प्रत्यक्षयोग्यता नहीं है । विजातीय तीन

परमाणुकस्यापि प्रत्यक्षयोग्यतेति। विजातीयद्व्यणुकत्रयारब्धेऽपि द्व्यणुकान्न गुणोत्कर्षः स्वजातीयद्विद्व्यणुकविजातीयैकद्व्यणुकारब्धेऽपि न प्रत्यक्षयोग्यता जायत इति तेषां वर्णनं न दृश्यते। स्वजातीयद्व्यणुकत्रयाणां तदधिकद्व्यणुकानां वा विशिष्टसंयोगादुत्पन्ने त्रसरेणौ प्रत्यक्षयोग्यता जायत इति प्राचीनानां सिद्धान्तः। नैतावता सर्वत्र त्रसरेणूनामस्माकं सर्वेन्द्रियग्राह्यताऽवगन्तव्या। यन्त्रादिसाहाय्यरहितेन चक्षुषा मिलितानां सहस्राणामपि त्रसरेणूनां प्रत्यक्षयोग्यता नास्तीति परीक्षासिद्धमेव। "जालान्तरगते भानौ

द्व्यणुक से आरब्ध द्रव्य में भी द्व्यणुक से अधिक गुण नहीं होता है। सजातीय दो द्व्यणुक और विजातीय एक द्व्यणुक से आरब्ध द्रव्य में भी प्रत्यक्षयोग्यता नहीं होती है अतः ऐसे द्रव्यों का वर्णन शास्त्र में नहीं देखा जाता है। प्राचीन दार्शनिक लोग ऐसा मानते हैं कि सजातीय तीन या इससे अधिक द्व्यणुकों के विशिष्टमिलनसे उत्पन्न त्रसरेणु में प्रत्यक्षयोग्यता होती है। इससे यह नहीं समझना कि हमारी सब इन्द्रियां सर्वत्र त्रसरेणु को प्रत्यक्ष कर सकती हैं। विना सूक्ष्मदर्शक यन्त्रादि की सहायता के हमारी इन्द्रियां मिलित हजारों त्रसरेणुओं को भी प्रत्यक्ष नहीं कर सकती हैं यह तो परीक्षासिद्ध ही है।

यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः। आयुर्वेदे तोलनार्थं त्रसरेणुः स वर्णितः। ततः सूक्ष्मतरं मानं नौषधानां प्रयुज्यते तस्मात्त-मेककं कृत्वा मानमुक्तं परीक्षकैः"। आयुर्वेददार्शनिकवर्णितयो-स्त्रसरेण्वोरेकत्वकल्पनं युक्तितर्कविरुद्धमाभाति। यतो जाला-न्तरगते भानौ दृश्यमानस्य रजसस्त्रसरेणुत्वे तस्य षष्ठभागः परमाणुर्वाच्यः। परमसूक्ष्मात् परमाणुतो-ऽपि सूक्ष्मं किंचिदस्तीति युक्तितर्कविरुद्धम्। अथच सहस्रगुण-दर्शकेन सूक्ष्मवीक्षकयन्त्रेण यद्द्रव्यं रजस्तुल्यं दृश्यते

किसी कमरे के अन्दर जाली से जो धूप आती है उसके अन्दर जो सूक्ष्म-सूक्ष्म कण दिखाई देते हैं, आयुर्वेद में सूक्ष्म मात्रा तोलने के लिए उनको त्रसरेणु कहते हैं। औषध की उससे छोटी मात्रा का प्रयोग नहीं होता है इसलिए उसीको एकक (Unit) मानकर आयुर्वेद में परिमाण का वर्णन किया है। आयुर्वेद के इस त्रसरेणु और दार्शनिक वर्णित त्रसरेणु को एक समझना युक्ति, तर्क विरुद्ध है क्योंकि जाली से आयी हुई धूपमें जो कण देखा जाता है वह त्रसरेणु होतो उसके छठे भागको परमाणु कहना पड़ेगा। परमाणु से भी सूक्ष्म कुछ है ऐसा कहना युक्तितर्क विरुद्ध होगा क्योंकि सबसे सूक्ष्म को ही परमाणु माना जाता है। अब सोचना चाहिए कि हज़ार गुण बड़ा दिखाने वाले अणु-वीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा जिसको पूर्वोक्त कण जितना

तस्य यथार्थं मानं रजसोऽपि सहस्रभागं वाच्यमेव। ततोऽपि बहुसूक्ष्माणां पांचभौतिकद्रव्याणामस्तित्वं प्रमाणसिद्धमेव। तथाहि—यस्मिन् गृहे कर्पूरस्य रसोनस्य वा गन्ध उपलभ्यते तत्रत्यवायुर्न गन्धाधिकरणं किंतु पृथिव्येव गन्धाधिकरणमिति बलवत्प्रमाणसिद्धं, पृथिवीपरमाणुः पार्थिवो द्व्यणुको वा न तद्गन्धाधिकरणं परमाणुद्व्यणुकस्थगुणस्य प्रत्यक्षायोग्यत्वादतोऽकामेनाप्यतिसूक्ष्मोऽपि पार्थिवत्रसरेणुस्तद्गन्धाश्रय इति वाच्यमथच पार्थिवत्रसरेणूनां तद्गन्धाश्रयत्वे सर्वेषां पार्थिवत्रसरेणूनामेकरूपत्वा-

---

बड़ा देखा जाता है उस द्रव्य का वास्तविक परिमाण उस कण से हजारवां भाग ही होगा। इससे भी सूक्ष्म, अथच पांचभौतिक द्रव्य का अस्तित्व भी परीक्षा सिद्ध है जैसा कि—जिस घर में कपूर या रसोन (लहसन) की गन्ध मालूम पड़ती है उस घर का वायु उस गन्ध का आश्रय नहीं है क्योंकि पृथिवी ही गन्ध का आश्रय है यह तो बलवत् प्रमाण से सिद्ध है। पृथिवी परमाणु या पार्थिव-द्व्यणुक उस गन्ध का आश्रय नहीं हो सकता क्योंकि परमाणु के और द्व्यणुक के गन्ध में प्रत्यक्ष योग्यता नहीं हो सकती इसलिए इच्छा के विरुद्ध होते हुए भी, परमसूक्ष्म ही पार्थिवत्रसरेणु को उस गन्ध का आश्रय मानना पड़ेगा। किन्तु पार्थिवत्रसरेणु यदि उस गन्ध का आश्रय होता तो सब ही

त्कपूररसोनगन्धयोर्भेदेन ज्ञानं न सम्भवतीत्यतः शब्द-स्पर्शरूपरसगन्धवत्त्वात् पांचभौतिकयोः कपूररसोनयोः सूक्ष्मा अंशा एव तद्गन्धाधिकरणमिति युक्त्या सिध्यति। अनावृतस्थानरक्षितयोः कपूररसोनयोगुरुत्वमपि प्रतिदिनं क्षीयते तस्माद् वायुमण्डलव्याप्तानां गन्धेनानुभूयमानानां कपूररसोनावयवानां रूपवत्त्वमपि प्रमाणसिद्ध-मथच सहस्रगुणादर्शकेनाप्यणुवीक्षणेन तदवयवा द्रष्टुं न शक्यन्त इत्यपि परीक्षासिद्धमेव। तथा एकस्मिन् सूक्ष्मदर्शक-

पार्थिवत्रसरेणु एक प्रकार के हैं जिससे कपूर की गन्ध और रसोन की गन्ध में भेदज्ञान नहीं हो सकता था। अतः शब्द स्पर्श रूप रस और गंध इन पांच गुणोंके अधिकरण अतएव "पांचभौतिक कपूर या रसोन के ही सूक्ष्म २ पांचभौतिक कण उस गन्ध के आश्रय हैं" यह तो युक्ति से सिद्ध होता है। खुले स्थान में कपूर या रसोन को रखने से उनका वजन क्रमशः घटता है जिससे अनुमान कर सकते हैं कि इन चीजों के अवयव ही वायुमण्डल में फैलते हैं। वायु मण्डल में फैले हुए कपूर और रसोन के अवयवों में जिनका अनुभव घ्राणेन्द्रिय से हो रहा है रूप भी अवश्य ही है किन्तु हजार गुणा बड़ा दिखलाने वाले अणुवीक्षण यन्त्र से भी उनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है।

दूसरा दृष्टान्त और भी है, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से ही देखने

यन्त्रदृश्ये शुक्रकीटे पांचभौतिकानां सर्वावयवानां सूक्ष्मांशा भवन्तीति युक्तिसिद्धम्, अथच प्रत्यवयवांशाः सूक्ष्मदर्शकेन द्रष्टुं न शक्यन्ते इत्यहो सूक्ष्मत्वं पाञ्चभौतिकानामपि। एतादृशानामवयवानां जालान्तरगते किरणे दृश्यमानस्य रजसोऽपेक्षया लक्षभागसूक्ष्मत्वमथच पांचभौतिकत्वं युक्त्या सिध्यति ततोऽप्यतिसूक्ष्माणां त्रसरेणूनां कीदृशं सूक्ष्मत्वं तदनेनानुमातव्यमिति।

महाभूतानामुपष्टम्भाख्यसंयोगोऽन्योन्यानुप्रवेशो वा त्रसरेणूनामतोऽपि स्थूलानां वा सम्भवति ततः सूक्ष्माणा-

---

के योग्य एक शुक्र कीट में पांचभौतिक शरीर के प्रत्येक अवयव के सूक्ष्म अंश रहते हैं यह युक्तिसिद्ध है परन्तु प्रत्येक अवयव के उन सूक्ष्म अंशों को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से भी नहीं देख सकते हैं इससे मालूम पड़ता है कि पांचभौतिक द्रव्य भी कितना सूक्ष्म हो सकता है इस प्रकार सूक्ष्म अवयव तो जाली की धूप के कण से लक्ष २ भाग छोटा होगा अथच पांचभौतिक है यह भी युक्तिसिद्ध है त्रसरेणु तो इससे भी सूक्ष्म होगा इसलिए वह कितना सूक्ष्म यह होगा अनुमान से समझना चाहिए।

महाभूतों का उपष्टम्भाख्य संयोग त्रसरेणु अथवा उससे स्थूल द्रव्य का हो सकता है त्रसरेणु से सूक्ष्म (द्व्यणुक या परमाणु) द्रव्यों के उपष्टम्भ से भी प्रत्यक्षयोग्यता नहीं हो सकती

मुपष्टम्भेऽपि प्रत्यक्षयोग्यताभावात् । एवमादिसर्गे भूतेभ्यो जायमानेषु महाभूतेष्वितरमहाभूतोपष्टम्भादन्योन्यानुप्रवेशाच्च सर्वं पांचभौतिकं सम्पद्यते ततः पांचभौतिकानामेव विचित्रसंयोगाद्विचित्रं कार्यजातमुत्पद्यत इति सुष्ठूक्तं भगवता चरकेण 'सर्वं खलु पांचभौतिकमि'ति । भवतिचात्र—

महाभूतानि भूतेभ्यो जायन्ते यादृशानि हि ।
कृतं विवेचनं तेषां श्रुतियुक्त्यादिसाधनैः ॥

इति भूतेभ्यो महाभूतानामुत्पत्त्यादिवर्णनाख्य
एकादशाध्यायः ।

इस प्रकार आदि सृष्टिमें भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति के समय में ही एक महाभूत में दूसरे महाभूत के उपष्टम्भ से तथा एक महाभूत में दूसरे महाभूत के अनुप्रवेश से सब ही पांचभौतिक हो जाते हैं फिर पांचभौतिकों के विचित्र संयोग से विचित्र कार्य-समूह उत्पन्न होते हैं इसलिए भगवान् चरक जी ने ठीक ही लिखा है कि सब ही पांचभौतिक हैं ।

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

भूतों से जिस प्रकार महाभूतों की उत्पत्ति होती है, श्रुति-युक्ति-प्रमाण से उसका विवेचन इस अध्याय में किया गया है ।

भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति आदि वर्णन नामक
एकादश अध्याय समाप्त

द्वादशोऽध्यायः

ईथराख्यस्यास्तित्वं न वा ?

दृश्येभ्य एलिमेण्टसंज्ञकेभ्योऽतिसूक्ष्ममीथराख्यं किञ्चिद्वस्त्वस्तीति आधुनिका वैज्ञानिका भाषन्ते। तेषां मते तरलमेतदतिसूक्ष्मं वस्तु यथा शून्यं स्थानं परिपूर्य तिष्ठति तथैव मूर्तद्रव्यमध्येऽपि तिष्ठति। किंबहुनाऽतिसूक्ष्मस्यैटमाख्यस्य यावत्स्थानमिलेक्ट्रोन्प्रोटनादिसंज्ञका अधिकुर्वन्ति तदतिरिक्तं स्थानमीथराख्येनैव पूर्यते। यथाऽनन्तस्याकाशस्य किंचिदेव स्थानमधिक्रियते सूर्यादिग्रहैस्तदपेक्षया

ईथर (Ether) का अस्तित्व है या नहीं ?

आधुनिक वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि दृश्यमान ऐलीमेण्ट (Element) से भी अत्यन्त सूक्ष्म ईथर (Ether) नामक कोई द्रव्य है, उनका मत है कि यह तरल अथच अति सूक्ष्म वस्तु जैसे शून्य स्थान को पूर्ण करके अवस्थित है ऐसे ही मूर्त द्रव्यों के अन्दर भी विद्यमान है। अधिक क्या कहें, अति सूक्ष्म एटम (Atom) के जितने स्थान को इलेक्ट्रोन् और प्रोटन् भरते हैं, तदतिरिक्त स्थान भी इस ईथर से ही भरा रहता है। जैसे कि अनन्त

बहुगुणितं स्थानमीथराख्येन पूर्णमपि शून्यमिति व्यपदिश्यते, तथैवैटमसंज्ञकस्य किंचिदेव स्थानमिलेक्ट्रोनादिसंज्ञकैरधिक्रियते तदपेक्षया बहुगुणितं स्थानमीथराख्येन पूर्णमपि शून्यमिति व्यपदिश्यते। शक्तिस्वरूपस्यालोकस्य प्रसरणमीथराख्यस्य तरंगद्वारैव संजायते। तथा शक्तिभूतस्य उत्तापस्य प्रसरणं यद्यपि मृज्जलादिमूर्तिमद्द्रव्यद्वारा संजायते इति प्रत्यक्षसिद्धं तथापि मूर्तिमद्द्रव्यरहिते प्रदेशेऽपीथराख्यस्य तरंगद्वारा तापप्रसरणं संजायत एव। अतिसूक्ष्मस्येथराख्यस्य तरंगो न कस्मिंश्चित् प्रतिहन्यते।

आकाश के केवल थोड़ेसे भाग पर सूर्य चन्द्रादि ग्रह अधिकार करते हैं उसकी अपेक्षासे अत्यन्त अधिक स्थान ईथरसे पूर्ण होकर भी लौकिक व्यवहारमें शून्य कहलाता है। ऐसे ही एटम्‌का थोड़ा सा स्थान इलेक्ट्रोन प्रोटन्‌से घिरता है और उससे अत्यन्त अधिक स्थान ईथर से भरा रहकर भी शून्य कहलाता है। शक्तिस्वरूप आलोक (Light) का प्रसरण ईथर की तरंग (Wave) द्वारा ही होता है तथा शक्तिस्वरूप उत्तापका प्रसरण मृत्तिका, जल आदि द्वारा होता है यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है किंतु जहां मृत्तिका आदि मूर्तिमान् द्रव्य नहीं है वहां भी ईथरकी तरंग द्वारा उत्तापका प्रसरण हो सकता है। अति सूक्ष्म ईथर तरंग की रुकावट किसी से नहीं हो सकती। क्योंकि एलिमेण्ट के घटक अति सूक्ष्म एटम के

यत एलिमेएटसंज्ञकघटकानामतिसूक्ष्माणामेटमाख्यानामप्यन्तरमनायासमयं प्रवेष्टुमर्हति तस्मादस्य प्रतिघात आवरणं पृथक्करणं वा न सम्भवतीति कृत्वायतनगुरुत्वादिकमीथरसंज्ञकस्य निश्चेतुं न शक्यते किन्तु कार्यदर्शनात्तदनुमीयते । शब्दोऽपीथराख्यस्य तरङ्गद्वारा तूर्णमेव बहुदूरं गच्छतीति प्रयोगसिद्धः सिद्धान्तः ।

एवं प्राप्ते निर्णीयते—तापालोकयोर्वाहकत्वमीथराख्यस्य न सम्भवतीति प्रागेव युक्त्या प्रतिपादितम् । शब्दहेतुमूर्तानामभिघाताख्यः संयोग ईथराख्येन व्यवहितानां न

अन्दर भी यह ईथर आसानी से प्रवेश कर सकता है इसलिए इसका प्रतिघात, आवरण या पृथककरण असम्भव है । अतएव ईथर के आयतन गुरुत्व आदि का निर्णय नहीं हो सकता है किंतु कार्य देखकर इसका अनुमान होता है । शब्द भी ईथर की तरंग द्वारा अति शीघ्र बहु दूर देश में जा सकता है यह तो प्रयोग सिद्ध सिद्धान्त है । इस पर निर्णय किया जाता है—ताप और आलोक का वाहक ईथर नहीं हो सकता यह तो पहिले युक्ति से प्रतिपादित किया है । मूर्त द्रव्य का अभिघातनामक संयोग, शब्दकी उत्पत्तिका कारण है किन्तु मूर्तिमान् द्रव्योंका सर्वथा संयोग नहीं हो सकता क्योंकि उनके बीच में भी ईथर रहकर संयोग में

सम्भवतीति कृत्वा शब्दोत्पत्तिकारणमीथराख्यमेव वाच्यम् । मूर्तयोरन्तराले मूर्तरहिते प्रदेशे च विद्यमानमप्येतन्मूर्ताधिकृतस्थले न तिष्ठतीति स्वीकार्यमेव । तथा सति पूर्ववर्णितात्पांचभौतिकादाकाशादस्य वैशिष्ट्यं किंचिन्नोपलभ्यत इति शब्दभेदेऽपि वस्त्वभेदः सिध्यतीति ।

तथाचोक्तम्—

आकाशस्य गुणा ये ये प्राचीनैः परिवर्णिताः ।

बाधा उत्पन्न करता है इसलिए शब्दों की उत्पत्ति तथा शब्द के प्रसरण का कारण ईथर को ही कहना पड़ेगा । मूर्तिमान् द्रव्य के बीच में अथवा जहां और कोई मूर्त द्रव्य नहीं है ऐसे स्थान में तो यह रहता है किन्तु जितने स्थान पर मूर्त द्रव्य (परमाणु) अधिकार करता है उतने स्थान में ईथर नहीं है यह भी स्वीकार करना पड़ेगा, अतएव पूर्ववर्णित आकाशसे इसका कुछ वैशिष्ट्य मालूम नहीं पड़ता इसलिए नाम में भेद होते हुए भी वस्तु में भेद नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है ।

संग्रह-श्लोक की व्याख्या—

आकाश के जो जो गुणधर्म प्राचीन दार्शनिकों ने वर्णन किये हैं ईथर के भी वही गुणधर्म हैं इसलिए दोनों एक ही

ईश्वराख्ये त एवेति तदेकं भिन्नसंज्ञकम् ॥

इतीश्वराख्यस्य विवेचनं नाम द्वादशाध्यायः ।

वस्तु हैं केवल नाम में भेद है ।

ईश्वर का विवेचन नामक द्वादश अध्याय समाप्त ।

त्रयोदशाध्यायः

मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं नवेति विचार्यते ।

तत्र यदि चैतन्यं शरीरधर्म इति मन्यते तर्हि यावत्शरीर-स्थितिस्तावच्चैतन्यस्थितिर्वाच्या किन्तु एतत् प्रत्यक्षविरुद्धं मृतशरीरे चैतन्यादर्शनात् अतएवोक्तं श्रीमता विश्वनाथेन "शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः" । इति ।

चरकाचार्येणापि—

मनुष्यादि शरीर में जो चैतन्य है वह आत्मा से उत्पन्न होता है अथवा भूतादि के संयोग विशेष से उत्पन्न होता है, इसका विचार किया जाता है—

यदि चैतन्य को शरीर का धर्म माना जावे तो जब तक शरीर है तब तक उसमें चैतन्य को मानना पड़ता है किन्तु ऐसा मानना प्रत्यक्षविरुद्ध होगा क्योंकि मृत शरीर में चैतन्य नहीं रहता । इसलिए श्रीमान् विश्वनाथजी ने लिखा है कि "मृतशरीर में चैतन्य नहीं है इसलिए चैतन्य शरीर का धर्म नहीं है ।" श्रीमान् चरकाचार्यजी नेभी लिखा है कि "शरीर से जब जीवात्मा निकल जाता है तो शरीर शून्यगृह जैसा और चेतनारहित हो

शरीरं हि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम् ।
पञ्चभूतावशिष्टत्वात्पञ्चत्वं गतमुच्यते ॥ इति

अतः स्थूलशरीरे न चैतन्यं किन्तु तदन्तर्गते कुत्रचिदन्यस्मिन्नेव चैतन्यं यस्याधिष्ठानादेव मिलिताभ्यां शुक्रशोणिताभ्यां मनुष्यादिशरीरमुत्पद्यते वर्धते सुखाद्यधिष्ठानं च जायते। क्षतादिकमप्यंगं पुनः संरोहति । रोगादिना कृशात् कृशतरमपि चैतन्यलक्षणयुक्तं चिरकालं यावदवतिष्ठते । येन चानधिष्ठितयोः शुक्रशोणितयोः पूतीभावः

जाता है इस समय शरीर में केवल पांचभूत ही अवशिष्ट रहते हैं इसलिये कहा जाता है कि इसने पंचत्व को प्राप्त किया है ।

अतएव समझा जाता है कि स्थूल शरीर में चैतन्य नहीं है किन्तु स्थूल शरीर के अन्दर और कोई ऐसा चेतन द्रव्य है जिसके अधिष्ठान से ही मिलित शुक्र-शोणित से मनुष्यादि शरीर उत्पन्न होता, बढ़ता, सुखादि का अधिष्ठान बनता है । क्षतादि अंग का पुनर्गठन होता है । रोगादि द्वारा कृश से कृश होकर भी चैतन्य लक्षण युक्त होकर चिरकाल तक रह सकता है । जिसका अधिष्ठान न होने से मिलित शुक्रशोणित भी सड़ जाते हैं जैसा कि शास्त्र में लिखा है कि "जीवात्मा का अधिष्ठान न होने से शुक्र-शोणित सड़ जाते हैं।" महाबलशाली अत्यन्त दृढ़ बड़े शरीर भी

सत्र एव सम्पद्यते "यदुक्तमनधिष्ठितयोः पूतीभावप्रसंगादिति"। महाबलं सुदृढमपि महच्छरीरं येन वियुक्तं सत्तूर्णमेव पूतिभावं गन्तुमारभते। चैतन्याधिष्ठानभूतः स सूक्ष्मशरीरावच्छिन्न आत्मा जीवात्मेति कथ्यते। तस्य भोगायतनं स्थूलशरीरमिति। धर्माधर्मसंस्कारवशाद्येन यावद्यादृशं सुखं दुःखं वा भोक्तव्यं तदनुकूलं भौतिकं स्थूलशरीरमवलम्ब्यते। यस्य कर्मणः फलभोगाय यत् स्थूलं शरीरमवलम्ब्यते तस्य कर्मणः क्षये तच्छरीरं विहाय शरीरान्तरं कर्मोचितमवलम्ब्यते पुरुषः। तस्माच्चेतनस्य भोक्तुर्भोगायतनमेतद् भौतिकं जडं शरीरमिति।

जिससे पृथक् होकर शीघ्र ही सड़ने लगते हैं। चैतन्यके अधिष्ठान-स्वरूप सूक्ष्मशरीरविशिष्ट उस आत्मा को जीवात्मा कहते हैं। स्थूल शरीर उसी का भोगायतन है। धर्म और अधर्म नामक संस्कार के अनुसार जिस जीव को जिस प्रकार का जितना सुख या दुःख भोगना है, वह उसके अनुकूल भोगायतन स्थूलशरीर को प्राप्त करता है। जिस २ कर्म के फल भोग करने के लिये एक स्थूल शरीर को धारण करता है उन कर्मों का फल भोग करने के अनन्तर उस स्थूल शरीर को छोड़कर कर्मानुरूप दूसरे स्थूल शरीर को ग्रहण करता है इसलिए चेतन भोक्ता का भोगायतन-स्वरूप स्थूल भौतिक जड़ शरीर है, ऐसा सिद्धान्त है। भगवान

एतदुक्तं भगवता श्रीकृष्णेनापि—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही, इति॥

ननु अचेतनैरपि पञ्चभिर्भूतैरेव मिलितैश्चेतनं शरीर-मुत्पाद्यत इति चेद् उच्यते—महाभूतेषु भौतिकेषु वा घटा-दिषु मृतेषुच शरीरेषु चैतन्यस्यादृष्टत्वादात्मजन्यं चैतन्यं वाच्यं न तु भूतजन्यमिति। अयमर्थो भगवता कपिलेनापि "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः, प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च, मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भव" इति सूत्रेषु

श्री कृष्णजी ने गीतामें भी इस सिद्धान्त को कहा है कि जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को छोड़ कर अन्य नूतन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है ऐसे ही जीव भी जीर्ण शरीरको छोड़कर अन्य नूतन शरीर को ग्रहण कर लेता है।

अचेतन पांचोंभूत मिलित होकर चेतन शरीरको उत्पन्न कर सकते हैं ऐसे सन्देह के उत्तर में कहा जाता है कि महाभूतों में अथवा भौतिक घटादि में तथा मृत शरीर में चैतन्य नहीं देखा जाता है इसलिए स्वीकार करना पड़ेगा कि चैतन्य आत्म-जन्य है, भूत जन्य नहीं। इस विषय को भगवान कपिल आचार्यजी ने भी "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः, प्रपंचमरणाद्यभावश्च, मदशक्ति-

वर्णितः ।

ननु जडेभ्यः पञ्चमहाभूतेभ्यो न शरीरोत्पत्तिः सम्भवतीति प्रत्यक्षसिद्धमेव। किंतु शुक्रशोणितसंयोगाद्गर्भोत्पत्तिरिति सर्वसम्मतः सिद्धान्तस्तत्र शोणितशब्देन न रक्तमात्रमवगन्तव्यं किन्तु स्त्रीबीजं तत्तु चेतनमेव । एवं शुक्रशब्देन पुरुषबीजमवगन्तव्यं तदपि शुक्रकीटनामधेयं चेतनमेव । युवतीनामृतुकाले डिम्बग्रन्थितो बीजं गर्भाशयमेत्य पुंबीजसंयोगाकांक्षीतस्ततो भ्रमति । मैथुनसमयेऽन्तःप्रविष्टे शुक्रे-

---

वच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भवः" इन सूत्रों में वर्णन किया है ।

पुनः सन्देह होता है कि—अचेतन पांचभूतों से शरीर की उत्पत्ति नहीं हो सकती यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही है किन्तु शुक्र-शोणित के संयोग से गर्भोत्पत्ति होती है यह भी सर्वसम्मत सिद्धान्त है । यहां शोणित शब्द से केवल रक्त को नहीं समझना चाहिए किन्तु स्त्रीबीज (Ovum) को समझना चाहिए वह चेतन है । ऐसे ही शुक्र शब्द से भी पुरुष के बीज को समझना चाहिए वह भी शुक्रकीट (Spermatozoon) नामक चेतन ही है । युवती स्त्री के ऋतु समय में डिम्बग्रन्थि (ovary) से बीज (Ovum) गर्भाशय (Uterus) में आकर पुंबीज के साथ संयोग की इच्छा से इधर उधर घूमता रहता है । मैथुन काल में जो शुक्र

ऽपरिमिताः शुक्रकीटाः स्त्रीवीजसंयोगलालसा द्रुतमितस्ततो धावन्ति ततो यदि कश्चिच्छुक्रकीटः स्त्रीवीजान्तः प्रविशति तदैव गर्भः संजायते । स्त्रीपुंवीजयोः सूक्ष्मजीवयोः शरीरमेककोषनिर्म्मितमेव । तयोर्मिलनादनन्तरं यथा यथा पोषकद्रव्येण पुष्टिस्तथा तथा कोषविभागादिद्वारा शरीरवृद्धिरेवमामरणं कोषाणां वृद्धिर्भोज्यादिना संजायते । वृद्धानां कोषाणां विनाशो नवानां च समुत्पत्तिरनुक्षणमिति प्रयोगसिद्धः सिद्धान्तस्तस्माच्चेतनादेव

अन्दर जाता है उसमें असंख्य शुक्रकीट (Spermatozom) भी स्त्रीबीज से मिलने की इच्छा से अतिद्रुत इधर उधर दौड़ते हैं, अनन्तर यदि कोई शुक्रकीट स्त्रीबीज के अन्दर घुस जावें तो गर्भ होता है। स्त्री और पुरुष के बीजों का, जो सूक्ष्म जीव हैं शरीर एक एक कोष से (Cell) ही बनता है। उनके मिलने के बाद जैसे जैसे पोषक द्रव्यों से पुष्टि होती है वैसे २ कोष के विभागादि द्वारा शरीर की वृद्धि होती है। इस प्रकार मृत्यु के पूर्वकाल पर्यन्त भोज्यादि द्रव्य से कोषों की वृद्धि होती रहती है। नये कोषों को उत्पत्ति होती है और जो जो कोष वृद्ध हो जाता है उस उस का नाश भी होता रहता है, यह तो प्रयोग-सिद्ध सिद्धान्त है। इसलिए माना जाता है कि चेतन कोष से ही चेतन

कोषात् चेतनं शरीरमुत्पद्यते । अपरिमितेषु कोषेषु केषांचिन्मरणं केषांचिन्नवीनानामुत्पत्तिरेवं जीवनक्रिया तावत् प्रवर्तते यावत् भोज्यादिना कोषाणां पुष्टिमृतानां कोषाणां निःसरणं च सम्भवति । सर्वं एव शरीरघटकाः कोषाश्चेतनास्तदतिरिक्तो जीवात्माख्यः कश्चिच्चेतनो नोपलभ्यत इति चेदुच्यते, यदि कोषराशिरेव शरीरं न तत्र जीवात्माख्यं चेतनं किंचिदस्तीति मन्यते, ततोऽहंगच्छामि, मम शिरसि वेदना, हस्तो मे कृशतां गत, इत्यादि सर्वानुभवसिद्धः प्रत्यय एव न सम्भवति । किंच यदि स्थिर एको-

---

शरीर उत्पन्न होता है । अपरिमित कोषों में से कुछ कोष मरते रहते हैं, कुछ नये कोष बनते रहते हैं इस प्रकार की जीवन क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक भोज्यादि से कोषों की पुष्टि और मृत कोषों का निःसरण सम्भव हो । शरीर के घटक सब ही कोष चेतन हैं तदतिरिक्त जीवात्मा नामक कोई चेतन द्रव्य मालूम नहीं पड़ता है । इस शंकाका उत्तर यह है कि यदि चेतन कोषराशिको ही शरीर कहकर तदतिरिक्त जीवात्मा नामक-चेतन को न माना जावे तो "मैं जाता हूँ" "मेरे शिर में वेदना है" "मेरा हाथ सूख गया" इत्यादि सबके अनुभव से सिद्ध ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता । क्योंकि प्रत्येक कोष चेतन हो तो एक कोष केवल उसके विषय

समनुप्रविशति तथापि रूपादिभौतिकगुणविहीनोऽयं स्थूलदर्शिभिर्न दृश्यते दृश्यते तु योगिभिरन्यैश्च सर्वैरेव युक्त्या ज्ञातुं शक्यत इति । तथाच—

जीवात्मा नास्ति यो वक्ति स जीवात्मा प्रकथ्यते ।
न कश्चिद् विद्यते कोषो य एवं वक्तुमर्हति ॥ १ ॥
बहूनां खलु जीवानां नैको बोधः प्रजायते ।
संपाद्यते क्रिया नैकाभावज्ञैर्बहुभिः क्वचित् ॥ २ ॥
जीवेहि निर्गते सर्वं जडमन्यत् प्रशिष्यते ।

में यह जीवात्मा भी आकर मिलता है क्योंकि इसमें रूपादि भौतिक गुण नहीं है इसलिए स्थूलदर्शी मनुष्य इसको नहीं देख सकता किन्तु सिद्ध योगी इसको देख सकते हैं और युक्ति से सब ही इसको जान सकते हैं ।

संग्रह श्लोक की व्याख्या—

जो कहता है कि जीवात्मा नहीं है वही स्वयं जीवात्मा है क्योंकि शरीर में ऐसा कोई एक कोष नहीं है जो कह सके कि जीवात्मा नहीं है। यदि मानो कि एक कोष ऐसा नहीं बोल सकता है तो भी बहुकोष मिलकर बोलेंगे। यह ठीक नहीं क्योंकि सोचना चाहिये कि बहुसंख्यक जीवोंका एक ज्ञान (मिलित रूप से) नहीं हो सकता। तथा परस्पर के भाव को न जाननेवाले बहुप्राणी भी मिल कर एक कार्य को नहीं कर सकते हैं। इसलिये देखा जाता है कि

जीवात्मास्ति त॰ ... ...यावत् ... सचेतनम् ॥३॥
आत्मा यदि स्थिरो न स्यात् जन्मान्तरस्मृतिः कथम् ।
कथं विसदृशी सृष्टिस्तत्सर्वं परिचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥

इति शरीरातिरिक्तात्मास्तित्व निरूपणाख्यस्त्रयोदशाध्यायः ।

ग्रन्थसमाप्तौ वक्तव्यम्—

शास्त्रं गौतमनिर्मितं सुविदितं भाष्यादियुक्तं मुहु-
र्दृष्ट्वा सांख्यनयं बुधैर्बहुमतं वैशेषिकं वैद्यकम् ॥
श्रुत्वाऽनेकमुखात् भृशं प्रचलितं वैज्ञानिकानां मतं

शरीर से जीवात्मा निकल जाने से केवल अचेतन कोषादि अवशिष्ट रह जाते हैं और जब तक जीवात्मा देह में है तब तक सब ही जीवित रहते हैं। यदि स्थिर आत्मा न हो तो जन्मान्तर की (पूर्वजन्म की) स्मृति किस प्रकार से हो सकती है ? तथा एक ही माता पिता से विसदृश सन्तान क्यों उत्पन्न होती हैं, इत्यादि विषय को सोचना चाहिये तब पता चलेगा कि शरीर से भिन्न आत्मा भी है ।

ग्रन्थ समाप्ति में वक्तव्य—

गौतममुनिनिर्मित न्यायदर्शन और उसके भाष्यादिकों तथा विद्वानों के मान्य सांख्यदर्शन वैशेषिकदर्शन और आयुर्वेद को बार बार देख कर और बहु प्रचलित (चंचल भी) वैज्ञानिक सिद्धान्तों को अनेक विद्वानों से सुन कर पंचभूत के

विज्ञानं खलु पंचभूतविषये सम्प्राप्य तद् वर्णितम् ॥१॥
संगृहीतं मतं येषां येषां च खण्डितं मतम् ।
सर्वे तेऽतीवमान्या मे तेभ्यो नित्यं नमोनमः ॥ २ ॥
विज्ञानां सदया दृष्टिर्यत्रेशानुकम्पया ।
पतति भूतविज्ञानं पूतं भविष्यतीतिशम् ॥ ३ ॥

विषय में जिस ज्ञान को प्राप्त किया है उसी का वर्णन इसमें किया है।

इस ग्रन्थ में जिनके मत को ग्रहण किया है तथा जिनके मत का खण्डन किया है ये सब ही मेरे लिये अत्यन्त मान्य हैं इसलिए उन सब को मैं बार बार नमस्कार करता हूँ।

यदि भगवान् की कृपा से इस ग्रन्थ के ऊपर विद्वान् महानुभावों की सदयदृष्टि पड़े तो यह पंचभूतविज्ञान पवित्र होगा।





ग्रन्थकृतुः परिचयः—

वङ्ग्यकोटालिपाड़ान्तर्गचापाडानिवासिना।
कायस्थकुलजातेन राजमोहनसूनुना ॥
उपेन्द्रनाथदासेन दासेन ज्ञानिनां सताम्।
विज्ञानं पञ्चभूतानामतियत्नाद्विनिर्मितम् ॥

ग्रन्थकार का परिचय—

वंग देश में कोटालिपाड़ा नामक स्थान के अन्तर्गत गचापाड़ा ग्रामनिवासी, कायस्थकुलजात, राजमोहन-दास के पुत्र, ज्ञानी सज्जनों के सेवक श्री उपेन्द्रनाथ दास ने बहुपरिश्रम करके इस पंचभूत-विज्ञान को बनाया है।

